RNI Title Code : MPHIN32709

ISSN NUMBER : 2455-9814

Dhingra Family Foundation
DF
USA

विभोम स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 1, अंक : 3
त्रैमासिक : अक्टूबर-दिसम्बर 2016
मूल्य : 50 रुपये

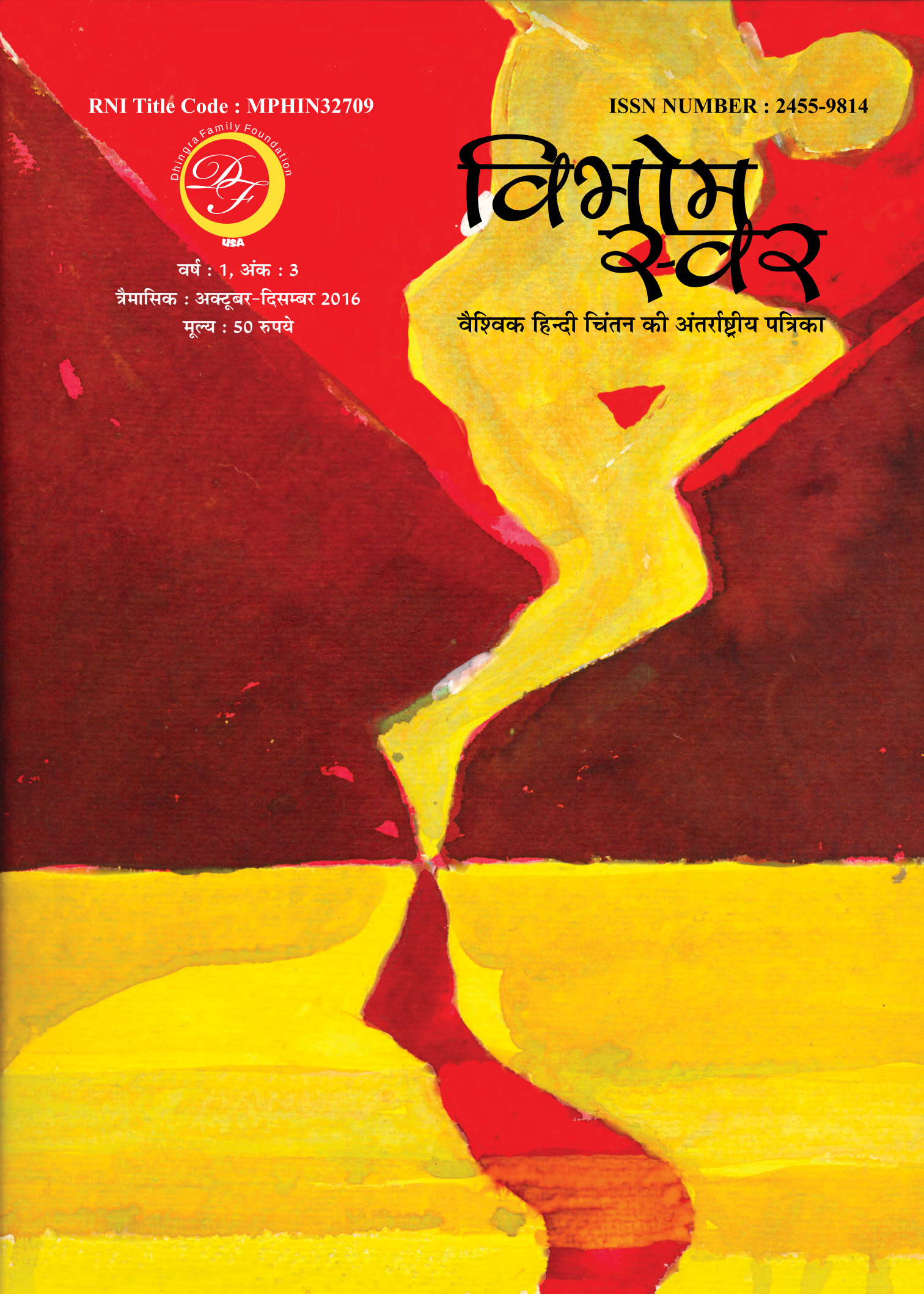

विश्व भर के हिन्दी साहित्यकारों के साक्षात्कारों का अनूठा संग्रह

"वैश्विक रचनाकार : कुछ मूलभूत जिज्ञासाएँ" (दो भागों में)

संपादक तथा साक्षात्कारकर्त्ता : सुधा ओम ढींगरा

ISBN:
978-93-81520-03-1
वैश्विक रचनाकार : कुछ मूलभूत जिज्ञासाएँ - भाग 1
प्रथम संस्करण : 2013
द्वितीय संस्करण :
जनवरी 2017
मूल्य : 350.00 रुपये
पृष्ठ : 232

दोनों भाग आकर्षक सेट में भी उपलब्ध मूल्य 750 रुपये

भाग 1 में शामिल रचनाकार

अमेरिका से

वेद प्रकाश 'वटुक'
सुषम बेदी
सुदर्शन प्रियदर्शिनी
अनिल प्रभा कुमार
पुष्पा सक्सेना
डॉ. मृदुल कीर्ति
रेखा मैत्र
देवी नागरानी
शशि पाधा
राकेश खंडेलवाल
अनिता कपूर

कैनेडा से

प्रो. हरिशंकर आदेश
श्याम त्रिपाठी

ब्रिटेन से

तेजेन्द्र शर्मा
उषा राजे सक्सेना
अचला शर्मा
दिव्या माथुर

खाड़ी देशों से

कृष्ण बिहारी
पूर्णिमा वर्मन

डेनमार्क से

अर्चना पैन्यूली

नार्वे से

सुरेश शुक्ल

भारत से

एस. आर. हरनोट
रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'

संपादक का साक्षात्कार

सुधा ओम ढींगरा
साक्षात्कारकर्त्ता- कंचन चौहान

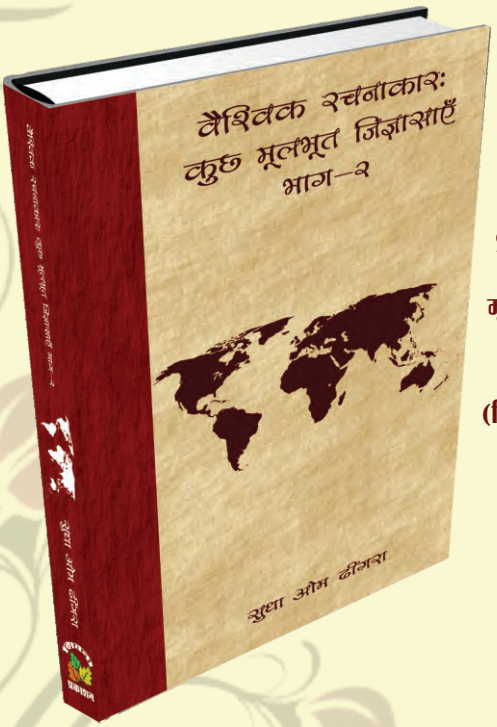

ISBN:
978-93-81520-44-4
वैश्विक रचनाकार : कुछ मूलभूत जिज्ञासाएँ - भाग 2
प्रथम संस्करण :
जनवरी 2017
(विश्व पुस्तक मेला नई दिल्ली)
मूल्य : 400.00 रुपये
पृष्ठ : 280

दोनों भाग आकर्षक सेट में भी उपलब्ध मूल्य 750 रुपये

भाग 2 में शामिल रचनाकार

अमेरिका से

उषा प्रियंवदा
कविता वाचक्नवी
अफ़रोज़ ताज
धनंजय कुमार
अंशु जौहरी
अभिनव शुक्ला
रचना श्रीवास्तव
दीपक मशाल

जॉन कॉल्डवेल

कैनेडा से

सुमन घई
शैलजा सक्सेना

ब्रिटेन से

उषा वर्मा

नीना पॉल
कादम्बरी मेहरा
अरुणा सब्बरवाल

ऑस्ट्रेलिया से

रेखा राजवंशी

मॉरीशस से

डॉ. उदयनारायण गंगू

फीजी से

अनिल जोशी

भारत से

कमल किशोर गोयनका
प्रेम जनमेजय
सुशील सिद्धार्थ

संपादक का साक्षात्कार

सुधा ओम ढींगरा
साक्षात्कारकर्त्ता-पंकज सुबीर

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट
कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9584425995,
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in
https://www.facebook.com/shivna.prakashan

शिवना प्रकाशन की पुस्तकें सभी प्रमुख ऑनलाइन शॉपिंग स्टोर्स पर

Shivna Prakashan Books Available At
All Leading Online Shopping Stores

amazon http://www.amazon.in
flipkart.com http://www.flipkart.com
paytm https://www.paytm.com
ebay http://www.ebay.in

संरक्षक एवं प्रमुख संपादक
सुधा ओम ढींगरा

संपादक
पंकज सुबीर

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय
पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001
दूरभाष : 07562405545, 07562695918
मोबाइल : 09806162184
ईमेल : vibhomswar@gmail.com

ऑनलाइन 'विभोम-स्वर' :
http://www.vibhom.com/vibhomswar.html
http://vibhomswar.blogspot.in
फेसबुक पर 'विभोम स्वर'
https://www.facebook.com/vibhomswar

एक प्रति : 50 रुपये (विदेशों हेतु ५ डॉलर $5)
सदस्यता शुल्क
200 रुपये (एक वर्ष), 400 रुपये (दो वर्ष)
1000 रुपये (पाँच वर्ष), 3000 रुपये (आजीवन)

विदेश प्रतिनिधि
अनिता शर्मा (शंघाई, चीन)
रेखा राजवंशी (सिडनी, आस्ट्रेलिया)

डिज़ायनिंग
सनी गोस्वामी, शहरयार
तकनीकी सहयोग
पारुल सिंह

संपादन, प्रकाशन एवं संचालन पूर्णत: अवैतनिक, अव्यवसायिक।
पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा।
पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर में प्रकाशित होगी।
समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर मध्यप्रदेश रहेगा।

विभोम-स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 1, अंक : 3, त्रैमासिक : अक्टूबर-दिसम्बर 2016
RNI Title Code : MPHIN32709
ISSN NUMBER : 2455-9814

आवरण चित्र
आबिद सुरती

रेखाचित्र
विज्ञान व्रत

Dhingra Family Foundation
101 Guymon Court, Morrisville, NC-27560, USA
Ph. +1-919-678-9056 (H), +1-919-801-0672(MO.)
Email: sudhadrishti@gmail.com

इस अंक में

विभोम-स्वर
वर्ष : 1, अंक : 3
अक्टूबर-दिसम्बर 2016

संपादकीय 5

मित्रनामा 7

साक्षात्कार

कादंबरी मेहरा के साथ सुधा ओम ढींगरा की बातचीत 11

कहानियाँ

क्या आज मैं यहाँ होती....
नीरा त्यागी 17

एक लकीर दर्द की
विकेश निझावन 20

उदास रंग
पुष्पा सक्सेना 25

स्वाभिमान की ख़ुशी
संजय कुमार 31

व्यंग्य

तुम बहस के हॉट केक हो
दिलीप तेतरवे 34

डायरी के अंश

'स्मृति में समय'
प्रताप सहगल 36

संस्मरण

एक और अभिमन्यु
शशि पाधा 39

विमर्श

'कफ़न' कहानी
कमल किशोर गोयनका 43

शहरों की रूह

शंघाई की सड़कें और गलियाँ
अनीता शर्मा 48

आलोचना

समकालीन कविता
डॉ. ममता खाण्डल 51

लघुकथा

प्लान
कमल चोपड़ा 47

इच्छा
सुनील गज्जाणी 55

वापसी का डर
मार्टिन जॉन 55

दोहे

नरेश शांडिल्य 54

कविताएँ

डॉ. विनीता मेहता 56
सुशीला शिवराण 57
राहुल देव 58
अनिल प्रभा कुमार 60
एकता मिश्रा 61
डॉ. शैलजा सक्सेना 62
पारुल सिंह 64

ग़ज़लें

ज़हीर क़ुरैशी 16
विज्ञान व्रत 19, 24
प्रदीप कांत 30, 65
नीलांबुज 'नील' 33
संजु शब्दिता 38, 63
दीपक शर्मा 'दीप' 42

दृष्टिकोण

माँ का आशीर्वाद
जीवन सिंह ठाकुर 66

शोध आलेख

लाल पसीना
सुबोध शर्मा 68

पुस्तक समीक्षा

पॉल की तीर्थयात्रा (अर्चना पैन्यूली)
समीक्षक : डॉ. उमा मेहता 72

काल है संक्रांति का (संजीव वर्मा 'सलिल')
समीक्षक : सौरभ पाण्डेय 74

प्रेम सम्बन्धों की कहानियाँ (रजनी गुप्त)
समीक्षक : वंदना गुप्ता 76

साहित्यिक समाचार

समाचार सार 78

आख़िरी पन्ना 82

कलाकार और बुद्धिजीवी समाज तथा देश से अलग नहीं होते

सुधा ओम ढींगरा
101, गाईमन कोर्ट, मोर्रिस्विल्ल
नॉर्थ कैरोलाइना-27560, यू.एस. ए.
फोन : +1-919-678-9056
मोबाइल : +1-919-801-0672
ईमेल sudhadrishti@gmail.com

मित्रों, मेरी कर्मभूमि में आजकल राष्ट्रपति चुनाव की सरगर्मियाँ ज़ोर-शोर पर हैं और अमेरिका के भाग्य के साथ-साथ विश्व के अन्य देशों की राजनैतिक परिस्थितियाँ क्या करवट लेंगी, सभी की नज़रें आठ नवंबर पर टिकी हैं। आतंकवाद को समाप्त करने के लिए क्या क़दम उठाए जाएँगे; यह तो समय ही बताएगा। वैसे देश की सुरक्षा पर जब आँच आती है तो सत्ता और जनता इकट्ठे खड़े हो जाते हैं। आतंकवाद को जड़ से समाप्त करके ही देश सुरक्षित रह सकता है, यह यहाँ का दर्शन और सोच है।

इस समय विश्व में आतंकवाद ने भय और अशांति का वातावरण पैदा किया हुआ है। ऐसा लगता है कि आतंकवादियों की शक्ल में कई भस्मासुर पैदा हो गए हैं। किसी मोहिनी को उन्हें भस्म करना ही होगा। अब मोहिनी कौन बनेगा, समय के गर्भ में छुपा है। अन्यथा परमाणु बम्ब की धमकी कहीं सच हो गई और भस्मासुरों के हाथ में यह शक्ति आ गई तो तबाही निश्चित है। इसको रोकने के लिए अगर बुद्धिजीवी अब भी नहीं सँभले और अपने-अपने खोलों में बंद, अपनी-अपनी विचारधाराओं में घिरे बस विरोध की राजनीति ही अपनाते रहे तो विश्व का भस्म होना निश्चित है। तब कहाँ जाएँगी विचारधाराएँ और कहाँ रहेगी राजनीति। उठिए और खड़े होइए, कन्धे से कन्धा मिलाकर आतंकवाद का विरोध करें और उसके लिए उचित कदम उठाएँ।

कलाकार और बुद्धिजीवी समाज तथा देश से अलग नहीं होते। फिर वे स्वयं को जवानों और जनता से अलग क्यों मानने लगते हैं। क्यों यह समझ लिया जाता है कि वे देश की धरोहर हैं और उन्हें अलग तरीके से देखा, परखा और समझा जाए। अगर देश के सिपाही सरहदों पर पहरा देना छोड़ दें, वैज्ञानिक नई-नई खोजें करनी बंद कर दें, डॉक्टर मरीज़ न देखें और व्यापारी ज़रूरत की वस्तुएँ मुहैया ना करवाएँ, अध्यापक पढ़ाना छोड़ दें, सफ़ाई मज़दूर सफ़ाई करना रोक दें, तो ज़रा सोचिए देश की क्या परिस्थितियाँ होंगी? हरेक व्यक्ति अपने क्षेत्र में विशेष हैं, महत्त्वपूर्ण है। जनता से ही कलाकार और बुद्धिजीवी हैं। सब एक दूसरे से और देश से जुड़े हैं। फिर देश को चोट पहुँचे तो कलाकार या लेखक अलग कैसे हो सकते हैं? पड़ोसी मुल्क के कलाकार अपने देश की ग़लतियों में भी अपने देश का साथ दें और स्वदेश के कलाकार अपने देश की परवाह ना करके, उन कलाकारों के हक़ के लिए बयान दें, जो सिर्फ अपने देश के लिए वफ़ादार हैं। ऐसे समय में पड़ोसी देश के कलाकारों का कलात्मक पक्ष कहाँ हैं? क्या वे कलाकार नहीं ? किसी भी देश का इससे बड़ा दुर्भाग्य क्या हो सकता? दुर्योधन का साथ भी तो कर्ण जैसे दानी ने दिया था। महाभारत के युद्ध का क्या अंत हुआ। दुर्योधन के साथ कर्ण भी मारा गया। सोचने का समय है, सोचिए! आतंकवाद बस तबाह करता है, इसके समर्थन का किसी को कोई लाभ नहीं होता। अंत तबाही में ही होता है। विचारधारा, सत्ता, शक्ति का युद्ध फिर लड़ लें अभी तो सामने खड़ी आतंकवाद की समस्या से जूझ लें, जिनका धर्म सिर्फ़ तबाही है।

जब यह लिख रही थी, जन्मभूमि से समाचार आ चुका था कि देश के सैनिकों ने

आतंकवादियों के घर में घुस कर उनके ठिकानों को समाप्त किया। गर्व है स्वदेश के जवानों पर। बहुत से जवानों की कुर्बानी देश दे चुका है। अब और नहीं...

मैंने पिछले संपादकीय में लिखा था कि कोई 'प्रेम ग्रन्थ' लिखे जो कल का वह 'धर्म ग्रन्थ' बने। उसे लिखने के बाद ही आतंकियों ने भारत की सीमा पर कई जवान मार डाले, न्यूयार्क एवं न्यूजर्सी में बम्ब ब्लॉस्ट हुआ। तभी विभोम-स्वर को ऑन लाइन पढ़ कर दो पाठकों के ऐसे पत्र आए, जिनका यहाँ ज़िक्र करना ज़रूरी समझती हूँ। एक पाठक देवांशु शुक्ल का पत्र मिला-'मैम जब तक अधर्मी आतंक का धर्म फैला रहे हैं, तब तक आपका 'प्रेम ग्रन्थ' कभी 'धर्म ग्रन्थ' नहीं बन सकता। कौन समझेगा और कौन समझाएगा? देश के सभी राजनेता अपनी-अपनी दुकानदारी भुनाने पर लगे हैं। देश के लिए कौन सोचता है? देश के लिए सही क्या है और ग़लत क्या है इसे वे सोचना ही नहीं चाहते बस सत्ता की दौड़ है। क्योंकि प्रेम सत्ता से है, देश से नहीं। ऐसे में प्रेम ग्रन्थ की परवाह कौन करेगा?'

देवांशु जी, आतंकवाद का अंत होना चाहिए पर प्रेम ग्रन्थ, धर्म ग्रन्थ ज़रूर बने इसकी कामना तो मैं मरते दम तक करती रहूँगी। मैं नहीं तो आने वाली पीढ़ियाँ तो इसका सुख ले लेंगी।

दूसरा पत्र एक अमेरिकन पाठक पिटर हॉस से मिला, जो यहाँ की एक आई टी कंपनी में बहुत बड़े पद पर हैं और अधिकतर भारत में रहते हैं। हिन्दी को अच्छी तरह पढ़-लिख लेते हैं। विभोम-स्वर भारत के साथ-साथ अमेरिका की भी पत्रिका है, उन्हें सर्च से पता चला तो उन्होंने पत्रिका पढ़ी और पत्र लिखा-'सुधा जी, भारत जब तक फ्रांस और अमेरिका की तरह एकजुट होकर आतंकवाद का उत्तर नहीं देगा। यह तलवार भारत के सर पर टँगी ही रहेगी। हाँ, एक बात से सहमत हूँ, प्रेम का सन्देश भारत से ही दुनिया को मिलेगा। गौतम बुद्ध, और योग विश्व को भारत की ही देन है।'

पीटर जी, भारत पर जब-जब भी आँच आई है, देशवासी एकजुट हुए हैं। भारत ने विश्व को और भी बहुत कुछ दिया है, इस पर चर्चा फिर कभी करूँगी। पत्र लिखने के लिए धन्यवाद।

दोस्तों! विदेश में ज़रूर बैठी हूँ पर कर्मभूमि और जन्मभूमि के दु:ख-सुख की साझीदार हूँ। प्रेम का सन्देश विश्व में पहुँचाती रहूँगी। आपके साथ और प्रतिक्रिया की चाहत भी रहेगी।

कलाकार हैदर रज़ा, आलोचक, नाटककार और साहित्य मनीषी प्रभाकर श्रोत्रिय, हज़ार चौरासी की माँ महाश्वेता देवी, कथाकार, विचारक मुद्राराक्षस, कहानीकार सतीश जमाली तथा कवि नीलाभ के चले जाने से साहित्य जगत् सूना हो गया। दुनिया से जाने वाले, जाने चले जाते हैं कहाँ... विधाता की मर्ज़ी स्वीकारने के अतिरिक्त हमारे पास और कोई विकल्प नहीं होता। विभोम-स्वर की टीम की ओर से दिवंगत आत्माओं को भावभीनी श्रद्धांजलि.... अगला अंक आने तक आप सभी कई त्योहार मना चुके होंगे। नवरात्री, दशहरा, दीपावली और क्रिसमस। विभोम-स्वर की टीम की ओर से अग्रिम बधाइयाँ!!!! ढेरों शुभकामनाएँ!!!

सुरक्षित रहें...

आपकी,

सुधा ओम ढींगरा

त्योहार सामने आते हैं तो मन में उमंग जगा देते हैं। रोज़मर्रा के रूटीन से हटकर कुछ दिन विशेष तरीके से जीने का समय होता है त्योहार का समय। एकरसता को तोड़ने का समय। आने वाले समय के लिये बहुत सी ऊर्जा एकत्र करने का समय। आइए इस समय को जी लें।

मित्रनामा

हार्दिक अभिनन्दन

साहित्य की विभिन्न दीर्घाएँ खोलता 'विभोम-स्वर' का प्रवेशांक प्राप्त हुआ, आभार। 'नीली तितली' और 'अजपा जाप' कई दृष्टिकोण से सार्थक और सुंदर कहानियाँ हैं। प्रेम जनमेजय की 'अथ गाँधारी युग कथा' बहुत कुछ सोचने पर बाध्य करती है। कुल मिलाकर पाठकों को 'विभोम-स्वर' के आगामी अंकों से पर्याप्त अपेक्षा रहेगी प्रकाशक एवं संपादक मंडल को मेरा हार्दिक अभिनन्दन।

-डॉ. अचला नागर (मुंबई)
achala0212@gmail.com

****

विचारोत्तेजक संपादकीय

'विभोर-स्वर' का नया अंक देखा। बहुत सुन्दर और विविध प्रसंगों से भरपूर एवं प्रस्तुतीकरण कलात्मक। आपका परिश्रम स्पष्ट दिखाई देता है। आपका संपादकीय एकदम सामयिक है और विचारणीय के साथ करणीय भी है। आपके मन की बात प्रत्येक लेखक के मन की बात है। धर्म और राजनीति का मिश्रण भयानक संकट पैदा कर रहा है। सारा संसार इसे देख रहा है और भोग रहा है। यह धार्मिक एकतरफा युद्ध मानवता के लिए संकट बनता जा रहा है। मानवता के इस संकट में आपकी आवाज़ में मेरी तथा अन्य लेखकों की आवाज़ भी शामिल है। मानवता सबसे बड़ा धर्म है और उसकी रक्षा करनी ही होगी। इतने विचारोत्तेजक संपादकीय के लिए बधाई और इतने पठनीय अंक के लिए भी बधाई।

-कमल किशोर गोयनका (दिल्ली)
kkgoyanka@gmail.com

****

'विभोम-स्वर' तथा 'शिवना साहित्यिकी' पत्रिकाएँ मिलीं। मैं आभारी हूँ। पत्रिकाएँ बहुत ही सामयिक, प्रासंगिक होने के साथ यथार्थपूर्ण रचनाओं के साथ हम कदम है। बधाई स्वीकारें।

आपके संपादन में पत्रिकाएँ और उन्नति एवं साहित्य तथा समाज में 'अनिवार्य' बनेगीं ऐसी उम्मीद है।

आपका 'उपन्यास' पढ़ रहा हूँ कुछ नोट्स भी लिए है। देवास में इस पर चर्चा होनी है। उपन्यास पठनीय तथा यथार्थ से मुठभेड़ करते हुए हालातों को रेखांकित करते चलता है।

हार्दिक शुभकामनाओं सहित।

-जीवन सिंह ठाकुर, अध्यक्ष, प्रेमचन्द सृजन पीठ- एफ-2, अधिकारी आवास, विक्रम विश्व विद्यालय परिसर, उज्जैन
मोबाइल 9424029724

****

विशिष्ट पहचान बनाए

'विभोम-स्वर' का प्रवेशांक मिला। बेहतरीन अंक के लिए आपको और पंकज जी को हार्दिक बधाई ! 'विभोम-स्वर' पत्रिकाओं में अपनी विशिष्ट पहचान बनाए इसके लिए संपादक मंडल को हार्दिक शुभकामनाएँ !

-सुशीला शिवराण (गुड़गाँव)
sushilashivran@gmail.com

****

अंक पठनीय व संग्रहणीय

'विभोर-स्वर' की प्रति मिली। अति धन्यवाद। सुधा ओम ढींगरा व पंकज भाई की कॉम्पाईलेशन विशेषता का सौंदर्य रचनाओं, कथाओं, समीक्षाओं, के रख-रखाव से बेहद उभरकर निखार के स्तर पर आन विराजा है। देस-परदेस के जाने-माने सिद्धांत कलाकारों के सिवा नए लेखकों को भी इसमें शामिल करने की पहल की गई है। यह क़दम प्रशंसनीय है.... अंक पठनीय व संग्रहणीय है। बेपनाह शुभकामनाओं के साथ.....

-देवी नागरानी (अमेरिका)
dnangrani@gmail.com

****

सशक्त हस्तक्षेप

सबसे पहले आपका संपादकीय 'क्या इंसानियत का पाठ इतना कठिन है....' पढ़ने की सुख मिला। आपका संपादकीय पढ़ने लिए अब अंतिम पृष्ठ तक नहीं जाना पड़ेगा, बात है। इंसानियत का सवाल उठा कर आपने सशक्त हस्तक्षेप किया है। बिलकुल यह कठिन नहीं है, पर लोगों के स्वार्थ ने इसे दुर्लभ बना दिया है। मानव का मानव से प्यार बढ़े, यही है असली बात। हम दुनिया में आए हैं तो प्यार बाँटते चलें। आपका संपादकीय यही सन्देश देता है। अमरीका में रहते हुए आप वर्षों से यही कर रही हैं। यह सब आपके स्वभाव में है। आपसे हमें और साहित्य को बड़ी उम्मीदें हैं। आपका लेखन आदर्श की वकालत करता है। पत्रिका की हर रचना आपकी प्रकृति के अनुकूल है। कुशल संपादक पंकज सुबीर की मेहनत की जितनी तारीफ़ की जाए, कम ही है। पत्रिका हिन्दी साहित्य को दिशा दे सके, श्रेष्ठ लेखन सामने आए, यही शुभकामना है मेरी।

-गिरीश पंकज, संपादक, सद्भावना दर्पण, 28 प्रथम तल, एकात्म परिसर, रजबंधा मैदान रायपुर. छत्तीसगढ़. 492001, मोबाइल : 09425212720

****

मन हरा हो गया

अभी-अभी विभोम-स्वर का नया अंक देखा। मन हरा हो गया। अब मैं इसकी तुलना हिन्दी की जानी-मानी पत्रिकाओं के साथ कर सकती हूँ। इसका लेआउट, सामग्री का चयन और उसका स्तर किसी भी नामी पत्रिका से कमतर नहीं है। आपके कुशल संपादन की खूशबू इसके हर पन्ने में महक रही है। साधुवाद।

-सुदर्शन प्रियदर्शिनी, ओहायो, अमेरिका।
sudarshansuneja@yahoo.com

****

उच्च कोटि

संपादन और प्रकाशन उच्च कोटि का है। मेरी कुछ रचनाएँ शामिल करने के लिए धन्यवाद।

-धंनजय कुमार, वर्जिनिया, अमेरिका।
dkyoga@hotmail.com

****

गागर में सागर भरती पत्रिका

वैश्विक हिन्दी चिन्तन का उद्घोष करती ओम के अखंडित निनाद को संपूर्ण समाहित करने और उसे स्वदेश से विदेश तक प्रसारित करने का संकल्प लिए उपरोक्त पत्रिका प्राप्त हुई। मैं गागर में सागर भरती पत्रिका के प्रचार-प्रसार की और इसके उज्ज्वल भविष्य की कामना करती हूँ।

-पुष्पा मेहरा, बी-201, सूरजमल विहार, दिल्ली 92

****

गहरी एवं चिंतनशील अनुभूति

'विभोम-स्वर' का जुलाई-सितम्बर 2016 का अंक पढ़ा। सुधा ओम ढींगरा जी का संपादकीय 'क्या इंसानियत का पाठ इतना कठिन हैं कि उसे पढ़ा नहीं जा सकता' बहुत ही गहरी एवं चिंतनशील अनुभूति को अभिव्यक्त करता हैं। 'प्रेमग्रंथ धर्मग्रंथ बने' यह बात दिल को छू गई। 'विभोम-स्वर' का प्रवेशांक जितना बेहतर था उतना ही श्रेष्ठ जुलाई-सितम्बर का अंक भी हैं। भारतीय स्त्री-विमर्श को लेकर उषा वर्मा जी के साथ सुधा जी की बातचीत विशेष जानकारी प्रदान करनेवाली हैं। सुदर्शन प्रियदर्शिनी की 'खाली हथेली', अखिलेश मिश्रा की 'स्कूल प्रवेश', रजनी गुप्त की 'दूसरा नरक' कहानी जीवन दर्शन और प्रेरणा से भरपूर हैं। दोहे, लघुकथा, कविता, ग़ज़ल एवं पुस्तक वार्ता सभी मिलाकर एक सुंदर साहित्यिक माहौल उभरता हैं, जो सभी साहित्य प्रेमियों के लिए रसप्रद हैं। सुधा जी और पंकज सुबीर जी के द्वारा संपादित यह पत्रिका अपने शुरूआती चरण में ही हिन्दी साहित्याकाश में आकाशगंगा की भाँति साहित्य की विभिन्न विधाओं के रंग बिखेर रही हैं। मुझे 'विभोम-स्वर' का अंक भेजकर इस पत्रिका से लाभान्वित करने के लिए आपका बहुत-बहुत शुक्रिया। शुभकामनाओं के साथ...

-डॉ. उमा मेहता, आसिस्टन्ट प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, एम. पी. शाह आर्ट्स एन्ड साइंस गवर्नमेन्ट कॉलेज, सुरेन्द्रनगर, गुजरात (भारत)

****

बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्य

'विभोम-स्वर' का जुलाई-सितम्बर 2016 का अंक मिला। इस अंक में सभी स्तरीय रचना को समाहित करके आपने उत्कृष्ट कार्य किया है। सभी रचनाएँ पाठक को पूरे समय बाँधे रखने में सक्षम है। आपने अपने संपादकीय में कई महत्त्वपूर्ण सवाल भी उठाए हैं; जो हमें सोचने को मजबूर करते हैं। मैं समझता हूँ कि हमारा यह लेखकीय दायित्त्व है और हम सभी को इस सन्दर्भ में आवाज़ उठानी होगी ताकि समाज को इन विद्रूपताओं से बचाया जा सके। आप पत्रिका के माध्यम से बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही हैं। इसके लिए मैं आपको बधाई देता हूँ।

-अशोक आंद्रे, दिल्ली
ashok_andrey@yahoo.com

****

कलात्मक भाषा के प्रयोग

आपकी नई शुरूआत का स्वर अपने हाथों में पा कर अत्यंत प्रसन्ता हुई ! आने वाले समय में आपकी कृति के स्वर में और मधुरता, रचनात्मकता, कलात्मकता और उदारता की ईश्वर से कामना करती हूँ ! चुनिंदा रचनाओं और कलात्मक भाषा के प्रयोग से भरा स्वर जब किसी नई-पुरानी अनुभूति को छू कर गुज़रता है तो उसकी चहचाहट और महक कई अरसे तक अंतर्मन को सराबोर रखती है! ऐसी ही छाप आपके और आपके साथियों के इस प्रयास-इस स्वर की बने, ऐसी मुझे आशा और चाह है!

-गीता घिलोड़िया, शार्लोट, अमेरिका
fine.art.gita@gmail.com

****

हिन्दी पत्रिकाओं में अग्रणीय स्थान

'विभोम-स्वर' का प्रवेशांक प्राप्त हुआ। संपादकीय से लेकर सभी स्तंभ धीरे-धीरे पढ़ती गई। 'परिवर्तन जीवन का नियम है' और अगर परिवर्तन उन्नति की दिशा की ओर इंगित करे तो सुखद एवं स्वागत योग्य है। इस अंक में गज़ल, नवगीत, मुक्त छंद रचनाएँ तो पाठक को प्रसन्न करेंगी ही, दोहों की प्रस्तुति और भी आकर्षित करती हैं। सभी कहानियों का केंद्र बिंदु औरत या प्रेम हो सकता है; किन्तु कथ्य की दृष्टि से सभी एक दूसरे से भिन्न हैं। जैसे एक थाली में परोसे अलग-अलग स्वादिष्ट व्यंजन। संध्या तिवारी जी की 'हूटर' ने खूब हूट किया। गौतम जी ने आदरणीय अदम जी के व्यक्तित्व और कृतित्व से परिचित करवाया, उनका धन्यवाद। 'पुस्तक वार्ता' बहुत सराहनीय स्तंभ है, जो पाठक को पुस्तक पढ़ने को लालायित करेगा। प्रेम जनमजेय का व्यंग्य किसी राजनैतिक पात्र तथा परिस्थिति की ओर इशारा करता है। संस्मरण एवं अन्य आलेख भी बहुत स्तरीय हैं। मुख्य बात यह है कि अपने प्रवेशांक से ही 'विभोम-स्वर' ने हिन्दी की पत्रिकाओं में एक अग्रणीय स्थान बना लिया है। इस सराहनीय कार्य के लिए आप सब बधाई के पात्र हैं।

पत्रिका के उज्ज्वल भविष्य की कामना के साथ,

-शशि पाधा, वर्जिनिया, यू.एस. ए
shashipadha@gmail.com

****

आपने 'विभोम-स्वर' के पहले अंक में मेरी कहानी को स्थान दिया, इसके लिए अत्यंत आभारी हूँ। पत्रिका अपने संपूर्ण कलेवर में अत्यंत विशिष्ट है। पत्रिका को देखकर वास्तव में लगता नहीं कि यह पत्रिका का पहला अंक है। इस बीच पत्रिका का दूसरा अंक भी मिला।

आप बहुत बड़ा कार्य कर रही हैं। विचार और संवाद के लिए यह पत्रिका साझा मंच बनेगी, इसका मुझे पूरा विश्वास है।

-डॉ. हर्षबाला शर्मा, सहा. प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, इन्द्रप्रस्थ कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

****

बेहतरीन संपादकीय

'विभोम-स्वर' का द्वितीय अंक पढ़ा। बेहतरीन संपादकीय से पत्रिका की शुरूआत हो तो अंक पढ़ने का मज़ा ही अलग है। सभी कहानियों का चयन बड़ी सूझ-बूझ के

साथ किया गया है। सुभाष चंदर जी के व्यंग्य लाजबाब होते हैं। एक सच्ची-मुच्ची की प्रेम कहानी भी स्तरीय व्यंग्य है। मधुदीप की लघुकथा 'जाग्रति' लघुकथा के मापदंड पर खरी उतरती लघुकथा है। पत्रिका में कविताओं को भी पर्याप्त स्थान दिया गया है, जो अमूमन हिन्दी पत्रिकाओं में देखने को नहीं मिलता। अलग-अलग विधाओं को पर्याप्त स्थान देने के लिए संपादिका जी धन्यवाद की पात्र हैं।

-संदीप तोमर, जीवन पार्क नई दिल्ली
मोबाइल : 8377875009

****

पत्रिका सफलता के पायदान पर

प्रमुख संपादक सुधा ओम ढींगरा व संपादक पंकज सुबीर के संपादकत्व में प्रकाशित 'विभोम-स्वर' का जुलाई--सितंबर, 2016 का अंक प्राप्त हुआ। आकर्षक कवर व पठनीय सामग्री है। नए पुराने लेखकों का सम्मिश्रण है। पूरी टीम को बहुत-बहुत बधाई!! पंकज सुबीर का लिखा आख़िरी पन्ना बहुत ही पसंद आया.... पाठक दर्शक बन गया है....सौ सुनार की, एक लुहार की। आगामी वर्षों में पत्रिका सफलता के पायदान पर अग्रसर हो, इसी शुभकामना के साथ....

-मधु अरोड़ा, मुंबई

****

पूरा अंक ही विशिष्ट

'विभोम-स्वर' का जुलाई अंक मिला। धन्यवाद। कलम कागज़ स्याही न रहे /तो भी अंगुलियाँ लिखेंगी पानी से इबारत पत्थर पर- यही आपके साहस और जज़्बे की कहानी है। कहानी 'खाली हथेली' एक बहुत अच्छी मार्मिक दिल को छूने वाली कहानी है। यों तो पूरा अंक ही विशिष्ट है। बधाई!!!!

-सुधा गोयल, बुलन्दशहर, यू.पी.

****

मन प्रसन्न हो गया

विभोम-स्वर दो आज मिला। कवर डिज़ाइन देखते ही मन प्रसन्न हो गया। भीतर के लेऑऊट में भी ताज़गी नज़र आई। जिस ढंग से लेखक की तसवीर के साथ उसके परिचय का कॉलम बनाया गया है, क़ाबिले दाद है। कहने को तो काफ़ी कुछ है, लेकिन इतना ज़रूर कहूँगा, डॉ. अफ़रोज़ ताज की कहानी 'क्या-क्या बताऊँ' पढ़ी तो कई पुरानी यादें ताज़ा हो गईं। कई ज़ख़्म फिर से हरे हो गए। बधाई और शुभकामनाएँ!!

-आबिद सुरती, मुम्बई

****

प्रशंसनीय

'विभोम-स्वर' का अंक मिला। धन्यवाद। आज के समय में और वह भी हिन्दी भाषा में एक पत्रिका का प्रकाशन कितनी अधिक प्रतिबद्धता की माँग करता है, इसे मैं बखूबी महसूस करता हूँ। ऐसे में 'विभोम-स्वर' जैसी पत्रिका का प्रकाशन प्रशंसनीय है। हमारी शुभकामना स्वीकार करें। इस अंक में प्रकाशित साहित्य की विविध विधाओं-साक्षात्कार, कहानियाँ, लघुकथा, व्यंग्य, भाषांतर, दोहे, कविताएँ, ग़ज़लें, संस्मरण, पुस्तक समीक्षा सब अपनी जगह प्रशंसनीय हैं। हमारी शुभकामना और बधाई !

-अमरेंद्र मिश्र, संपादक- 'समहुत', 4/516 पार्क एवेन्यू, वैशाली, गाजियाबाद 201010

****

खरी-खरी कही गई है

'शिवना साहित्यिकी' और 'विभोम-स्वर' एक साथ मिली। धन्यवाद।

दोनों पत्रिकाओं में प्रकाशित सामग्री को लेकर शहरयार जी ने स्पष्टीकरण दे ही दिया

Comp 4:\Letters RG Personal/Personal

All India Tribal Literary Forum
President : Hari Ram Meena
Mob. 09414124101
Coordinator : Cicil Khaka
Mob. 09810511081
Office : 1516, Wazir Nagar, Kotla Mubarakpur
New Delhi-110003

रमणिका गुप्ता (पूर्व विधायक)
अध्यक्ष : रमणिका फाउंडेशन
Ramnika Gupta (Ex. M.L.A.)
(Jharkhand)
President : Ramnika Foundation
कृष्ण कुमार नाग (पूर्व कुलपति)
संस्थापक सदस्य
K. K. Nag (Ex. Vice Chanceller)
Founder Member

रमणिका फाउण्डेशन
मुख्य कार्यालय : मेन रोड हजारीबाग, झारखंड-825301
प्रशा. कार्यालय : 1516, वजीर नगर, कोटला मुबारकपुर (F.F.),
नई दिल्ली-110005, फोन : 011-46577704 मो. 9312039505
Ramnika Foundation
Head Office : Main Road Hazaribagh, Jharkhand-825301
Admn. Office : 1516, Wazir Nagar, Kotla Mubarakpur
New Delhi-110003
ई-मेल/E-mail : Ramnika01@gmail.com

पत्रांक/रगु/4-2016-2017 दिनांक : 23 मई, 2016

संपादक
'विभोम स्वर'
पीसी लैब, शॉप नं. 3-4-5-6
सम्राट काम्प्लेक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर-46601, मध्य प्रदेश

'विभोर स्वर' का प्रवेशांक मिला। बहुत-बहुत धन्यबाद। प्रवेशांक में आने नए-पुराने लेखकों को छापकर सराहनीय कार्य किया है। वरिष्ठ लेखकों के साथ-साथ युवा लेखकों की रचनाएं प्रशंसनीय और दृष्टिसंपन्न हैं। युवा लेखकों-लेखिकाओं को ज्यादा से ज्यादा छापें। युवा लेखक-लेखिकाएं हिंदी साहित्य के लिए मील का पत्थर साबित होंगे क्योंकि उनके पास सरोकार, दृष्टि, तेवर और भाषा सभी कुछ हैं। आपकी विशेषता है कि आप प्रवासी-अप्रवासी सभी किस्म के लेखकों को प्रमुखता से छापते हैं। एक सुझाव देना चाहूंगी कि आप अपनी पत्रिका में दलित और आदिवासी स्वर को भी जगह दें। पत्रिका आपकी बेमिसाल हो जाएगी। पत्रिका में किताबों की समीक्षाएं आकर्षित करती हैं।

आपकी विश्वासी
रमणिका गुप्ता

रमणिका गुप्ता
संपादक : युद्धरत आम आदमी
ए-221, ग्राउंड फ्लोर
डिफेन्स कॉलोनी, नई दिल्ली-24
मो. 09312039505, फोन : 011-46577704

Please Contact at : A-221, G.F. Defence Colony, New Delhi-110024
Phone No: 46577704, Mob. : 09312039505 E-mail : ramnika01@gmail.com

है, जिससे इस संबंध में उठे सवाल का जवाब मिल गया।

दोनों पत्रिकाओं में जो खरी-खरी कही गई है उसका ही जिक्र करूँगा। शहरयार जी ने दिलेरी से समीक्षाओं के स्तर और समीक्षा के तरीके को लेकर जो कहा है वह एकदम सही है, इसके लिए वे बधाई के पात्र हैं।

इसी क्रम में आपने जो आख़िरी पन्ने पर 'आरंभिक ज़रूरी' बात कही है, उसे जोड़ा जा सकता है। जैसा कि आपने लिखा ही है 'लेखक ने आलोचक और पाठक में से आलोचक को चुना, उसी तरह समीक्षक भी आलोचक अर्थात् अन्य समीक्षक और अन्य साहित्यकारों को दृष्टि में रखकर ही समीक्षा लिख रहे हैं। मतलब पाठक यहाँ भी गौण हो गया है, अधिकांश समीक्षाएँ पाठकों के लिए नहीं लिखी जा रही हैं। भाषा-शैली से ही प्रतीत होता है कि पाठक उनकी दृष्टि में कहीं नहीं है और नतीजतन समीक्षा में संतुलन का अभाव पाठक को कृति की सही तस्वीर नहीं दिखा पाता। यही बात मेरे मन में थी जो 'अकाल में उत्सव' पर संक्षेप में अपने विचार रखने के बाद मैंने एक किसान को ही उस पर लिखी कथा पर टिप्पणी की ज़िम्मेदारी सौंप दी।

बहरहाल दोनों पत्रिकाओं के प्रकाशन के लिए बधाई और शुभकामनाएँ।

विद्वानों ने जब यह बात कही थी कि हिन्दी साहित्य महानगरों से नहीं बल्कि कस्बों और छोटे शहरों से निकलने वाले साहित्यकारों से ही आगे बढ़ेगा, (बचेगा) तब यह सोचा भी नहीं था कि अपने नज़दीक सीहोर का इतना महत्त्वपूर्ण योगदान होगा। धन्यवाद

-महेश शर्मा, उज्जैन

****

समावर्तन

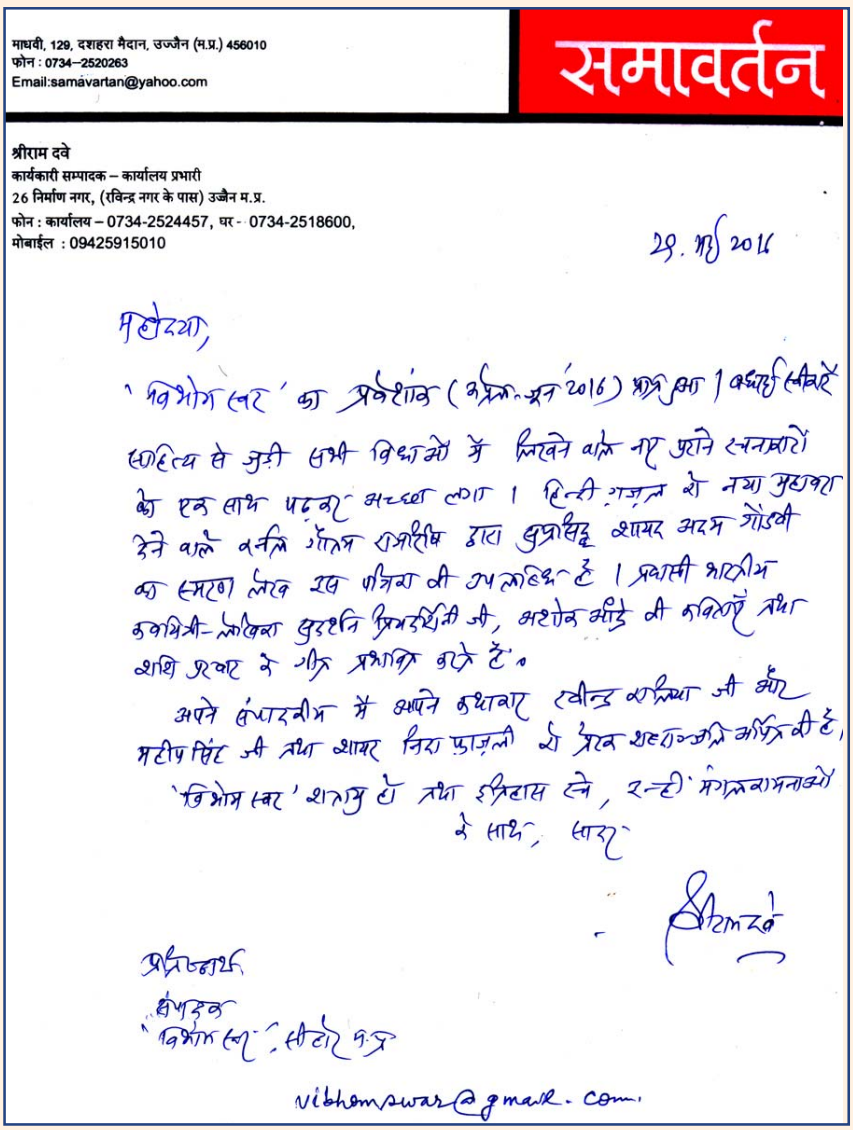

माधवी, 129, दशहरा मैदान, उज्जैन (म.प्र.) 456010
फोन : 0734-2520263
Email:samavartan@yahoo.com

श्रीराम दवे
कार्यकारी सम्पादक - कार्यालय प्रभारी
26 निर्माण नगर, (रविन्द्र नगर के पास) उज्जैन म.प्र.
फोन : कार्यालय - 0734-2524457, घर - 0734-2518600,
मोबाईल : 09425915010

29. मई 2016

महोदया,

'विभोम स्वर' का प्रवेशांक (अप्रैल-जून 2016) प्राप्त हुआ। बधाई स्वीकारें
साहित्य से जुड़ी सभी विधाओं में लिखने वाले नए पुराने रचनाकारों को एक साथ पढ़कर अच्छा लगा। हिन्दी ग़ज़ल को नया मुहावरा देने वाले कवि गौतम राजरिषि द्वारा सुप्रसिद्ध शायर अदम गोंडवी का स्मरण लेख इस पत्रिका की उपलब्धि है। प्रवासी भारतीय कवयित्री-लेखिका सुदर्शन प्रियदर्शिनी जी, अशोक आंद्रे की कविताएँ तथा शशि पुरवार के गीत प्रभावित करते हैं।

अपने संपादकीय में आपने कथाकार रवीन्द्र कालिया जी और महीप सिंह जी तथा शायर निदा फ़ाज़ली को प्रेरक श्रद्धाञ्जलि अर्पित की है।

'विभोम स्वर' शतायु हो तथा इतिहास रचे, इन्हीं मंगलकामनाओं के साथ, सादर

श्रीरामदवे

प्रतिष्ठार्थ,
संपादक
'विभोम स्वर', सीहोर म.प्र.

vibhomswar@gmail.com

संवेदनशीलता से वर्णन

जुलाई अंक के संपादकीय में आपने इस दुनिया में लुप्त हो रहे मानव प्रेम और बढ़ती नफ़रत का बहुत ही संवेदनशीलता से वर्णन किया है.... आपकी कलम में अद्भुत ताकत और उसके साथ विनम्रता भी है। बहुत बहुत बधाई!!

-हार्दिक नायक, कैरी, नॉर्थ कैरोलाइना, अमेरिका।

****

अच्छे प्रयास के लिए-साधुवाद

भाई सदाशिव कौतुक के माध्यम से 'विभोम-स्वर' का प्रवेशांक पढ़ने हेतु प्राप्त हुआ। हिन्दी भाषा-साहित्य जगत् में एक नई पत्रिका का पदार्पण सुखद लगा स्वागत है, अभिनंदन है पत्रिका परिवार का, अशेष शुभकामनाएँ स्वीकारें।

- इस अंक में प्रकाशित कहानी 'बिग बॉय' मैंने पूरे परिवार को सुनाई। बाल मनोविज्ञान के साथ बड़े / समझदारों को सीख देती कहानी। सपना मांगलिक को अच्छी कहानी के लिए साधुवाद।

-शकुन्तला बहादुर का स्मृति चिह्न- स्मृतियों में बस गया, भाषा-शैली दोनों का उत्कृष्ट उदाहरण।

-अदम गोंडवी को प्रत्यक्ष सुनने का अवसर समिति में मिला था 'पेट के भूगोल में उलझा हुआ है आदमी...।'

-पुस्तक वार्ता के माध्यम से अच्छी नवीन पठनीय पुस्तकों से अवगत हो सका।

एक अच्छे प्रयास के लिए-साधुवाद

- हरेराम वाजपेयी 'आश'

****

खुदा अमन बख़्शे

'विभोम-स्वर' और 'शिवना साहित्यिकी' हासिल हुए। संपादकीय में आतंकवाद पर चिंता जाहिर की गई है, स्वाभाविक भी है, आज वाकई दुनिया एक भयानक दौर से गुज़र रही है।

-अनन्त आलोक, बायरी, तहसील ददाहू, जिला सिरमौर, हिमाचल प्रदेश
anantalokv@gmail.com

****

हर लेखक सामाजिकता से बंधा है

(यूके की रचनाकार कादंबरी मेहरा के साथ सुधा ओम ढींगरा की बातचीत)

यू.के. की कादंबरी मेहरा से मैं कभी मिली नहीं पर फ़ोन और इमेल द्वारा साहित्यिक चर्चा कई बार हुई। नई सदी का कथा समय (संपादक-पंकज सुबीर) के लिए एक गोलमेज़ परिचर्चा तैयार की थी-इक्कीसवीं सदी की प्रवासी कहानी। इसमें कादंबरी जी की भी भागीदारी थी। निडर, निस्संकोच अपने विचार रखती हैं। कादंबरी जी से ऑन लाइन बातचीत की। आत्मविश्वास से भरपूर उनके बेबाक उत्तर पढ़ें-

प्रश्न : कादंबरी जी, कहा जाता है कि लड़ाई तलवार से ही नहीं, कलम से भी लड़ी जा सकती है। इसके बारे में आपकी राय जानना चाहती हूँ, क्या लेखनी से स्त्री अपने अस्तित्व और स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ सकती है?

उत्तर : यह सच है कि लेखन एक शक्तिशाली माध्यम है, जिसमें किसी भी लड़ाई के औज़ार से अधिक मारने की क्षमता है। परन्तु केवल स्थिति विशेष में। सामान्यत: लेखन, खासकर स्त्री लेखन, केवल मनोरंजन बन कर रह गया है।

स्वयं यही प्रश्न अनेक प्रश्नों को जन्म देता है। स्त्री स्वतंत्रता का अर्थ क्या है ? स्वतंत्रता किससे ? क्या किसी व्यवस्था से ? या पूर्वाग्रहों से ? या प्राकृतिक नियमों से ? यह सर्वमान्य है कि आदि मानव समूह मातृ प्रधान थे। समस्त विश्व में। अभी भी हैं। पैतृक वंश की स्थापना शनै: शनै: हुई। भोजन प्रदान करनेवाली वनस्थली जब तक सामान्य भूमि रही (No man No land), मातृक समूह माँ के संरक्षण में स्वच्छंद विचरते रहे। कृषि के विकास के साथ ही क्षेत्रों के अधिकरण का सिलसिला शुरू हुआ। और इसके साथ ही शुरू हुआ पुरुष प्रधानता का युग भी। स्त्रियाँ कृषि में दोयम, यद्यपि सबल रहीं। क्योंकि वह मासिक धर्म और प्रसूति की आवश्यकता से बंधी थीं। यही प्राकृतिक नियम विवाह का जनक बना। पुरुष अन्य के बच्चों का उत्तरदायित्व नहीं लेना चाहता था। इसी नियम के तहत स्त्री स्वातंत्र्य गौण होता चला गया।

दूसरे, शरीर में हार्मोन्स के विकास के साथ स्त्री का मातृत्व की ओर अग्रसर होना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। शारीरिक व मानसिक दोनों की तृप्ति के लिए। प्रत्येक स्त्री का जन्माधिकार है कि वह माँ बने और इसलिए उसे पुरुष तत्व को स्वीकार करना होगा। तब उसे पुरुष के लिए आकर्षक भी बनना होगा ताकि वह उसे अंगीकृत करे। रिश्ता ग्राहक व खरीदार का बन जाता है। आज की स्त्री अपना भरण पोषण करने में समर्थ है तो भी क्या वह पुरुष संसर्ग और संतान व अपने घर की कामना नहीं करती ? यदि हाँ तो उसे विवाह संस्था को स्वीकारना होगा। ना भी माने, स्वतंत्रता को लक्ष्य मानकर केवल लिव इन संबंध बनाए तो भी वह पूर्ण स्वतन्त्र नहीं है।

मेरा लेखन स्वतंत्रता की लड़ाई नहीं है। वह आत्मविश्वास को विकसित करने का माध्यम है। लेखिकाओं व पाठकों दोनों के। उसका प्रयोग सामाजिक पूर्वाग्रहों को स्वीकारात्मक बनाने के लिए होना चाहिए। केवल अपने रोने रोने वाला लेखन उबाऊ होता जा रहा है।

स्त्रियों को सशक्त बनाने के लिए उनको शिक्षित करना पड़ेगा। उनको शिक्षित करने के लिए उन्हें पठन-पाठन की ओर मोड़ना होगा। प्रश्न यह भी उठता है कि लेखन और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता किस हद तक नारी को सुरक्षित रखती है। पुरुष समाज बार-बार स्त्रियों के लेखन को उनके व्यक्तिगत जीवन से जोड़कर देखता है। एक समलैंगिक व्यक्ति की कहानी लिखी प्रथम पुरुष में। कहानी में वह नायिका के पुत्र का मित्र है। जब यह कहानी एक गोष्ठी में पढ़ी गई तो निर्देशक, आलोचक, लेखक ने खुले आम मुझ से कहा,'आपको पता नहीं चला, आपका पुत्र भी समलैंगिक है।'

कादंबरी मेहरा
संप्रति : 25 वर्ष अध्यापन के बाद सेवा निवृत्त। स्वतन्त्र लेखन।
शिक्षा: एम. ए. इंग्लिश, भारत। पी जी सी ई लंदन, ग्रेजुएट गणित, लंदन।
प्रकाशित कृतियाँ:
कुछ जग की-कहानी संग्रह
पथ के फूल-कहानी संग्रह
रंगों के उस पर-कहानी संग्रह
उल्लेखनीय गतिविधियाँ/ उपलब्धियाँ/ प्रतिभागिता:
आपने अनेकानेक सम्मेलनों/कार्यशालाओं में सक्रिय रूप से भाग लिया है।
मान्यता/ पुरस्कार/ सम्मान:
भारतेंदु हरिश्चन्द्र सम्मान 2001- हिन्दी संस्थान लखनऊ।
पद्मानंद साहित्य सम्मान 2010- कथा यू.के.
एक्सेलेंट सम्मान कानपुर-2005
'पथ के फूल' म.सायाजी यूनिवर्सिटी, बड़ोदरा, गुजरात द्वारा एम. ए. हिन्दी के पाठ्यक्रम में निर्धारित।
संपर्क: 35 The Avenue, Cheam, Surrey, SM2 7QA, UK
ईमेल: kadamehra@googlemail.com

ऐसी कूढ़ मन:स्थिति के चलते कैसे नारी लेखन स्वतन्त्र है ? ऐसे महानुभाव जब स्वयं कलम उठाते हैं तो चित्रण की सभी मर्यादाएँ तोड़कर लिखते हैं। यदि नारियाँ उन्हें कहें कि यह अश्लीलता है तो वह घात-प्रतिघात पर उतर आते हैं।

प्रश्न : आप एक लंबे समय से यू.के. में हैं। पश्चिमी परिवेश में स्त्रियों की स्थिति तथा देश की स्त्रियों की स्थिति में आप क्या भिन्नता और समानता महसूस करती हैं।

उत्तर : विदेशों में पारिवारिक दायरे बहुत ऐकिक व संकुचित हैं। स्वावलम्बिता पर्याप्त है। धनोपार्जन के क्षेत्र में स्त्रियाँ बराबर की हिस्सेदार हैं। अकेले पुरुष पर खर्चों का और पत्नी का बोझ आम तौर पर नहीं होता है। बूढ़ों की देखभाल का उत्तरदायित्व सरकार लेती है। वह बहू-बेटियों पर आश्रित नहीं हैं; यद्यपि अनेक सभ्य परिवार उनको उपेक्षित नहीं करते। युवा स्त्रियाँ नौकरी और गृहस्थी के कार्यों में इतनी व्यस्त रहती हैं कि भारतीय ललनाओं की तरह उनके पास गप्पे लड़ाने, किट्टियाँ खेलने व ग़ुरबत के लिए समय नहीं होता है। सभी काम खुद करने से वैयक्तिक स्वतंत्रता व आत्मविश्वास उनमें प्रचुर मात्रा में भर जाता है। अपने कृतित्व का गर्व और विकसित सोच है। देश में पहले दिन से लड़की की छवि बिगाड़ दी जाती है। कभी शक्ल सूरत पर तो कभी जातिवाद के कारण, कभी केवल पुत्री होने के हीनभाव से, कभी भाई न होने से, अनेक कारणों से उसे मानसिक आघात पहुँचाने में कोई पीछे नहीं रहता। कोई हादसा हो जाए तो लड़की के ग्रह खराब हैं। ऐसे नकारात्मक पूर्वाग्रहों के चलते लड़कियाँ कुंठित रहने लगती हैं।

भारत में पुरुष पराई नार को अपनी संपत्ति और मनोरंजन का साधन समझते हैं। स्त्री आधुनिक काल में भी सुरक्षित नहीं है। किसी भी आयु में वह सुरक्षित नहीं है। शारीरिक सुरक्षा तो दूर भारत में स्त्री की सफलता पुरुष सहज नहीं लेते। एक प्रकार की प्रतिद्वंद्विता उन्हें प्रतिघात के लिए बाध्य करती है। सड़क पर गाड़ी चलाती लड़की को ज़बरदस्ती तंग करेंगे। दफ्तरों में आए दिन अधिकारी उन्हें छेड़ेंगे या तंग करेंगे। कॉलेज के लड़कों ने तो छेड़-छाड़ को अपना जन्माधिकार समझ रखा है। व्यवसाय और विवाह दोनों में, पुरुषों को हेडस्टार्ट दिया जाता है। दहेज़ प्रथा घटी नहीं है अत: अभी भी स्त्री शिक्षा को महत्त्व नहीं दिया जाता। शारीरिक असुरक्षा के कारण स्त्रियाँ घर से बाहर के कामों में पिछड़ी हुई रहती हैं। ससुराल में यह चारदीवारी और भी जटिल हो जाती है। अनेक बेबुनियाद विश्वास प्रचलित हैं जैसे पुत्री को उसका दहेज़ नहीं दिखाना चाहिए। मेरी बहन की सास जब मरी तो उसको अपने गहनों की भी पहचान नहीं थी। कई चीज़ें औरों ने हड़प ली।

यहाँ की नारी न केवल आर्थिक रूप से स्वतन्त्र है, उसे अपने शरीर पर भी पूरा अधिकार है। भारत में आज भी अपने मन से रिश्ता बनानेवाली नारी स्वयं अपनों से प्रताड़ित होती है। अनेकों को अपने माली हक़ से हाथ धोना पड़ता है। पिता भी साफ़ हाथ झाड़कर अलग हो जाते हैं। इन सब का प्रभाव स्त्रियों की मानसिकता पर पड़ा है। आज की शिक्षित नारी अपने को इन उलझनों से बचाने के लिए उद्दंडता का कवच धारण कर बैठी है। स्निग्धता और समायोजन की प्रवृत्ति समाप्त होती जा रही है खासकर बड़े शहरों में। पश्चिम की नारी अपने पुरुष में मित्र को ढूँढ़ती है। वह भी अनेक अपेक्षाएँ रखती है कि उसका मित्र सुयोग्य हो। इससे पुरुष वर्ग अनेक योग्यताएँ रखता है। वह बिजली, मोटर, टूट-फुट, बगीचा आदि ठीक कर सकता है। भारत में केवल स्त्रियों से जीवन संबंधी कलाओं की अपेक्षा रखी जाती है। पश्चिम का पुरुष घर का काम भी बराबर से करता है। भारत में कहते हैं पति के हाथ का बना खाएगी तो अगले जन्म में सूरी बनेगी। भारत में पति मालिक है पत्नी चेरी। विदेश में पुरुष उपभोगी के बजाय सहयोगी है वरना उसकी स्त्री अपना साथी बदलने के लिए स्वतन्त्र है। स्त्री की परतंत्रता का सबसे बड़ा कारण उसका मातृत्व है,चाहे वह देश हो या विदेश। स्त्रियाँ बच्चों को पालते, बड़ा करते, अर्थोपार्जन से विमुक्त रहती हैं। पुरुषों की आय पर्याप्त हो यह आवश्यक नहीं। ऐसे में पश्चिमी देशों में सरकार नागरिक कर राशि में से भरपाई करती है। भारत अभी इस व्यवस्था में सबसे पीछे है। सरकारी भत्ते तय किए गए थे वह कुछेक के पेट में गए। उनसे व्यवस्था का सुधार नहीं हो सका।

हमारे देश की नारी परिवार नियोजन के लिए स्वतन्त्र नहीं है। पुरुष अभी भी पुत्र को अपने पौरुष का प्रसार मानते हैं। यह स्थिति भारत के गाँवों में बेहद जटिल है। जिस देश में नारी को मासिक धर्म के लिए पुराना कपड़ा उपलब्ध नहीं, नहाने के लिए पानी उपलब्ध नहीं वह गर्भ धारण करके अधिक उन्मुक्त महसूस करती है। पुरुष दंभ विश्व व्यापी है। प्रकृति के नियमानुसार पुरुष अपनी यौन इच्छा चाहे जब पूरी कर सकता है परन्तु स्त्री अपनी पूर्ती के लिए उसपर आश्रित है। यही एकमात्र कारण है अनाचार का। पश्चिम में भी अनेक स्त्रियाँ पुरुष दंभ से त्रस्त होते हुए भी बच्चों की ख़ातिर प्रताड़ना झेल रही हैं। परन्तु इस देश में सरकार उनकी सुरक्षा व माली मदद के लिए तैयार है। भारत में नहीं।

पश्चिम में स्त्री उपभोगवाद में पुरुषों से पीछे नहीं है। वह स्वेच्छा से पर पुरुष को वर सकती है। उसकी वर्जनाएँ नहीं हैं। बिना अपराध भाव के वह पुरुष संसर्ग का आनंद उठाती है। मातृत्व उसके अपने अधिकार में है। जब चाहे वह जिससे चाहे गर्भ धारण कर सकती है मगर जिन देशों में धर्म दैहिक संबंधों को संचालित करता है, वहाँ स्त्री का स्थान दोयम है।

भारत में गाँवों की आर्थिक संपन्नता शहरों पर निर्भर करती है। वर्ष में एक बार घर आनेवाला पति परिवार नियोजन की नहीं सोचता अत: हर साल एक बच्चा। स्त्रियों को सबल बनाने के लिए गाँवों में भी शिक्षा और प्रबंध आवश्यक है। शिक्षा से ही पूर्वाग्रहों व अंध विश्वासों का अंत संभव है। हमारी बेड़ियाँ देखिए। पूत का मूत, प्रयाग का पानी। धी का मूत, नरक की निशानी। एकल स्त्री को अभागी कहा जाता है। बड़ी उम्र की कुँआरी लड़की 'छाँटल माल', धर्म कुँआरी मरनेवाली स्त्री को 'पिशाचिनी' करार देता है और अक्सर अंतिम संस्कार से पूर्व उसे गधे, बैल, या

कुत्ते से ब्याह दिया जाता है। कुँआरी मरने वाली स्त्री की लाश को विवाहिता की तरह सजाकर जलाया जाता है। माँ-बाप को वरना पाप लगता है। स्वतन्त्र जीवन यापन करनेवाली स्त्री को चरित्रहीन मान लेना आम बात है अभी तक। विवाहित नारी यदि किसी अन्य पुरुष की तारीफ़ करे तो झट उसपर अपना ही पति लांछन लगा देता है। चाहे अन्य पुरुष उसका भाई ही क्यों न लगता हो। आज से 100 वर्ष पूर्व पश्चिम में भी स्त्रियों की दशा ऐसी ही थी मगर विज्ञान के विकास के साथ समाज विकसित किया गया और इसका ज़िम्मा बड़े-बड़े उद्योगपतियों ने उठाया। रोवेंट्री और बार्कले जैसे विचारक महाधनी थे; मगर देश भक्त और समाज के मित्र थे। हमारे देश में धनी वर्ग अपना पैसा देश के बाहर खर्चता है। अभिनेता कई करोड़ कमाते हैं; परन्तु देश पर कुछ भी नहीं खर्चते। बिल गेट्स जैसी कोई हस्ती भारत में नहीं है। अलबत्ता चंदा माँगकर समाज सुधार करनेवाले उद्यमी हैं; परन्तु वह बड़े स्केल पर कुछ नहीं कर पाते। धनीवर्ग की संवेदनाएँ नगण्य व धन व्याभिचार का पर्याय है।

प्रश्न : कादंबरी जी, स्त्री युगों से शोषित हो रही है। बाज़ारवाद के दौर में स्त्री एक नए प्रकार के शोषण का शिकार हो रही है। आप इसे किस तरह देखती हैं।

उत्तर : आधुनिक काल की सबसे बड़ी विडंबना है स्त्री सौंदर्य का दोहन। विज्ञापन हो या कुटिल सौदा -पटाई। स्त्रियों को उपयोग किया जाता है। प्रथा आज की नहीं है। प्राचीनकाल में भी वारांगनाएँ और विषकन्या हुआ करती थीं। इन्हें राजनीति के दाँव खेलने के लिए इस्तेमाल किया जाता था। आज के युग में बाज़ार में व्यापार को बढ़ाने के लिए प्रयोग किया जा रहा है। पैसे से सौंदर्य को खरीदना धनिकों का व्यसन अनादिकाल से रहा है। एक जगह नहीं पूरे विश्व में। परन्तु धन का प्रवाह बीसवीं सदी में चक्करघिन्नी की गति से त्वरित हुआ है। व्यापारी अपना लाभांश बढ़ाने के लिए कुछ भी करने से नहीं चूकता। यही है मॉडलिंग की सच्चाई। अपने अधिकारों के प्रति सजग, आर्थिक रूप से स्वावलम्बी नारी भी आम उपयोग की वस्तु के रूप में दिखाई पड़ती है। धन के लालच में वह मॉडलिंग को बुरा नहीं समझती। अनेक बड़ी कंपनियाँ उन्हें अपने ग्राहकों को रिझाने और बड़े सौदे पटाने के लिए स्वादिष्ट व्यंजन की तरह परोसती हैं। शरीर का विक्रय अनाचार है। ऐसी नारियाँ अपने जीवन को भी खतरे में डाल कर चलती हैं।

दु:ख इस बात का है आज के युग में, व्यापारिक लाभ के लिये पशु पक्षियों के उपयोग पर बुद्धिजीवियों और जीवशास्त्रियों ने प्रतिबन्ध लगा दिया है। अब विज्ञापनों में कंप्यूटर-जनित पशु पक्षियों का प्रयोग होता है। परन्तु कोई स्त्री शरीर की मर्यादा के विषय में नहीं सोचता है। मर्यादा को यदि एक क्षण के लिए हम भूल भी जाएँ तो भी स्त्री के यौन आकर्षण को अधिकाधिक दामी वस्तु बनाकर प्रेषित करने से आम स्त्रियों में गलत सन्देश फ़ैल रहा है। वह अपनी अन्य योग्यताओं की ओर से उदासीन होती जा रही हैं। न कलात्मकता, न मिष्ट भाषण, न वैचारिक परिपक्वता, न स्वास्थ्य कुछ भी आजकल इतना महत्त्व नहीं रखता जितना दृश्य आकर्षण। बारह वर्ष की लड़की लिपस्टिक लगाकर स्कूल आती है तो प्रश्न होता है कि इसकी जीवन दिशा क्या है!

सौंदर्य भी एक विशेष खाँचे में जड़ दिया गया है। हर लड़की अपने को उसी खाँचे में ढालने के लिए लालायित है; जिससे स्वास्थ्य संबंधी अवधारणाएँ संक्रामक होती जा रही हैं। बाज़ारू मानदंड कमरतोड़ मंहगाई के दौर में लड़कियों को चोरी, घुन्नापन, कपट, झूठा और आडंबर आदि सिखा रहे हैं। यह लड़कियाँ विवाह के बाद बुरी तरह पछाड़ खाती हैं; जब उनको खुद वास्तविकता से दो चार होना पड़ता है। स्त्री की सहनशीलता व समायोजन की प्रवृत्ति समाप्त हो जाने से समाज अधोगामी होता जा रहा है।

प्रश्न : बाज़ारवाद ने हर क्षेत्र को प्रभावित किया है। निस्संदेह हिन्दी साहित्य को भी। इसके बारे में आप क्या सोचती हैं?

उत्तर : साहित्य भी अपने समय की प्रतिच्छाया होता है। आज धन को प्रजनित करना अति आवश्यक हो गया है। बाप बड़ा न भैय्या, सबसे बड़ा रुपैय्या। समाज में रिश्तों के विघटन, स्त्रियों की अवमानना, गरीबी का अवसाद, बीमारियों के कमरतोड़ खर्चे, संसाधनों का अभाव या कहिए असंतुलित वितरण सब आज के साहित्य में परिलक्षित हो रहा है। होता आज से पाँच दशक पूर्व भी था परन्तु अब जैसे लेखक एक आंदोलन बना रहे हैं। शब्दों में बल है। यह समाज को दिशा निर्देश देने के लिए आवश्यक सैट-नैट हैं।

शिकायत पत्रिकाओं के साँचे से है। एक जैसी कथावस्तु परोसने से साहित्य उबाऊ लगता है। जैसे कोई विशेषांक 'स्त्री विमर्श' पर निकला या दलित विमर्श पर निकला या बुढ़ापा टॉपिक रख दिया। यह साहित्यकार के मौलिक लेखन में बाधक हो जाता है। सृजन एकदम स्वतन्त्र हो तो उत्तम कोटि का होता है। आजकल बहुत अधिक लेखन हो रहा है मगर कहाँ हैं वह, 'आकाशदीप' जैसी कहानी जो आपको जीवन स्थल से उठा कर व्योम में उछाल देती थी? एक भी चरित्र याद नहीं रहता जैसे 'ईदगाह' का चिमटा। या बूढ़ी काकी। क्यों ? क्योंकि साहित्य रोअंटा हो गया है। एक अन्य फैशन चल पड़ा है। अगर एक पत्रिका किसी विषय को चुनती है तो अन्य भी नक़ल में वही विषय चला देंगे। ज़ाहिर है कि बाज़ार के बिक्री के आँकड़े उन्हें प्रभावित कर गए। पाठकों के लिए यह अत्यंत समस्यात्मक हो जाता है। भेड़चाल फैशन में उन्हें वही खरीदना पड़ता है जो उपलब्ध हो।

बाज़ारवाद का सबसे निकृष्ट उत्पाद है--प्रचार। प्रचार से उतरकर आत्मप्रचार। इस प्रचारतंत्र के चलते उत्कृष्ट रचनाएँ गौण होती जा रही हैं और पत्रिकाओं में केवल कुछेक नाम बार-बार नज़र आ रहे हैं तथाकथित लेखकों के। यही नहीं एक आध लेखक ऐसे भी हैं जो किसी विषय विशेष पर अपनी अधिक पकड़ या अनुभव रखते हैं तो पता चला चार कहानियाँ उसी विषय या अनुभव पर लिख मारीं। और पत्रिकाएँ उन्हीं को छाप रही हैं; क्योंकि वह व्यक्ति अनेक पुरस्कारों का अधकरण कर चुका है, सुर्ख़ियों में है आदि आदि। और सुनिए कुछ लेखक /लेखिकाएँ पत्रिकाओं को अनुदान

देकर संपादकों की गुडविल खरीद रही हैं। संपादक अन्धेवार उनकी रचना छाप देते हैं। रचना का व्याकरण तक नहीं जाँचते।

आत्मप्रचार के लिए एक और तरीका चल पड़ा है। संपादकों से दोस्ती तो जायज़ है। संबंध मधुर हों तो अच्छा ही है। मगर अब ज़माना एजेंसी का चल रहा है बाज़ार में। एक मठ बना लीजिए फिर अपने चेले चपाटों की रचनाएँ अपने मित्र संपादकों की पत्रिका में छपवाने का इंतजाम पक्का। यानी अदृश्य रूप से आप पत्रिका की स्पेस बेचने के एजेंट का काम करते हैं। आपकी प्रेरक शक्ति क्या है ? नामवरी। कुछ के लिए पक्षपात। ऐसी अगुआई के लिए मित्रता का जाल बिछाना ज़रूरी है और उसके लिए खिलाना-पिलाना भी पड़ता है, हवा का रुख भी परखना पड़ता है। आप लेखक के पारदर्शी व्यक्तित्व को तिलांजलि देकर महज दिशा निर्देशक रह जाते हैं। यही होता है जब पत्रिकाएँ 'समस्या और समाधान' की नीति अपनाती हैं और लेखक को अपने अनुभव पर लिखी कहानी को उनके समाज सुधारक खाँचे के अनुरूप कतरना -बढ़ाना पड़ता है। मैं इसे समाज का दर्पण साहित्य नहीं मानती। समाज में कुत्सित प्रवृत्तियाँ बढ़ी हैं, घटी नहीं। वस्तुस्थिति को सहज प्रस्तुत करना लेखक का जन्मसिद्ध अधिकार है। कर्त्तव्य है। संपादकों को इस प्रवंचना से बच कर रचनाओं को महत्त्व देना चाहिए और उनका चयन उनकी गुणवत्ता के लिए करना चाहिए। लेखन बहुमुखी व मौलिक होना आवश्यक है। वह समाज का दर्पण मात्र न होकर भविष्य स्रष्टा भी हो अत: उसे प्रेरक होना अनिवार्य है। न कि घिसा-पिटा अव्यवहारिक भाषण मात्र। या उत्तेजक, चालू और बिक्री प्रधान।

प्रश्न : कादंबरी जी, पहले-पहल क्या लिखा?

आठवीं कक्षा में मुझे हिन्दी में सबसे अच्छे अंक मिले। मेरी अध्यापिका मोहिनी भंडारी जी, मेरी आदर्श बन गई थीं। छुप-छुपा कर मैंने दो चार कविताएँ लिख मारीं; मगर माँ को यह सब जीवन से 'संबंधित' नहीं लगा। फिर जब नौवीं में पढ़ रही थी तब उन्हें बिना बताए, मैंने अपनी एक कहानी 'आज' अखबार के बाल विभाग में भेज दी। वह छप गई। तब मेरी माँ उसे लिए-लिए सारे मुहल्ले में नाचीं। फिर भी मैं स्कूल की पत्रिकाओं के आगे न बढ़ सकी। अगला सारा जीवन संघर्षमय रहा (मानसिक स्तर पर) अत: व्यस्त रही। अवकाश के बाद कलम उठाई।

प्रश्न : यू.के. प्रवास ने आपकी सृजनात्मकता पर क्या प्रभाव डाला?

उत्तर : एक पूरा जीवन यहाँ बिताने के बाद मुझमें जो आत्मबल आ गया था; उसी का नतीजा मेरी रचनाएँ हैं। भारत में भी विवाह से पहले मैं पढ़ाने जाने लगी थी। अच्छा खासा कमाती थी मगर वह सब एक 'रिक्त स्थान की पूर्ती' मात्र था। विवाह जब तक नहीं तय होता--आदि आदि। विवाह के बाद कूट-कूट कर पिलाया गया कि पढ़ाई-लिखाई स्त्रियों के लिए व्यर्थ है। रूढ़ समाज से पलायन ही एकमात्र कारण था विदेश आ जाने का। अत: मैं कहूँगी कि यदि मैं बाहर ना आती तो कभी अपनी आतंरिक शक्तियों का विकास न कर पाती। अध्यापन ने मुझे एक बेहद विस्तृत मंच दिया और अनेक भाषा-भाषी, अनेक धर्मावलम्बी, अनेक देशीय समाज में ला खड़ा किया। इन सबमें मैंने जो एक रूपता देखी उसने मेरी भारतीय अस्मिता को बहुत पुष्ट कर दिया। अब मैं गर्व से कह सकती हूँ कि मैं भारतीयों से अधिक भारतीय हूँ।

दूसरी ओर मेरे दृष्टिकोण में सबके लिए एक पैनी सहानुभूति व दृष्टि का विकास हुआ। अभिभावकों के संपर्क में आने से मेरी संवेदनाएँ उनकी समस्याओं से निपटने में खर्च होने लगीं। अनेक बार मेरे अतिरिक्त उन्हें कोई और नहीं मिलता था अपना दु:ख बाँटने के लिए। स्टाफ की सहकर्मियों के भी दु:ख सुख सुने। दूर-दूर अपनी ज़िम्मेदारी पर टिप्स लेकर गई। सबके खान-पान का ध्यान रखना, हर बच्चे की पारिवारिक जीवनी की झाँकी देखना, सुनना, मुझे बहुमुखी समाज की आदत पड़ गई। इसके अतिरिक्त अपनों को पराई नज़र से देखने की भी आदत डालनी पड़ी। मैं कई देशों में घूम आई हूँ। देखा अन्य देशों की स्त्रियाँ भारत और पाकिस्तान की स्त्रियों से कहीं अधिक सजग और फैशनेबल हैं। वह आगे बढ़कर बात करती हैं। टर्की में लड़कियाँ बेहद शालीन और अपने दृष्टिकोण में आधुनिक मिलीं। तो फिर भारत में ही क्यों शालीनता के नाम पर दबी-घुटी हैं या आधुनिकता के नाम पर उच्छृंखल हैं? मेरे पूर्वाग्रह एक-एक करके ख़त्म होते गए। किसी भी देश में सड़क पर चलनेवाला व्यक्ति बेहद निष्कपट मिला। पूर्वाग्रह बने तो सुनी-सुनाई पर या किसी एक आध बुरे व्यक्ति के कारण।

पुरुषों के समकक्ष आर्थिक सबलता ने जो आत्मविश्वास मुझे दिया, उसी का परिणाम है कि मैं अपनी अभिव्यक्ति को मुक्त रूप दे सकी। मेरे लेखन को मेरी अंग्रेज़ मित्रों से अधिक सराहना मिली है। यहाँ पर पारिवारिक मूल्य तेज़ी से बदल रहे हैं। यहाँ पैदा हुए बच्चे अपने सहभागी समाज में घुल मिल जाने की आवश्यकता के कारण अपने माँ-बाप से अलग विकसित हो रहे हैं। अब हमारी नस्ल की तीसरी पीढ़ी चल रही है। इस दुनिया में भारतीयों को बहुत कुछ सुगमता या भौगोलिक कारणों से छोड़ना पड़ता है। मेरे विचार में लकीर पीटना बेकार है। यह सब मेरे लेखन में छनकर आता है। अंतिम चरण में माँ की भी इच्छा थी कि मैं लिखूँ; क्योंकि मुझे लिखना आता है। लिखने का कोई अंत नहीं है।

प्रश्न : कहानी लेखन की आपकी प्रक्रिया क्या है?

उत्तर : एक मेढक को छलाँग लगाते देखिए। वह अपनी पिछली टाँगें पीछे की ओर फैलाता है और कस कर टिका लेता है फिर पूरे वेग से आगे कूद जाता है। मेरे साथ भी ऐसा ही कुछ होता है। जैसा मैंने ऊपर बताया कि प्रवास ने मेरे भारतीय अस्तित्व को और अधिक पुष्ट कर दिया। मेरे विचार एकदम से इस ज़माने के विचारों में बदल नहीं सके। मेरा दृष्टिकोण आधुनिक होते हुए भी अपनी ज़मीन को खोजता है। मेरे पाँव मेरी ज़मीन को पकड़कर चलते हैं। 'पैर जमा के हईशा, ज़ोर लगाके हईशा।' कहानी तभी तरंगित होती है जब मन के मानसरोवर में कोई घटना अंदर तक उतर कर गहरा भंवर बनाती है। उस समय उठी संवेदनाओं

को शब्दों के कलश में संजोकर रचना रूपी धवंतरी उपस्थित होते हैं। यह एक रमक होती है, यानी impulse, जो समय नहीं देखती। अक्सर रसोई के कामों में चुपचाप लगी होती हूँ और कहानी जन्म लेती है। मन है कि सदा संवाद करता रहता है। एकांत में जब लिखने बैठती हूँ तो पात्रों के अनुरूप, कई चरित्रों में बँट जाती हूँ। धाराप्रवाह कहानी आगे बढ़े तो ही चैन पड़ता है। कहानी लिखते समय मैं अपने यथार्थ से विलग हो जाती हूँ। यदि दो दिन बाद उसे पढ़ूँ तो ऐसा लगता है कि किसी अजनबी ने लिखी है। शायद इसका कारण यह हो कि अधिकाँश कथानक मेरे अनुभवों से प्रसूत हैं। यादों के संग्रहालय से उठाए हुए, भूतकाल के वासी। उन्हें जिलाने के लिए मुझे एक ओझा की तरह परकाया प्रवेश करना पड़ता है।

प्रश्न : भिन्न-भिन्न पात्र जीते हुए आप स्वयं को कहाँ पाती हैं और समाज का कितना योगदान महसूस करती हैं?

उत्तर : यह प्रश्न पिछले प्रश्न से दूर नहीं ! पात्र भले ही अलग-अलग हों, परन्तु जबतक आप उनके जूते में पाँव नहीं डालते उनके सुख दु:ख को नहीं पढ़ सकते। मनोविज्ञान में 'मानवीय प्रज्ञा' का विश्लेषण एक पैमाने से निर्धारित किया जाता है 'I Q'। यह पाया गया कि अधिक प्रबुद्ध व्यक्ति अधिक संवेदनशील भी होता है। प्रज्ञा (intelligence) का अम्ल परीक्षण (acid test) सहभावना / संवेदना से होता है। जो व्यक्ति दूसरे का दु:ख नहीं समझता वह केवल चारा ढूँढ़नेवाला पशु होता है। लेखक अपने चरित्रों से इकदिल होकर ही रचना कर सकता है। तुलसीदास जी ने एक ओर राम को सर्वोपरि दिखाया तो दूसरी ओर रावण की भी प्रशंसा करने से नहीं चूके। रावण उन्हें बलशाली, महाज्ञानी, सुदर्शन एवं यशस्वी ही समझ आया। परन्तु समाज के नियमों का उल्लंघन करके वह खलनायक बन जाता है। हर लेखक इसी तरह सामाजिकता से बंधा है। हमारे मूल्य जब चुनौती में पछाड़ खाते हैं तब अनर्थ व्याप्ता है। यौनवार्ता को ही लें। स्त्री का प्रथम अनावरण ही पौरुष की पराकाष्ठा है, मगर अपने सत्व की रक्षा करना हर नारी का जन्मसिद्ध अधिकार है। जब इस क्रिया में स्त्री सहमत हो तब यह प्रेम है। जब वह असहमत हो तब यह पाप है और सभ्य समाज इसको मान्यता नहीं देता। स्त्री की लज्जा को ढाँकना हर पुरुष का प्रथम उत्तरदायित्व है। जब कोई यौनाचार को अतिशयोक्तिपूर्ण शब्दों में चित्रित करता है तब वह लेखन को सस्ते मनोरंजन के लिए इस्तेमाल कर रहा है। अंग्रेज़ी साहित्य पढ़कर सभी पुरुष लेखक डी एच लॉरेंस नहीं बन सकते। अधिकांश विकृत मन:स्थिति को उत्तेजित कर रहे हैं। पात्रों का जीवन जीते समय लेखक यदि उनको बलि का बकरा बनाकर उपदेश दें तो भी अन्याय कर रहा है। परिस्थितियाँ लाइलाज होती हैं जिन्हें भुक्त भोगी ही समझ पाता है। स्वयं के उदाहरण में व्यक्तिगत लज्जा सर्वोपरि है। अत: चाह कर भी मैं या कोई और मुक्त रूप से अपने संघर्षों को जस का तस नहीं लिख सकते; क्योंकि इससे साथ जुड़े व्यक्तियों की इज़्ज़त भी खतरे में पड़ जाती है। मैं परिवार को अनावृत्त करना अनुचित समझती हूँ। फिर भी समाज को दर्पण दिखाने के लिए ऐसा करना ज़रूरी हो जाता है कभी-कभी। लेखिकाओं की बाधा और अधिक बढ़ जाती है, जब आलोचक उसके लेखन में उसकी जीवनी ढूँढ़ते हैं। जब वह पंक्तियों के बीच पढ़ने का प्रयास करते हैं।

भारत के समीक्षक बिना कभी इंग्लैंड आए, बिना यहाँ के जीवन को समझे, बिना लेखक से मिले आलोचना कर रहे हैं। यह सही आकलन नहीं प्रस्तुत करते। कहावत है 'जिस पर रीझें, ईंटों की मार मारें !' समाज के जो मूल्य मानवीयता के पक्ष में नहीं हैं उनका भी खंडन करना मैं अपना कर्त्तव्य समझती हूँ। अंध भक्ति न्याय करने से रोकती है। रावण में असामाजिक तत्व था तो राम ने धनुष उठा लिया। रावण ने एक अबला स्त्री को त्रास दिया। कालान्तर में राम ने भी वही किया। एक अबला गर्भवती स्त्री को दण्डित किया, मानसिक त्रास दिया। क्या वह अपनी महान्ता का बचाव नहीं कर रहे थे ? क्या वह सीता के संग दृढ़ खड़े होकर अनर्गल भाषण का दमन नहीं कर सकते थे। कहाँ गई सारी वीरता ? क्या वीरता केवल शारीरिक बल से आँकी जानी चाहिए ? अंत में मरा कौन ? सीता ! जब राम दयनीय बन, बुलाने आए तो क्या वह साहस के साथ कह नहीं सकती थी, 'अब लौं नसाहीं,ना अब लौं नसैहौं।' तुलसीदास स्वयं पुरुष थे तो रत्ना को वापिस लाने से मना कर दिया था और उक्त वाक्य कहा था। सीता क्यों न यह कह सकी। क्यों उसने की आत्महत्या ? ताकि राम का देवत्व (फिर भी) महिमामंडित हो सके। ऐसा ही हर लेखक के साथ होता आया है। सामाजिकता हस्तक्षेप करती है। पूर्ण सत्य लिखकर आप संपादकों को रिझा नहीं सकते। पूर्ण सत्य पर गीता में भी पाबंदी लगाई गई है, 'सत्यम वादितम् प्रियं वादितम्, न च वादितम् सत्यमप्रियम।'

दिनकर जी की पंक्तियाँ हैं-

'बँधा तूफ़ान हूँ, चलना मना है
बँधी उद्दाम निर्झर-धार हूँ मैं
कहूँ क्या कौन हूँ, क्या आग मेरी
बंधी है लेखनी,लाचार हूँ मैं।

प्रश्न : स्त्री-विमर्श और स्त्री आंदोलन को आप किस तरह देखती हैं।

उत्तर : स्त्री-विमर्श साहित्य-पटल पर नया नहीं है। कालिदास की शकुन्तला से चित्रा मुद्गल की नमिता पाण्डे (आँवाँ) तक, स्त्रियों का शोषण भरपूर दोहराया गया है। परन्तु इतना लिखने के बाद भी स्त्री का शोषण रुका नहीं है। शोषक का दृष्टिकोण बदला नहीं है। इस क्षेत्र में पुरुष दंभ से ज़्यादा स्त्रियों की प्रतिस्पर्धा अधिक उत्तरदायी है। यदि स्त्रियाँ अधिक विस्तार से सोचें तो उनमें एकता की भावना आ सकती है और वह पराई बहू-बेटी को कठिनाई में नहीं डालेंगी। हर्षा कपूर ने शादी के बाद पाया उसकी सास उससे खार खाती थीं। हर्षा मोटा वेतन घर लाती थी। सास जी विधवा थीं। आमदनी निष्ट। हर्षा ने समझदारी से उनको दो हज़ार रुपये प्रति माह देना शुरू कर दिया। घर में शांति रहने लगी।

हमें सामाजिक समस्याओं को प्रेम और मित्रता से सुलझाने की ज़रूरत है। गृह शांति से पुरुष भी खुश रहते हैं। नारी विमर्श में

यदि आलोचनात्मक लेखन होगा तो उसे पढ़कर भूल जाएँगे लोग। यदि घर में बैठी स्त्रियों को शिक्षित किया जाए तो अधिक फायदा होगा। यहाँ सुबह काम पर जाती नारी ज़रूर कोई किताब पढ़ती मिलेगी चुपचाप। भारत में ज़ोर-ज़ोर से बातें करेंगी। बेपर्दा गप्पें। फिर रोएँगी कि लोग छेड़खानी करते हैं। मेरा नाती हिन्दी फिल्म की नायिका को देखकर हँस रहा था। मैंने कारण पूछा तो बोला नानी यह लड़की मॉडर्न हो गई है; क्योंकि यह काम पर जाने लगी है। इसलिए यह सिगरेट पी रही है और मिनी स्कर्ट पहन रही है, बाल काट डाले हैं और मंहगी ऑउटफिट सिंगापुर से खरीद रही है। क्या यह मॉडर्न बनाने का तरीका है? बच्चा केवल चौदह वर्ष का है। उसे भारतीय समाज का कोई इल्म नहीं है;क्योंकि वह यहीं का है। पर मुझे आश्चर्य हुआ उसकी पकड़ पर। हमारे देश में यही हो रहा है। आधुनिकता बनाम हरेक बुराई का स्वागत। मैं कैसे कहूँ कि समाज के दृष्टिकोण को बदल नहीं पाए हम अभी तक। नौकरी करने वाली पढ़ी-लिखी लड़कियाँ अभी भी शादी के बाज़ार में तौली-नापी जाती हैं। अभी भी अभिभावक अपने पुत्रों से अधिक पढ़ी-लिखी, अधिक वेतन वाली लड़की चाहते हैं। बाद में यदि वह निराश होती है तो उसे प्रताड़ित करके उसका मान-सम्मान तोड़ते हैं। आज से चालीस वर्ष पहले जब भाई की शादी हुई तब बुआजी ने घोषणा की, देखो कैसे मोल पड़े हैं हमारे बेटे के। लाखों दिया है समधी ने। वही बात आज तक पुत्रों के माँ-बाप सोचते हैं। मेरे हिसाब से यह पौरुष का विक्रय है। दहेज़ हो या पत्नी का वेतन पर पूर्ण अधिकार वह दाम ले रहे हैं। किस बात का ? सोचते शर्म आती है। अत: हम सुधारों की बात करें। शिक्षा और आर्थिक स्वावलम्बिता। स्त्री को संवैधानिक अधिकार भी दे दिए गए। स्वेच्छा से शादी के बाहर आ जाने का अधिकार भी मिल गया। बच्चों पर भी अधिकार मिल गया। पर फिर भी नारी सुरक्षित नहीं। दरअसल वह भयंकर रूप से आक्रामक होती जा रही है। स्त्री आंदोलन स्वतंत्रता का बायस नहीं होकर स्वेच्छाचारिता को जन्म दे रहा है। रिश्ते नहीं चाहिए तो शादी मत करो। केवल यौनपूर्ति के लिए पति चाहिए जो सभी माँगों को पूरी करने में आर्थिक रूप से समर्थ हो तो शादी के बगैर भी मिल सकता है। विवाहिता स्त्री जो घर बसाकर अगली पौध को पालती है उसे रिश्तों की तोड़-फोड़ शोभा नहीं देती। सास-ससुर की उपेक्षा करना आम बात हो गई है भारत में,डायलाग चल पड़े हैं 'आप मेरी माँ नहीं हो सकतीं।', 'मैंने पूरे परिवार का ठेका नहीं लिया है।' परन्तु वे यह भूल जाती हैं कि बच्चों को एक असीम प्रेम के स्रोत से वंचित कर रही हैं; जो उनके विकास में आवश्यक है। कुँआरी लड़कियों में शर्म की कमी दहला देती है। केवल पैसे फैशन आदि पर ज़ोर होने से स्त्रियों की गुणवत्ता कम होती जा रही है। विदेश में ऐसा नहीं है। स्वावलम्बी नारी विवाह की परवाह नहीं करती। विवाहित नारी रिश्तों से मुँह नहीं मोड़ती। पर अंत में यही होता है की जीवन में जितना प्रेम व सुरक्षा आपने पाई है; उतनी ही आपके पास दुनिया को वापिस देने के लिए होती है। इसके लिए पुरुष और नारी दोनों को अपना सुधार करना होगा।

प्रश्न : कादंबरी जी, आपकी उपलब्धियाँ क्या हैं?

उत्तर : केवल तीन किताबें छपवा पाई हूँ अभी तक। मगर तीन या चार अभी और तैयार रखी हैं। भारत जाने का इंतज़ार है। यह मेरा साहित्यिक योगदान है। अपनी आवाज़ में एक भजन संग्रह रिकॉर्ड करवा लिया था। बाकी समय इतिहास पढ़ने व उजागर करने में लगा देती हूँ। अपनी गृहस्थी पर पूरा ध्यान देती हूँ। नौकरी करती रही 30 वर्ष तक। मेन स्ट्रीम में पढ़ाया फुल टाइम। दस वर्ष सेकंडरी मैथ्स पढ़ाया फिर इंफैन्ट्स को पढ़ना सिखाया।

प्रश्न : नया क्या लिख रही हैं?

एक उपन्यास शुरू किया था। पाँच वर्ष से वह अधूरा लिखा रखा है। उसे पूरा करने का इरादा है।

कादंबरी जी, आपके उपन्यास का इंतज़ार रहेगा। शीघ्र ही आपकी और पुस्तकें आएँ। अग्रिम शुभकामनाएँ!!

****

ग़ज़ल

ज़हीर क़ुरैशी

तरह-तरह के चरित्रों में ढल के देख लिया
कई प्रकार से खुद को बदल के देख लिया
ये ज़िंदगी भी महास्वप्न ही लगी मुझको
कई प्रकार से आँखों को मल के देख लिया
वो ज्वार-भाटे से आगे निकली नहीं पाया
महासमुद्र के जल ने मचल के देख लिया
बहू या बेटे का व्यवहार आज भी है वही
अशक्त बाप ने उस दिन उबल के देख लिया
वो उस रहस्य से पर्दा उठा नहीं सकता
उस ऐशगाह में जिसने फिसल के देख लिया
अकेलेपन के सिवा और कुछ नहीं मिलता
पवित्र दीप ने मंदिर में जल के देख लिया

****

काश.... खुशबू को कसौटी पे न परखा जाता
प्यार को प्यार की नज़रों से निहारा जाता
कच्ची दीवारों पे छप्पर ही रखा जाता है
कच्ची दीवारों पे छत को नहीं रक्खा जाता
तन का सौदा था तो फिर तन को परोसा उसने
तन के सौदे में नहीं मन को परोसा जाता
वो बदल सकते हैं खुद को, जो अमल करते हैं
सिर्फ उपदेश को सुन के नहीं बदला जाता
शक... परिन्दे के परों को भी थका देता है
आसमानों की तरफ फिर नहीं निकला जाता

****

न डर लगे हमें आकाश के सितारों से
हमें तो डर है हमारे ही दोस्त-यारों से
उधार ले के चुकाता है पिछले कर्ज़ों को
वो मुक्त हो नहीं पाया कभी उधारों से
पिता से, भाई से, माँ से, बहिन से दादी तक
उसे मिली है मुहब्बत कई प्रकारों से
ये बात और कि टूटेगा देर से पत्थर
हमारी दोस्ती निभती रही सुनारों से
जो बोल पाता नहीं और सुन नहीं पाता
वो अपनी बात को कहता रहा इशारों से
'नगरवधू'-सा जो मानस बना नहीं पाई
बची हुई है अभी तक वो लूट-मारों से

****

108, त्रिलोचन टावर,गुरुबक्श की तलैया,
भोपाल-462001 (म.प्र.) मो. 09425790565
poetzaheerqureshi@gmail.com

क्या आज मैं यहाँ होती....

नीरा त्यागी

डाइवोर्स को पाँच साल हो चले थे। शिखा महसूस कर रही थी कि वीरेन से अलग हो जाने के बाद लोग उससे बचने लगे हैं; जैसे कई सहेलियाँ अब उसे फंक्शन पर नहीं बुलातीं। तभी घर बुलातीं हैं; जब उनके पति शहर से बाहर होते हैं या फिर वह उससे कैफे, रेस्टोरेंट, सिनेमाघरों, शापिंग माल में ही मिलती हैं...जो सहेलियाँ और पड़ोसी उससे बचते नहीं हैं, वो उसे खाली समझते हैं और अक्सर उसे किसी न किसी काम के लिए फोन करते रहते हैं। शिखा दफ्तर से लौटते हुए पासपोर्ट रीनुअल फार्म ला देना, समय हो तो भर भी देना, मैं पुराना पासपोर्ट लेटरबाक्स से ड्राप कर दूँगी...हम लोग घर शिफ्ट कर रहे हैं, पेकिंग में मदद कर दोगी? वो हर चीज़ को तरीके से लपेटकर, गत्ते के डिब्बे में सहेजकर, हर डिब्बे पर अंदर के सामान की सूची, नए घर के किस कमरे में यह पहुँचना चाहिए, का विवरण सेलोटेप से चिपका कर, घर की दीवारों के साथ डिब्बों के ढेर लगा देती... शिखा तुम कितनी आर्गनाइज़ड हो, मैं तो सारा सामान ऐसे ही भर देती और फिर चीज़ों को ढूँढ़-ढूँढ़ कर पागल हो जाती...। मेहमान आने वाले हैं, शिखा तुम दही भल्ले कितने अच्छे बनाती हो, मैंने दाल भगो दी है। घर आकर बना दो, नहीं तो अमन के हाथ भिजवा दूँगी....। शिखा सुनो आज इनके आफिस की पार्टी है हिल्टन में, एप्पी और शशाँक को सँभाल लोगी। बारह बजे से पहले ही लौट आएँगे। उसे एप्पी और शशाँक को सँभालने में कोई आपत्ति नहीं है, पर उनके चले जाने के बाद उसे समझ नहीं आता कि वो घर को कहाँ से सँभालना शुरू करे.... सारी सी डी दराज़ से बाहर, कारपेट पर बिस्किट के टुकड़े, चाकलेट के रेपर, कॉफ़ी टेबल पर आधे पीए जूस के ग्लास, सोफ़े के कुशन जब दोनों एक दूसरे को उछाल -उछाल कर मारते तो लगता जैसे सिटिंग रूम में तूफ़ान आ गया हो।

वह अक्सर सोचती जब वीरेन उसके साथ रहता था, तब उसकी इतनी माँग नहीं थी। औरों की ज़रूरत बन गई है; लेकिन उस अकेले की कितनी सारी माँगे वो पूरी नहीं कर पाई, तभी तो दफ्तर में कुलीग के उसका साथ अफेयर होने के लिए वही तो ज़िम्मेदार थी। उसकी अनुपस्थिति में वो उसे दो तीन बार घर ला चुका था। आस-पड़ोस में सभी को मालूम था सिर्फ वो ही अनजान थी। जब उसे पता चला, उस समय तो लगा था उसके पीठ पीछे उसे आग में झोंकने को एक हवन-कुंड तैयार हो रहा था। आज उसे लगता है उस आग में वो कहाँ जली। उस आग में जले उस पर लगे अंकुश, हर बात पर उसे नीचा दिखाने की वीरेन की साजिशें, एक दूसरे पर चीखने-चिल्लाने की ऊँची आवाज़ें, दूसरों के सामने बिना किसी बात पर तिरस्कृत कर देने वाले अपशब्द, उसे घर से बेघर करने की उसकी चाल, हमेशा कंगाली बघारने वाला बेंक बेलेंस, बेतरतीब समय -असमय बहते आँसू, यह सब जले हैं उस आग में। विश्वासघात और नफ़रत की आग में कुछ दिन तो वो भी जली थी, लेकिन जल्दी ही उसे अहसास हुआ ...डाइवोर्स तो ज़िन्दगी में उसे वरदान की तरह मिला है। उसने खुद को पाया है और उसका आत्मविशवास लौट आया है। अपनी आज़ादी पाई है। वह अपने सिवा किसी और के लिए ज़िम्मेदार नहीं है। अब उसे मीटिंग से देर से

ब्रिटेन के सरकारी प्रोजेक्ट्स में मैनेजर नीरा त्यागी के लिए लिखना स्वयं के करीब और स्वयं को खोजने का प्रयास है। भीतर की औरत का शब्दों के माध्यम से खुली हवा में ज़िंदा पल जीने की जिजीविषा ... लिखना सिर्फ आसमान और वज़ूद की तलाश नहीं, ज़मीन और जड़ों से जुड़ने का प्रयास भी...भारत की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ और कविताएँ प्रकाशित।

संपर्क : neerat@gmail.com

लौटने में धुकधुकी नहीं होती। वह दफ़्तर का बैग रखते ही सीधे रसोई घर की ड्यूटी नहीं लगाती। ऊपर तक भरा डस्टबिन को खाली करने का काम वो अगले दिन पर टाल सकती है। फ्रिज खाली है उसे परवाह नहीं होती। शाकाहारी होते हुए उसे कबाब और चिकन नहीं बनाना पड़ता। वीरेन की इधर -उधर पड़ी जुराबें नहीं उठानी पड़ती। टेलिविजन के रिमोट कंट्रोल की मालिक वो खुद है। अपनी पसंद का संगीत सुन सकती है। बेडरूम में जितनी देर चाहे लाईट जला पढ़ सकती है। देर तक दोस्तों से फ़ोन पर बात कर सकती है।अपनी मित्रों को घर पर बुला सकती है। उनके साथ रात देर तक फिल्म और थियेटर देख सकती है। जब मन हो पापा -मम्मी के घर जा सकती है। अपनी छोटी -छोटी इच्छाओं को पूरा करने की कोशिशों को जायज़ साबित करने के लिए उसे कटघरे में नहीं खड़ा होना पड़ता। अपने छोटे से छोटे और बड़े से बड़े फ़ैसले खुद लेने के लिए वो स्वतंत्र है। यह आत्मनिर्भरता और आत्मविश्वास पत्नी बनते ही उससे कब छिन गए, उसे पता ही नहीं चला। अब अपने लिए और अपनी तरह जीना उसे एक अनंत सकून से भर देता है।

वीरेन के घर छोड़ने के बाद वो दो महीने की छुट्टी लेकर मम्मी -पापा के पास चली गई थी। माँ ने उसे नई साड़ियाँ खरीद कर दीं। पापा ने उसके लिए खूब सारी किताबें खरीदीं...पापा-मम्मी ने उसे बिना बताए उसके पीछे डेकोरेटर को बुला उसके फ्लैट को डेकोरेट करवाया। कमरे की दीवारों पर उसकी पसंद का मेग्लोलिया रंग, पीले, बैंजनी फूल वाले खिड़की पर परदे, और उसी रंग की चादर और तकिए, बालकनी में नए गमले और उनमें खिलते पर्पल आर्किड के फूल उसके दु:ख को समेटने में बहुत काम आए। दोनों ने हमेशा यही कहा पत्नी से निकल कर औरत की ज़िंदगी जीने का समय आ गया है और यह मौका हर स्त्री को नहीं मिलता। उनके दिए आत्मविश्वास ने उसके आँसुओं को भीतर ही सुखा दिया। शिखा को बेचारी बनाने और बनने पर उन दोनों ने प्रतिबंध लगा दिया था। किसी बुआ, चाची, मौसी, ताई की हिम्मत नहीं हुई कि उसके दु:ख को बाँटने का कोई सुख ले सके।

वह किसी की सहानुभूति का पात्र नहीं बनेगी और उसे ज़िंदगी से कोई शिकायत नहीं। इसी निश्चय के साथ वह लौटी और अगले दिन ही ऑफिस ज्वाइन किया। दफ़्तर और पड़ोस में सभी की आँखों में फैलता हुआ अविश्वास उसे और मज़बूत करता। कोई वीरेन के गुनाह का ज़िक्र भी करता तो उस पर वहीं ताला लगा देती, हर बार यही कहती जो कुछ होता है अच्छे के लिए होता है...

यह सब दो वर्ष तो बहुत भाया। उसने दफ़्तर में महसूस किया, कुछ पुरुष उसे ज़्यादा ही भाव देने लगे हैं। वो बहानों से उन्हें पीछे धकेलते-धकेलते थकने लगी है। वीरेन के साथ रहने का यह तो फायदा था कोई उसे उपलब्ध नहीं समझता था। अब वो अपने अकेलेपन से उकताने लगी थी। उसे ज़रूरत महसूस होने लगी थी। दु:ख-दर्द, खुशी, उपलब्धियाँ, रुकावटें और माथे पड़ी सिलवटों और होठों पर मुस्कराहट की वजह वह किसी से बाँट सके।

रात को बिस्तर का ठंडापन शरीर को अखरने लगा था। उकता गई थी पड़ोसियों से, दोस्तों से और अपने आप से और पता नहीं क्या सोच कर उसने अपने डिटेल एक मेट्रिमोनिअल वेब साईट पर डाल दिए थे। इस बात को भी अब तीन साल हो चुके हैं नेट पर मिली थी वह नलिन से, वो भी नॉटिंघम शहर में उसके घर से नो किलोमीटर दूर अपनी माँ के साथ रहता है। वह भी तलाकशुदा है, उसका अपना होटल का फ्रेंचाइज़ है।

तीन महीने तक शहर के अलग -अलग रेस्टोरेंट में लगभग हर सप्ताहांत में साथ खाना-खाने के बाद नलिन उसे एक सप्ताह की छुट्टियों के लिए फ्रांस साथ ले जाना चाहता था। शिखा ने यह कह कर टाल दिया, उसे दफ्तर से छुट्टियाँ नहीं मिल सकतीं।

धीरे-धीरे वो शनिवार रात डिनर के बजाए रविवार के दिन लंच पर किसी पब और केफे में मिलने लगे। अब नलिन अपनी पहली पत्नी को दिए डाइवोर्स सेटेलमेंट के नुक्सान को नहीं झींकता था और न ही वह वीरेन से खाई चोट को लेकर दुखी होती, दोनों को एक दूसरे का साथ अच्छा लगता पर अधिकतर दोनों बहस करते हुए अपने-अपने घर लौटते; फिर भी दोनों को एक दूसरे के प्रति आकर्षण ने कैद कर रखा था। नलिन शिखा की सहजता, परिपक्वता और जीवन के प्रति उसके ऊँचे मापदंडों पर कायल था। शिखा को नलिन अच्छा लगता था; क्योंकि वो उसे किसी हद तक बराबरी का दर्जा देने में सफल रहा। यह बात अलग है कि शिखा के ऊँचे मापदंड उसके पुरुषार्थ की ज़रूरतों के आड़े आते हैं। उन दोनों के रिश्तों को तो कोई अंजाम नहीं मिला है, क्योंकि नलिन उसका सब कुछ चाहता है बिना किसी बंधन के... और वो ठहराव चाहती है नपी-तुली साधारण ज़िंदगी चाहती है।

नलिन धीरे-धीरे ज़्यादा व्यस्त रहने लगा, वो अक्सर नॉटिंघम से बाहर कभी बिजनेस ट्रिप पर तो कभी यूरोप और अफ्रीका में होलीडे पर। अब वह दोनों बाहर रेस्टोरेंट में कम नलिन के घर अधिक मिलते हैं। इस तीन सालों में वह उसकी बहन मोना और उसकी माँ की अच्छी दोस्त बन गई है। उसके घर में अक्सर आती-जाती रहती, नलिन के बुलावे पर नहीं बल्कि उसकी माँ और बहन के कहे पर, उनके साथ कभी फिल्म देखने, कभी खाना खाने या कभी उसकी माँ के साथ मंदिर जाना, उसके शनिवार या इतवार में शामिल होता है.. उसके दोस्तों और पड़ोसियों को शिकायत रहने लगी है वो सप्ताहांत में घर पर नहीं मिलती।

कभी-कभी उसे लगता नलिन को उसके परिवार के साथ इस तरह घुलना -मिलना पसंद नहीं। कई बार चिढ़ जाता था; क्यों वह आलू-मेथी या पालक पनीर या भरवा करेले का डोंगा लिए उसके घर पहुँच जाती है। यह सिलसिला और बढ़ जाता जब वह छुट्टी पर बाहर गया होता। कभी जोहान्सबर्ग, कभी बार्सिलोना, कभी इस्तेम्बूल तो कभी पेरिस। मोना अक्सर शिखा के चेहरे को पढ़ने की कोशिश करती, क्या उसे मालूम है वह छुट्टी पर अकेला

नहीं गया पर उसे शिखा के चेहरे पर कही कोई विषाद नज़र नहीं आता...

एक दिन नलिन अपनी बहन से पूछ बैठा 'तुम्हारी यह दोस्त ठीक-ठाक तो है?' मोना ने हँस कर पूछा 'मेरी दोस्त?.... क्यों वह तुम्हारी गर्म जेब और बिस्तर गर्म करने से दूर रहती है। इसलिए पूछ रहे हो, नो शी इज़ नॉट लेस्बियन!'

नलिन की माँ जिन्हें शिखा अब बीजी बुलाती है, हॉस्पिटल में है। उन्हें स्ट्रोक हुआ था। शिखा रोज़ ऑफिस के बाद उनसे मिलने जाती रही है। कभी उनके लिए मूँग की दाल और फुल्का लेकर तो कभी खिचड़ी। उस शाम उसके पहुँचते ही बीजी ने अपने बेटा और बेटी दोनों को बाहर जाने को कहा है। वह सिर्फ शिखा से बात करना चाहतीं हैं, दोनों को यह अच्छा नहीं लगा। उसकी और घूरते हुए नलिन और मोना वार्ड छोड़ कर बाहर लाबी में चले गए। बीजी ने उसे अपने पास बिस्तर पर बैठाया और बोली ' देख पुत्तर मैं चोरास्सी साल की हूँ, पता नहीं कितने दिन की मेहमान हूँ... तुझे तो मालूम है नलिन ने गोरी से शादी की थी और अठारह साल उसके साथ रहा है, मोना ने मुसलमान के साथ, अब वह बीस साल बाद भाई के पास आ गई है। इन दोनों को कुछ नहीं मालूम, मुझे कुछ हो जाए तो अपना पंडित बुलवाना, मेरे बक्से पर ॐ लिखवाना और मेरा सफ़ेद रंग का सूट जो मैंने तुझसे कपड़ा मँगवा कर अभी बनवाया था मुझे वो पहनाना।' और पता नहीं क्या-क्या कहती रहीं। पता नहीं उसने कितनी बार कहा होगा 'बीजी आप कैसी बात कर रही हैं आप ठीक होकर यहाँ से निकलेंगी।' और आख़िरी बार यह कह कर वह भाई बहन को लाबी से बुलाने चली गई... वार्ड में घुसने से पहले नलिन उसका रास्ता रोक कर बोला 'तुम शनिवार को क्या कर रही हो?'

'क्यों?' शिखा ने बिना कुछ सोचे समझे पूछा।

'तुमने मेरी माँ के लिए इतना किया है आई वांट टू ट्रीट यू सम्वेयर वेरी नाईस फॉर द मील।'

'देखो हम अपना बिल हमेशा बाँटते रहे है और आई कांट अफोर्ड सम्वेयर नाईस... दूसरा मैं अपनी दोस्त से मिलने आती हूँ, यह महज़ इतिफ़ाक है कि वो तुम्हारी माँ है।' उसने बड़े अपनेपन से मुस्करा कर जवाब दिया ...

और हुआ भी ऐसा ही, बीजी दो सप्ताह बाद घर आ गई। एक दिन वह उनको मंदिर लेकर गई। जब वह बीजी को घर छोड़ कर लौटने लगी तो नलिन घर ही था और उसे बाहर ड्राइव वे तक छोड़ने आया। गाड़ी का दरवाज़ा बंद कर खिड़की से सर बाहर निकाल कर वह बोली-'तुम चाहो तो हम वो घर के पास वाले पब में लंच ले सकते हैं। अगले सन्डे मैं ख़ाली हूँ फ़ोन करके बता देना मुझे।'

हाथ हिला उसने एक्सीलेरेटर दबाया... वह बाहर खड़ा गाड़ी को आँखों से ओझल होते हुए देखता रहा...

बीजी ने उसे फ़ोन करके बुलाया है। वह जब ऑफिस ख़त्म करके पहुँचती है तो मेज़ पर चाय तैयार है। आज बीजी घर पर अकेली हैं... वह सुनती रही एक माँ की कोशिश, माँ की लाचारी और उसकी एक चाह, अंत में वह उसे समझाने की कोशिश करती हैं-'देख पुत्तर अब ज़माना बदल गया है, तू पता नहीं किस सदी में जीती है। आजकल ऐसे नहीं चलता, जब तक तुम दोनों एक दूसरे को ठीक से जान न लो, तब तक कैसे आगे बात बढ़ेगी..आजकल तो एक दूसरे को मन-तन सभी तरह से जाना जाता है।' यह एक माँ की आख़िरी कोशिश है...

वह बीजी का हाथ पकड़ लेती है आँखों में आँखें डाल कर मुस्कुरा कर कहती है 'आप अपने बेटे को अच्छी तरह जानती हैं, यदि मैं भी वही करती जो और करती हैं तो क्या मैं आपके पास आज यहाँ बैठी होती? इसमें सदी और ज़माना बदलने की बात नहीं है, मुझे अपनी इज़्ज़त और आपकी इज़्ज़त करने का अधिकार तो है न बीजी ?'

माँ ने आँखें नीची कर उसे गले से लगा लिया। अपना मुँह छुपाते हुए भरे गले से बोलीं -'देख पुत्तर मैंने तेरे लिए ढोकला बनाया है बता तो कैसा बना है?'

****

ग़ज़ल

विज्ञान व्रत

जुगनू ही दीवाने निकले
आँधियारा झुठलाने निकले
ऊँचे लोग सयाने निकले
महलों में तहख़ाने निकले
वो तो सबकी ही ज़द में था
किसके ठीक निशाने निकले
आहों का अंदाज़ नया था
लेकिन ज़ख़्म पुराने निकले
जिनको पकड़ा हाथ समझकर
वो केवल दस्ताने निकले

****

मुझको जब ऊँचाई दे
मुझको ज़मीं दिखाई दे
एक सदा ऐसी भी हो
मुझको साफ़ सुनाई भी दे
दूर रहूँ मैं ख़ुद से भी
मुझको वो तनहाई दे
एक ख़ुदी भी मुझमें हो
मुझको अगर ख़ुदाई दे
ख़ुद को देखूँ रोज़ नया
मुझको वो बीनाई दे

****

मैं था तनहा एक तरफ़
और ज़माना एक तरफ़
तू जो मेरा हो जाता
मैं हो जाता एक तरफ़
अब तू मेरा हिस्सा बन
मिलना-जुलना एक तरफ़
यूँ मैं एक हक़ीक़त हूँ
मेरा सपना एक तरफ़
फिर उससे सौ बार मिला
पहला लमहा एक तरफ़

****

एन-138, सेक्टर-25,
नोएडा-201301 (भारत)
मो. : 09810224571
ईमेल : vigyanvrat@gmail.com

एक लकीर दर्द की

विकेश निझावन

'वोऽ बिट्टो आ गई!' हवन-कुण्ड के चारों तरफ बैठे लोगों के बीच में से एक आवाज़ उभरी थी। सभी की नज़रें एकदम से गेट की ओर उठ गईं। मैंने थोड़ा सा उचककर गेट की ओर देखा। बिट्टो एक हाथ में मुन्ने को लिए और दूसरे हाथ से रिक्शा को थामे नीचे उतर रही थी। हल्के पीले रंग की साड़ी और उलझे-उलझे बालों में वह सचमुच बड़ी सुन्दर लग रही थी।

'पण्डितजी, आप हवन शुरू कीजिए!' बुआ जी का आक्रोश भरा स्वर फूटा था। कारण मैं समझ गई थी। यकीनन उन्हें बिट्टो के देर से आने पर काफी नाराज़गी थी। लेकिन इसका मतलब यह तो नहीं कि इसका उससे बदला ही लिया जाता। दो मिनट तो रुका ही जा सकता था।

काफी गुस्सा आया था मुझे बुआ जी पर। लेकिन दूसरे ही पल यह सब सुखद भी लगा। क्योंकि अब सभी की नज़रें गेट से हटकर पण्डितजी की ओर जम गईं और अब बिट्टो लोगों के लिए नाहक तमाशा-सा बनकर नहीं रह गई थी।

मैं अब भी तिरछी नज़रों से बिट्टो की ओर ही देख रही थी और इस बात का अन्दाज़ा लगा रही थी कि वह मेरे पास कितने मिनट में पहुँच जाएगी।

थोड़ा-सा एक ओर सरककर मैंने उसके बैठने की जगह भी बना दी। लेकिन यह सोचते ही कि अगर वह कहीं और बैठ गई, मैं निराश हो आई थी।

मुन्ने को रास्ते में ही मालती ने पकड़ लिया था। बिट्टो मेरे ही पास छुई-मुई-सी बनी आ बैठी।

थोड़ी ही देर में सभी पण्डितजी के मन्त्रों में डूब गए तो मैं अपना प्रश्न उठाए बिना न रह सकी बड़ी देर से पहुँची है री! अजय नहीं आया?

बिट्टो ने क्षणभर को घूरते हुए मेरी ओर देखा, फिर गर्दन झुका ली। आँखों ही आँखों में उसने ऐसे माहौल में अपना जवाब देने की शायद असमर्थता प्रकट कर दी थी। मुझे खुद पर गुस्सा आया। क्या यही वक्त था यह सब पूछने का। मेरे आस-पास पचास-सौ व्यक्ति और बैठे हैं, वे सब बहरे तो नहीं।

तभी किसी के आने का आभास हुआ तो मैंने गर्दन उठाकर देखा। शक्ल से जाना-पहचाना व्यक्ति था। लेकिन कौन है, कहाँ रहता है, यह मैं नहीं जानती थी। यों हर आने-जाने वाले का मैं निरीक्षण-सा कर रही थी। पापा का शहर में जितना नाम था और जिन-जिन लोगों के बीच उनका उठना-बैठना था, क्या उतने लोग आए हैं?

सच में, थोड़ी ही देर के बीच लोगों की एक अच्छी-खासी भीड़ जमा हो गई थी, जो पापा के बड़े होने का अहसास दिला रही थी।

आज पापा की बरसी थी। बाहर से लोगों का आना-जाना तो दो रोज़ पहले ही शुरू हो गया था। मैं ही चार रोज़ पहले आ गई थी। इतनी दूर से आओ तो कुछ रोज़ का प्रोग्राम तो बनाकर आना ही होता है।

मेरे यहाँ पहुँचने के पन्द्रह मिनट बाद ही भैया और भाभी रिक्शा से उतरे थे। उनका जल्दी आ जाना मुझे अच्छा लगा था। वरना रास्ते भर मैं घर में छाए मौन और उदासी का सोच-सोचकर डूबी जा रही थी। विशेषकर जब मम्मी का उदास चेहरा आँखों के सामने आ जाता।

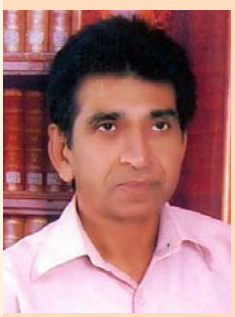

अम्बाला शहर, हरियाणा के विकेश निझावन के दस कहानी-संग्रह, चार कविता-संग्रह, दो उपन्यास, एक लघुकथा संग्रह तथा कुछ बाल पुस्तकें प्रकाशित। कहानी-संग्रह 'अब दिन नहीं निकलेगा' एवं कविता-संग्रह 'एक टुकड़ा आकाश' हरियाणा साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत।
557-बी, सिविल लाइन्स,
आई टी आई बस स्टॉप के सामने
अम्बाला शहर-134003 -हरियाणा।
vikeshnijhawan@rediffmail.com

मम्मी अभी तक अपने को 'एडजस्ट' नहीं कर पाई हैं, ऐसा मैं अतुल के ई-पत्रों से जानती चली आई थी। एक वर्ष हमारे लिए काफी लम्बा समय था; लेकिन मम्मी के लिए शायद नहीं। यों पापा की याद और उनकी बातें अभी तक दिमाग से जुड़ी थीं; लेकिन उन्हें कभी सोचने या किसी से कहने का वक्त ही कहाँ मिला था। अब वे मात्र एक कहानी की तरह लगने लगी थीं, जिसे कभी परदे पर देखा हो।

सुबह की गाड़ी से मँझले भैया और भाभी भी आ गए थे। साथ में बुआ जी भी थीं, जिन्हें आँखों पर मोटा-सा चश्मा लगाए देख मैं हँस पड़ी थी, 'आपको क्या हो गया बुआजी! इतनी मोटी ऐनक... वैसे आप जंच रही हैं इसमें।'

'शर्म नहीं आती कलमुँही! हम लोगों की दीन-दुनिया चली गई और तुझे मज़ाक सूझ रहा है।'

'लेकिन इतना मोटा चश्मा लगाकर तो दीन-दुनिया लौट आई होगी।'

'अभी कहाँ लौटी है री! अभी तो दूसरी आँख का मोतिया-बिंद उतर रहा है। जब तक उसका ऑपरेशन नहीं हो जाता, नज़र कहाँ टिकेगी।' बुआजी ने ऐनक उतारी और शीशे साफ करती हुई बोलीं, 'बिट्टो रानी कहाँ है री?'

क्षणभर पहले बुआजी से मज़ाक करने का जो मूड बना था, वह बुआजी के प्रश्न के आगे एकदम बुझ-सा गया।

सचमुच जैसे बिट्टो की हमें भी अब याद आई थी। इतनी नज़दीक रहते हुए भी पापा की लाड़ली अभी तक नहीं पहुँची थी।

अतुल बाहर जा रहा था, तो उसी से पूछ लिया मैंने, 'ऐऽ! बिट्टो नहीं आई अभी तक? कोई फ़ोन तो नहीं आया उसका?'

अतुल ने पैनी-सी दृष्टि से मेरी ओर देखा और 'पता नहीं' कहकर बाहर को निकल गया।

लो! इसे क्या हो गया है। सीधे मुँह जवाब ही नहीं। जब से आई हूँ, एक मिनट भी जी भर कर बात नहीं की इसने। व्हाट्सएप्प पर तो क्या-क्या लिखा करता था।

गर्दन झटकती हुई मैं बुआजी की ओर

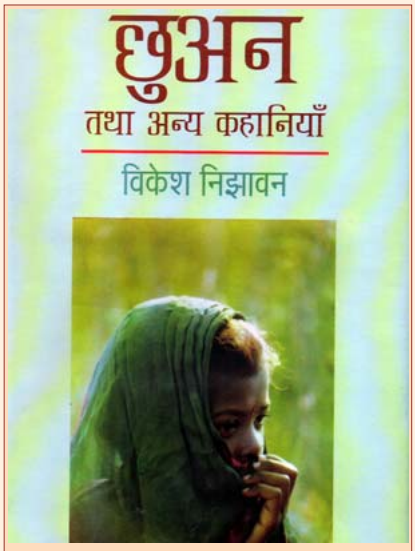

पुस्तक: छुअन तथा अन्य कहानियाँ
विश्वास प्रकाशन, 557-बी, सिविल लाइन्स, आई टी आई बस स्टॉप के सामने, अम्बाला शहर-134003 -हरियाणा। मूल्य : 325 रुपये

मुड़ी और उखड़े हुए स्वर में बोली, 'उसका ससुराल से आना इतना आसान थोड़े न है। चूल्हे-चक्की से फुर्सत मिलेगी तब न!'

मैंने बात पूरी कही थी लेकिन मेरी बात पूरी होने तक बुआ जी कमरे की दहलीज़ भी लाँघ चुकी थीं।

पण्डित जी की आवाज़ रुकी तो मेरा ध्यान उस ओर बंटा। हवन-कुण्ड में समिधा की लकड़ियाँ डाली जा चुकी थीं। छोटी भाभी अन्दर से कुछ लेने जाने लगी, तो जाते-जाते उसने एक नज़र मेरे और बिट्टो पर फैंकी। यों दोनों भाभियों के चेहरे रुआँसे पड़े थे; लेकिन मन्त्रों के उच्चारण के वक्त उनकी आवाज़ काफी ऊँची रहती। कई बार उनकी आवाज़ एकदम से रुक जाती, शायद मन्त्र पूरी तरह न आने की वजह से। तब मैं बिट्टो की तरफ देखकर तनिक मुस्करा भर देती। प्रत्युत्तर में बिट्टो का भावहीन चेहरा देख मुझे काफी गुस्सा आने लगता।

बड़े भैया ने एक-दो बार पीछे मुड़ कर देखा था। शायद वे मुझे आगे आने का संकेत कर रहे थे। लेकिन मैं औरतों में इस कद्र घिरी बैठी थी कि मुझे आगे जाना काफी कठिन सा लगा। यों भी आगे जाना मेरे लिये मात्र एक औपचारिकता थी। मैं जानबूझ कर भैया से दृष्टि चुराती रही।

औरतों के बीच बैठी मैं मम्मी की स्थानापूर्ति भी तो कर रही थी। घर में बड़ी होने के नाते, लोग मेरे नज़दीक ही अधिक आ जा रहे थे। मम्मी की आँखें इस कद्र कमज़ोर हो चुकी थीं कि हर एक को पहचानना उनके बस की बात नहीं थी। और ऐसे मौके पर तो लोग अपनी सूरत दिखलाना ही अधिक ज़रूरी समझते हैं न।

हवन खत्म होते ही सब लोग उठ खड़े हुए। लोगों को विदा करके जैसे ही मैं अन्दर आई, स्टोर की तरफ से किसी की सिसकियाँ सुनाई दी। मैं तेज़ी से मुड़ी। देखा, घुटनों में सर छिपाए अतुल था।

'अऽतुल.. क्या हुआ रे?' करीब पहुँचकर जैसे ही मैंने उसका चेहरा ऊपर उठाया, वह बच्चों की तरह 'पापा-पापा' कहते हुए मुझसे लिपट गया।

मैं जड़ हो आई थी। आज जाना था कि दु:ख-पीड़ा क्या होती है। हम लोग तो अपने-अपने घरों में व्यस्त हो गए। पापा को याद करने की कभी फुर्सत ही नहीं मिली। लेकिन अतुल के आगे अपना और मम्मी का एकाकी जीवन था, जो पापा की याद हरदम ताज़ा करवा सकता था।

बालों को सहलाती हुई मैं बोली, 'जी छोटा न कर। सब कुछ अब तुम्हीं ने ही तो सँभालना है।'

दरअसल, पिछले तीन-चार माह से उसने हर ईमेल में, व्हाट्सएप्प के संदेशों और कई हस्तलिखित पत्रों में मम्मी को लेकर ही लिखा था। कई-कई पंक्तियाँ मेरे सामने उभर-उभर कर आने लगी थीं।

'दीदी, कभी-कभी लगता है, मैं बहुत उदास हूँ। जी चाहता है, यहाँ से भाग जाऊँ, बहुत दूर.. लेकिन किसे छोड़ दूँ.. किसे पा लूँ।'

'हर वक्त मन में एक आतंक-सा बना रहता है। रात सोता हूँ तो लगता है, सुबह मम्मी.. मुझे लगता है दीदी, मम्मी अब जीना ही नहीं चाहतीं। दीदी, मरे हुए व्यक्ति को देखना आसान है, लेकिन मरते हुए व्यक्ति को देखना बहुत मुश्किल है।'

मम्मी अधिक उदास हो उठती होंगी, इसलिए भावुक हो उठता है। इस स्थिति से उन्हें उबारने का कोई तरीका भी तो नहीं है मेरे पास। हारकर मैं उसे उसकी इन बातों

का जवाब ही नहीं देती थी।

किसी तरह उसे धीरज बंधा कर मैं बाहर आई तो देखा, बरामदे में से दरियाँ और हवन आदि का सारा सामान उठवा दिया गया है। लोग-बाग सभी जा चुके थे। बड़ी भाभी फर्श पर पानी की बाल्टियाँ ऐसे फैंक रही थीं मानों अभी-अभी यहाँ से हवन-कुंड नहीं, पापा का मृतक शरीर उठाया गया है।

बुआ जी के माथे पर काफी तेवर बने हुए थे। इन्हें कुछ कह तो नहीं दिया किसी ने? मैंने बुआजी की ओर रुख किया ही था कि वे उबल पड़ीं। जीते जी कितना दान-पुन किया करता था वह। उसके मरने के बाद तुम्हारा तो फर्ज़ बनता था कि दो रोटी गरीबों को ही खिला देती।

बुआ जी के तेवरों का कारण अब समझ में आया था। भैया-भाभी से वे पहले बात कर चुकी हैं, इसका मुझे पता चल गया था। लेकिन वे इसके लिये तैयार नहीं थे। मैंने अतुल से ही आकर कहा, 'बुआजी ठीक ही तो कहती हैं। अब सब कुछ हमीं ने ही तो करना है।' मैंने जानबूझ कर ऊँचे स्वर में कहा ताकि बात भैया तक भी पहुँच जाए; लेकिन बड़े भैया कन्नी काट छत पर चले गए।

बुआ जी की बात का पलड़ा भारी होते देख मँझले भैया ने हाँ में हाँ मिलाई। इस बीच मम्मी ने पास आकर मेरे हाथ में कुछ नोट थमा दिए थे। मेरे इनकार करने पर उन्होंने केवल मेरी मुट्ठी दबा दी थी।

सब चीज़ें लाने-देने का काम अतुल ने ही किया था। इस सारे कार्यक्रम के समाप्त होने तक बड़ी भाभी का मुँह सूजा रहा था। रात को हम केवल घर के सदस्य ही बाकी रह गए थे। डाइनिंग टेबल पर प्लेट्स लगाते वक्त मैं सोचने लगी थी, आज कितने दिन बाद हम सभी भाई-बहन इकट्ठे हुए हैं इस घर में, शायद ऐसा ही कोई मौका आता है जब हम सभी इकट्ठे हो पाते हैं, वरना सभी अपने-आप में व्यस्त हैं।

'अब अतुल की शादी जल्दी ही हो जानी चाहिए।' खाना खाते वक्त बड़ी भाभी ने मेरे मुँह की बात छीन ली थी। आज पहली बार लगा कि भाभी ने कोई अक्ल की बात की है और इस घर की ज़िम्मेवारी को समझा है। छोटी भाभी ने इसका समर्थन किया और बड़े गर्व के लहजे में बोलीं - 'लड़की तो मैं बता सकती हूँ। एकदम ए-वन!'

मैं तिरछी नज़र से अतुल की ओर देखती हुई मुस्कराई। केवल उसके चेहरे पर होने वाली प्रतिक्रिया जानने के लिए। लेकिन उसके चेहरे पर न कोई रंग आया, न गया। गर्दन झुकाए रोटी चबाता रहा वह।

'लड़की तो एक मेरे माइंड में भी है।' एकाएक जैसे बिट्टो को भी ख्याल आया। 'पढ़ी-लिखी तो मैट्रिक तक ही है, लेकिन सुन्दर बहुत है।'

'सच!' मैंने अनचाही प्रसन्नता चेहरे पर ओढ़ी और अतुल से मुखातिब हुई-'भैया, अब निर्णय दे दे। तुझे कौन-सी चाहिए?'

अतुल बिना किसी की ओर नज़र डाले वाश-बेसिन की ओर बढ़ गया।

'लो, देवर जी गुस्सा कर गए।' छोटी भाभी बोली, 'इन्हें तो पढ़ी-लिखी भी चाहिए और सुन्दर भी। लेकिन आप लोग हैं कि...' और खिसियाई-सी हँसी हँस दी वह।

गुस्सा तो बहुत आया था भाभी पर लेकिन चुप बनी रही मैं। दो-चार दिन तो रहना है यहाँ। वो भी बिगाड़ कर चली जाऊँ।

'इस तरह का गुस्सा तो हम भी किया करते थे।' बड़े भैया बोले, 'लेकिन जब देवी जी के दर्शन किए तो...'और ठहाका मार कर हँस दिए वे।

बात जितनी गम्भीरता से शुरू हुई थी उतनी ही मज़ाक में जाती लगी। विषय वहीं छोड़ मैं उठ खड़ी हुई।

रात छत पर टहलने के लिए निकल आई थी। थोड़ी ही देर बाद भाभी भी आ गईं।

'आपने क्या सोचा है दीदी?' मेरे करीब आती हुई वह बोलीं।

'किस बारे में?' मैं समझती हुई भी अनजान-सी बन आई थी।

'अतुल की शादी के बारे में? आख़िर वह कैसी लड़की चाहता है, हमें भी तो पता चले।'

'कैसी भी लड़की चाहे, लेकिन अतुल में क्या कमी है जो उस पर इतने व्यंग्य कसे जा रहे थे।' मैं काफी कठोर हो आई थी।

भाभी ने सहज एवं दृढ़ मुद्रा बनाई, 'बात दूसरों ने बढ़ाई थी दीदी। भला इसमें मेरा क्या दोष..? मुझे तो मम्मी का ध्यान आता है। भला कब तक यों अकेली रह सकेंगी वह।'

भाभी को यों रहम दिल होते देख सचमुच मैं विस्मय में पड़ रही थी।

'अतुल की पसन्द के बारे में मैं क्या जानूँ भला।' मैंने स्वयं को थोड़ा संयत किया।

'जानती नहीं, जान तो सकती हो न? हमारे रिश्ते में एक लड़की है, कहो तो फ़ोन करके किसी बहाने उसे यहाँ बुला लूँ।'

बात गलत नहीं लगी थी मुझे। इतना वक्त ही कहाँ था कि पहले हम लोग वहाँ जाते और फिर अतुल के देखने-दिखलाने का चक्कर पड़ता।

अतुल की ज़िम्मेवारी मैंने अपने ऊपर ले ली। मुझे विश्वास था कि अगर लड़की मुझे पसन्द आ गई तो अतुल 'न' नहीं करेगा।

सुबह अपने सामने ही मैंने भाभी से फ़ोन करवा दिया। काफी हल्का महसूस करने लगी थी मैं खुद को। मेरे उठते-उठते भाभी ने जैसे पुनः याद दिलाया, 'दीदी, अतुल से बात कर लेना आज ही।'

ब्रेकफास्ट लेते हुए छोटे भैया -भाभी ने लेक जाने का प्रोग्राम बना लिया था। बड़े भैया भी भाभी को लेकर शायद किसी दोस्त के यहाँ जाने का प्रोग्राम बना चुके थे। मुझे अच्छा ही लगा था। क्योंकि यही वक्त था जब मैं अतुल और मम्मी से खुल कर बात कर सकती थी।

उनके जाते वक्त मुझे चुभन तो हुई थी फिर भी मुस्कराते हुए उन्हें विदा कर मैं बरामदे में पहुँची। मम्मी राँस के पास खड़ी दाल बीन रही थीं।

'ओह मम्मी! पहले ही आँखें इतनी कमज़ोर हैं, ऊपर से...' मैंने झट से मम्मी के हाथ से थाली छीन ली थी, 'अभी तो हम यहीं हैं।'

'जब चली जाओगी?'

'तब का इन्तज़ाम भी हम कर रहे हैं।'

'यही... कि मुझे विरेन के पास भेज देना चाहते हो?'

'मतलब?' मैं चौंकी थी।

'जान बूझ कर सब अन्जान क्यों बन रहे हैं? आज मैं अकेली रह गई हूँ, इसका मतलब यह तो नहीं कि जिधर जी चाहे, उधर फैंक दो मुझे।'

भाभी की रहमदिली का मतलब मैं अब समझ रही थी। मिन्नी के लिए उसे 'मेड' नहीं मिल रही, इसका बखान वह कई बार कर चुकी थीं।

मम्मी के कंधे पर हाथ रखती मैं बोली, 'मम्मी, मैं तो अतुल की शादी के बारे में कह रही थी।'

मम्मी फटी-सी आँखों से मेरी ओर देखने लगीं, 'लेकिन बाकी सभी मेरे पीछे क्यों पड़े हुए हैं?' मम्मी रुआँसी हो आई थीं।

'कोई आपसे ज़बरदस्ती नहीं करेगा मम्मी! जहाँ आपका जी चाहेगा, वहीं रहेंगी आप।'

मैं समझ गई थी कि मम्मी यह घर छोड़ कर कहीं नहीं जाना चाहतीं। मैंने जल्दी ही माहौल को थोड़ा हल्का बनाना चाहा।

'मम्मी, भाभी ने अतुल के लिए एक लड़की सजैस्ट की थी। मैंने सुबह ही फ़ोन करवा दिया है कि वे लोग लड़की को लेकर यहीं आ जाएँ। भाभी के रिश्ते में ही है। मैं जानती हूँ, सब आपकी राय के बिना हुआ है, लेकिन अब हम आपको अकेले नहीं छोड़ना चाहते। हाँ, निर्णय तो आप ही देंगी।' मम्मी को बुरा न लगे, इसलिए मैंने सारी बात स्पष्ट कर दी।

'मैं तो निर्णय दे दूँगी, लेकिन अतुल मानेगा?' मम्मी के स्वर में किसी तरह का आक्रोश नहीं था।

'आप अतुल की चिन्ता मत करें।' मैंने बड़े आत्मविश्वास से कहा। अतुल सामने होता तो बात स्पष्ट हो जाती। लेकिन वह तो सुबह ही बिट्टो के साथ उसे उसकी ननद के यहाँ छोड़ने के लिए चला गया था।

रात सोते वक्त बिट्टो ने कई बार दोहराया था कि सुबह उसे जल्दी उठा दिया जाए;क्योंकि उसे अपनी ननद से मिलकर शाम की गाड़ी से ससुराल वापिस भी पहुँचना है। एक अजीब सी दहशत, डर उसके चेहरे पर रहता जो मुझे जला-सा गया

था।

'ऐ, दो-चार रोज़ तो रुक जा। जब तक हम यहाँ हैं तब तक ही सही। ससुराल में तो सारी उम्र ही रहना है।'

'मेरी जगह होती न दीदी, सब पता चल जाता।'

उसने जिस कड़वाहट से कहा, लगा, अपने दु:ख का दोष वह मुझे ही दे रही है। मन में आया कह दूँ, दोष तेरा ही है जो इतनी दब्बू बन गई है। पर सोचा, मन का चाहा मैं ही कितना कर पाती हूँ। एक और भय भी तो हम लोगों के मन में समाया हुआ है। पापा सिर पर नहीं हैं, झगड़ा मोल लेकर हम किधर भटकेंगी।

बिट्टो जाने लगी थी तो बुआजी को भी अपने गुरुजी की याद आ गई थी। अपने छोटे से थैले में एक धोती और थोड़ा सा प्रसाद लेकर वे गुरुजी के दर्शन करने को निकल गईं।

सुबह से दोपहर तक का एक-एक पल मैंने घर की एक-एक वस्तु का निरीक्षण करते हुए गुज़ारा था। कोठी के मेन गेट से बरामदे तक के दरवाज़े तक एक अजीब-सा सूनापन छाया हुआ था। पापा थे तो कोठी का एक-एक कोना हरियाली और फूलों से भरा पड़ा रहता था। गेट से प्रवेश करते ही मोतिया और चमेली की गन्ध पुलकित-सा कर जाती थी। बरामदे में फैला मनीप्लांट अपना अस्तित्व ही खो बैठा था। छतों पर फैले जाले एक अजीब सा भयानक रूप दे रहे थे। मन में आता है मम्मी से चिल्ला कर पूछूँ, 'आख़िर यह क्या हालत बना रखी है घर की।' पर मैं जानती हूँ, मेरे इस प्रश्न के आगे मम्मी के पास रोने के सिवाय कुछ नहीं होगा।

क्या व्यक्ति अपने लिए कभी नहीं जीना चाहता। पापा के होते हुए दु:खों के कम अम्बार टूटे थे भला। लेकिन रोने-रुलाने के बाद भी मम्मी में जीने की पूरी इच्छा थी। हर हाल से समझौता किए थीं वे।

एक साथी चला गया तो हम भी पूरी तरह से ढह गए। खुद के लिए खुद को भी नहीं सँभाल सकते। शायद इन्सान बहुत कमज़ोर है। दूसरे के सहारे के बिना जी ही नहीं सकता।

पीछे वाले बगीचे में बैठी डूबते सूरज को देख ही रही थी कि अतुल आ गया।

'बहुत देर से आया है रे? तू तो बिट्टो को छोड़ने ही गया था, कहीं और चला गया था क्या?'

'कहीं भी तो नहीं.. बस ज़रा...'

'कहीं नहीं... बस ज़रा.... पता नहीं... ये क्या जवाब मिल रहे हैं आजकल। दो-चार रोज़ के लिए आए हैं, पास बैठने के लिए मन नहीं करता?'

'दो-चार रोज़ के लिए आई हो, इसीलिए मोह नहीं बढ़ाना चाहता।' आँखों में गहरी उदासी लिए वह मुस्करा दिया।

बड़ी मुश्किल से खुद को पिघलने से बचाया। फिर भी कह उठी, 'ठीक कहता है रे! ये मोह-ममता न होती तो इन्सान कितना सुखी होता।'

गर्दन झुकाए घास का तिनका चबाने लगा था वह।

'प्रमोशन के चांसिज़ कब तक हैं?' यों ही पूछ बैठी मैं।

'शायद जल्दी हो जाए।'

'तो फिर इसी खुशी में एक काम कर डाल।'

'क्या?'

'झट से शादी करवा ले।'

इस बार खुल कर हँस दिया वह।

'इतनी भी क्या जल्दी है। अभी तो सारी उम्र पड़ी है।'

'तुम्हें जल्दी नहीं, हमें तो है। अपना नहीं, मम्मी का तो ख़याल कर कुछ।'

'मेरे शादी करवाने से मम्मी को क्या सुख मिलेगा?'

'क्यों, कोई सुख नहीं मिलेगा? कुछ नहीं करेगी वह मम्मी के लिए?'

'जो सेवा वह मम्मी की करेगी, विश्वास दिलाता हूँ दीदी, उतनी सेवा मैं भी मम्मी की करूँगा।'

'लेकिन वो सुख, वो चैन नहीं दे पाओगे, जो बहू के आने से माँ को होता है।'

'पहले भी तो दो बहुएँ आ चुकी हैं। इसकी पूर्ति तो अब तक हो जानी चाहिए थी।'

मैं बात को जितना 'लाइटली' ले जाना चाहती थी, वह उसे उतना ही तूल दे रहा था। फिर भी मैंने स्वयं को संयत रखा।

'अच्छा-अच्छा, ज़्यादा बातें मत बना। छोटी बहू के आने का जो चाव होता है, तू क्या जाने।'

वह खामोश रहा। मैं ही बोली, 'कल ऑफिस से ज़रा जल्दी आ जाना।'

'क्यों?'

इस बार निगाहें उसने मेरे चेहरे पर गड़ा दीं जैसे सचमुच वह किसी बात के लिए शंकित हो उठा था।

'कल कुछ लोग आ रहे हैं। मैं चाहती हूँ जाने से पहले मैं सब कुछ करके जाऊँ।'

वह एक झटके से उठ खड़ा हुआ। आँखों में जैसे खून उतर आया था उसके।

'किसके कहने पर किया जा रहा है यह सब?' उसकी मुट्ठियाँ भिंच आई थीं।

'किसके कहने पर होगा? क्या हमारा कोई अधिकार नहीं है?'

वह पाँव पटकता हुआ ड्राईंग-रूम की ओर चल दिया। मैं भी पीछे-पीछे हो ली थी।

'आख़िर हो क्या गया है तुझे?' मैं चलती-चलती बोली, 'इस उम्र में कितना चाव होता है लड़कों को। एक छोटा-सा घर बन जाता है अपना। जीवन में स्थिरता आ जाती है। ज़िन्दगी अर्थपूर्ण हो जाती है।'

'यह जीवन तो दान में दे दिया है दीदी। अगले जन्म में देखेंगे।' वह ड्राईंग-रूम में सोफे पर जा दुबका था।

'तो पहले ही क्यूँ नहीं बता दिया रे! अब तक पहेलियाँ क्यों बुझाए जा रहा था। कौन है वो, जिसे यह जीवन दान में दे दिया है।'

'नहीं दीदी, तुम गलत समझ बैठीं। मुझे समझने की कोशिश करो।'

'क्या समझने की कोशिश करूँ?' मैं झुँझला गई थी।

'मुझे यह सब अच्छा नहीं लगता।' उसका स्वर एकदम से शान्त था।

'क्या अच्छा नहीं लगता।' मेरी आवाज़ पता नहीं क्यों कुछ दब-सी गई थी।

'कुछ भी अच्छा नहीं लगता।' वह पुनः उसी रौ में बोला।

'पहेलियाँ क्यों बुझा रहा है। साफ-साफ कह दे न जो कहना चाहता है।'

'मैं बहुत अकेला पड़ गया था दीदी। बहुत दुःख देखे हैं मैंने।'

लो, यह कौन-सी बात ले बैठा। विस्मय में पड़ रही थी मैं। मैंने भी चोट-सी करनी चाही, 'तू सोचता है हम बहुत सुखी हैं। हमें किसी की चिन्ता नहीं है।'

'मैं जानता हूँ दीदी। लेकिन दुःख और आतंक में बहुत अन्तर होता है। मेरी अब तक की ज़िन्दगी केवल आतंक में गुज़र कर रह गई है।'

'वो आतंक अकेलेपन की वजह से ही तो था। उस आतंक से उबरने का इससे अच्छा तरीका और क्या हो सकता है भला।'

'नहीं, अब वक्त ही नहीं रहा।'

'क्यूँऽऽ? किस भ्रम को पाले हुए है आख़िर तू?' यह मैं नहीं, मेरे अन्दर से कोई और ही बोला था जैसे।

'ठीक कहती हो दीदी', उसके शब्दों में कंपन था, 'शायद यह मेरा भ्रम ही हो। लेकिन कभी-कभी लगता है, उस आतंक ने जिस्म की एक-एक नस को कहीं अन्दर-ही-अन्दर जला डाला है। इस उम्र में ही नपुंसकता का बोध होने लगे, तो जानती हो कैसा लगता है...?'

कहने को वह कह गया। लेकिन यह शायद उसने बाद में महसूस किया कि सामने मैं बैठी हूँ। चेहरा घुटनों में छिपा लिया उसने। मैं जड़-सी हो आई थी।

****

ग़ज़ल

विज्ञान व्रत

मुझ पर कर दो जादू-टोना
एक नज़र ऐसे देखो ना
इतने दिन में घर आए हो
घर जैसे कुछ रोज़ रहो ना
बादल हो तुम या ख़ुशबू हो
बरसो खुलकर या बिखरो ना
ढूँढ़ न पाया ख़ुद को घर में
छान चुका हूँ कोना-कोना
तुम से ख़ुद को वापिस क्या लूँ
रक्खो अब तुम ही रख लो ना

****

वो हमसे अनजान रहे
जिनकी हम पहचान रहे
वो मेरा अरमान रहे
मेरी ये पहचान रहे
दोनों की पहचान रहे
ऐसा कुछ दरम्यान रहे
दुनिया तब तक दाना थी
जब तक हम नादान रहे
दोनों चुप थे यानी वो
दोनों एक ज़ुबान रहे

****

वो तब तक दरिया न हुआ
मैं जब तक सहरा न हुआ
वो जब तक मेरा न हुआ
मैं ख़ुद भी अपना न हुआ
ख़ुद से भी मिलना न हुआ
लेकिन मैं तनहा न हुआ
दुनिया में क्या-क्या न हुआ
मैं उसकी दुनिया न हुआ
मैं अब तक ख़ुद-सा न हुआ
ये होना होना न हुआ

****

एन-138, सेक्टर-25,
नोएडा-201301 (भारत)
मो. : 09810224571
ईमेल : vigyanvrat@gmail.com

उदास रंग

पुष्पा सक्सेना

अनमने से निशांत ने मीनल के सामने ईमेल का एक प्रिंट-आउट फेंक सा दिया।

'क्या है?'

'खुद देख लो।' जवाब के साथ निशांत कमरे से बाहर चला गया।

निशांत के उस अप्रत्याशित जवाब ने मीनल को चौंका दिया। ज़रूर कोई ख़राब ख़बर है वर्ना शादी की रात ही निशांत ने मीनल से कहा था-

'हम दोनों असली अर्थों में पति-पत्नी तभी बन सकेंगे जब हम सच्चे दोस्त बन जाएँ। हमारे बीच कोई परदा ना रहे।'

अपनी उस बात को निशांत ने पूरी तरह से निभाया है। पहली रात ही निशांत ने शादी के पहले नेहा नाम की लड़की के पीछे अपनी दीवानगी की कहानी सुना डाली। मीनल से भी हँस कर पूछा था-

'अब अपनी सुनाइए। कितने रोमियो आपके दीवाने थे? हाँ, जिसे तुमने चाहा बस उसका नाम बता दीजिए, बंदे को कोई शिकायत नहीं होगी। तुम्हारे अतीत से मेरा कोई सरोकार नहीं है।'

'मेरा कोई अतीत नहीं है। हमारे मुहल्ले को तो देखा है, उस माहौल में रोमांस का क्या कोई चांस हो सकता है?' दृढ़ता से ओंठ भींच मीनल ने जवाब दिया।

'कमाल है, क्या तुम्हारा छोटा सा मुहल्ला ही तुम्हारी पूरी दुनिया थी? यूनिवर्सिटी-कॉलेज में कोई नहीं मिला?'

'मिला होता तो क्या आप मिलते?'

मीनल के उस जवाब पर जी खोल कर हँसते निशांत ने मीनल को बाहों में समेट लिया।

सच तो यह है निशांत ने पूरी तरह से अपनी बात निभाई है। उसके नाम आए पत्रों को खोल कर पढ़ने की मीनल को पूरी इजाज़त थी। अक्सर एक दूसरे के नाम आए पत्रों को पढ़ कर दोनों एन्जॉय करते, पर आज निशांत ने एक शब्द भी नहीं कहा।

प्रिंट-आउट पर नज़र डालती मीनल के चेहरे का रंग उड़ गया। लिज़ा की चंद पंक्तियाँ थीं-

'रोहित नहीं रहा। गोमती के किनारे मीनल की उपस्थिति में उसका अंतिम संस्कार किया जाए, यही उसकी आख़िरी ख़्वाहिश थी। मीनल से अनुरोध है, जाने वाले की अंतिम इच्छा ज़रूर पूरी करे। अंतिम संस्कार नौ दिसम्बर को चार बजे होगा। मीनल के लिए रोहित ने एक पेंटिंग बनाई है, लिज़ा उसे साथ लाएगी।'

मीनल की आँखों से कितने आँसू बह गए, उसे ज़रा भी भान नहीं रहा अचानक निशांत

अमरीका के वाशिंगटन राज्य की सियाटेल नगरी में रहतीं पुष्पा सक्सेना के पाँच उपन्यास, ग्यारह कहानी-संग्रह, दो हास्य नाटक, बाल कथा साहित्य की सात पुस्तकें और भारत तथा अमरीका की समस्त स्तरीय पत्रिकाओं में 150 से अधिक कहानियाँ प्रकाशित। कहानियों का मराठी, गुजराती, पंजाबी, अंग्रेज़ी, बंगला भाषाओं में अनुवाद। कई सम्मानों से सम्मानित पुष्पा जी को उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा वर्ष 2014 का महत्त्वपूर्ण ''प्रवासी भारतीय हिन्दी भूषण सम्मान'' भी प्रदान किया गया है।

संपर्क : 13819 NE 37TH PL, Belle1ue, WA 98005

ईमेल: pushpasaxena@hotmail.com

की रूखी आवाज़ ने उसे चौंका दिया।

'लखनऊ के लिए फ़्लाइट बुक करा दी है। सुबह दस बजे पहुँच जाओगी। तुम्हारे घर फ़ोन कर दिया है। जयंत रिसीव कर लेगा।'

'निशांत वो रोहित हमारे पड़ोस में....' आँसू पोंछते मीनल ने कहना चाहा।

'इस वक्त कुछ जानने-सुनने का मूड नहीं है। तुम अपनी पैकिंग कर लो।' मीनल को कुछ कहने का मौका दिए बिना ही निशांत चला गया।

आँसुओं के सैलाब में रोहित का मुस्कराता चेहरा साकार हो उठा। ड्राइवर ने आकर मीनल को चैतन्य किया-

'साहब ने आपको एयरपोर्ट ले जाने के लिए गाड़ी भेजी है। फ़्लाइट टाइम पर है। आपका बैग ले जाता हूँ।

'साहब नहीं आए?' मीनल पूछ बैठी।

'साहब मीटिंग में हैं, नहीं आ पाएँगे।' ड्राइवर ने शालीनता से जवाब दिया।

मीनल जान गई। निश्चय ही निशांत बेहद आहत है। काश, उसने अम्मा की बात न मान निशांत को सब कुछ बता दिया होता। विदा होती मीनल को अम्मा ने अपनी कसम दे कर कहा था-

'देख मीनू, जो होना था हो गया। अब रोहित का नाम भूल जाने में ही तेरी भलाई है। मर्द बड़े शक्की होते हैं। भूल कर भी रोहित का नाम ज़बान पर मत लाना। तुझे कसम है अपनी माँ की।'

प्लेन में बैठी मीनल के मानस में पुराने चित्र उभरते आ रहे थे।

मातृ-पितृ विहीन रोहित अपनी मेहनत और दृढ संकल्प के कारण ही यूनिवर्सिटी के कला विभाग में प्रोफ़ेसर बन सका था। चंडीगढ से आया रोहित जल्दी ही अम्मा का स्नेह-पात्र बन गया था। रोहित के लिए अम्मा के मन में ढेर सारी ममता थी। बेचारे को छुटपन से ही माँ का प्यार नसीब नहीं हुआ और अब तो उसके सिर पर बाप का भी साया नहीं रहा। अम्मा रोहित को उसका मन-पसंद खाना बना कर खिलातीं। अम्मा का प्यार पा कर रोहित का कुम्हलाया मन खिल उठा। अम्मा के सामने रोहित बच्चा बन जाता। रोहित की चित्र-कला के अलावा उसका गिटार-वादन सबको मुग्ध कर जाता। उसकी बनाई पेंटिंग्स देख, लोग वाह-वाह कर उठते। उसके गिटार की मीठी धुन पर मुहल्ला जागता था॥ अम्मा ने रोहित से कहा था-

'इस मीनू को भी कुछ गुण सिखा दे, बेटा। पराए घर गुणों की ही कदर की जाती है। आख़िर बेटी पराई अमानत ही तो ठहरी।' अम्मा ने ठंडी साँस भरी।

'रहने दो अम्मा, हमें न गुणवंती बनना है, ना पराए घर जाना है।' तुनक कर मीनल बोली थी।

'तुम तो गुणों की खान हो मीनल, पर गिटार या पेंटिंग सीखने से गुणों में और इज़ाफ़ा हो जाएगा।' रोहित की मीनल पर निबद्ध दृष्टि में न जाने क्या था कि मीनल रोमांचित हो उठी।

तीन वर्षों में रोहित मीनल के परिवार का प्रिय सदस्य बन, सबका विश्वास जीत चुका था। यह रोहित की ही ज़िद थी कि मीनल गिटार सीखने के साथ आड़ी-सीधी रेखाएँ खींच कर चित्र बनाने लगी। रोहित को गोमती से प्यार था और उसके साथ मीनल भी गोमती में नौका-विहार की दीवानी हो उठी। दोनों की शामें अक्सर गोमती के किनारे बैठ कर या नौका-विहार में ही बीततीं। रोहित के साथ मीनल को कहीं भी आने-जाने की छूट थी। किसी ने कभी नहीं सोचा दोनों युवा थे, उम्र का तकाज़ा कोई ग़लती करा सकता है। सच तो यही था रोहित के बिना मीनल का जीवन अपूर्ण था। दोनों एक-दूसरे के पूरक थे। शायद अम्मा और पापा ने मन ही मन दोनों का रिश्ता तय कर लिया था। जाड़ों की छुट्टियों में जब रोहित ने अपने कुछ विद्यार्थियों के साथ किसी सागर-तट पर पेंटिंग-कैंप करना तय किया तो मीनल अड़ गई। ज़िद कर बैठी-

'हमने कोई सी-बीच नहीं देखा है। हम भी कैंप में जाएँगे।' मीनल की ज़िद ने अम्मा-पापा को असमंजस में डाल दिया। युवा बेटी को कैंप में भेजते डर सा लग रहा था। उनके संशय को रोहित के दृढ़ शब्दों ने दूर कर दिया।

'विश्वास कीजिए, मीनल मेरे साथ आपकी अमानत की तरह रहेगी। आपका मुझ पर जो विश्वास है कभी टूटने नहीं दूँगा।'

रोहित के शब्दों ने सब का संशय दूर कर दिया। वह अब अपरिचित नहीं रह गया था। मीनल को कैंप में जाने की इजाज़त मिल गई।

सागर के गंभीर सौंदर्य ने मीनल को विस्मित कर दिया। दूर से आती सागर-लहरों का सागर-तट के वक्ष पर सिर धर कर बिखर जाना, उसे समर्पण का अभिनव रूप लगा। विद्यार्थियों को अनुशासित रहने के निर्देश देते रोहित ने हल्की मुस्कान के साथ मीनल पर दृष्टि डाली थी। उस दृष्टि ने मीनल को लाल कर दिया। विद्यार्थियों को अपने-अपने ढंग से चित्रकारी करनी थी। मीनल के लिए ना समय का बंधन था, ना सोने-जागने के कड़े नियमों का बंधन था। मीनल का हर पल एक नया सपना जीता।

भोर की उजास के पहले ही रोहित अपना ईजल, पैलेट और कैनवास ले कर निकल जाता। सागर-तट के जनशून्य भाग में बैठ कर अपनी तूलिका से रंग भरता। नींद टूटने पर मीनल थर्मस में चाय ले कर पहुँचती। रोहित के साथ सागर का सौंदर्य दुगना हो जाता।

उस दिन भी रोहित अपने चित्र में रंग भर रहा था। सी-बीच पर टहलती लिज़ा के पाँव अचानक ठिठक गए। सामने कैनवास पर उभरा दृश्य अद्भुत था। उन्मत्त युवा सागर लहरों के बीच से अपनी सबल भुजाएँ फैलाए, मंथर गति से बहती आ रही नदिया की तन्वी धारा को अपने आलिंगन-पाश में बाँधने को आतुर खड़ा था। सागर और नदी की प्रेम-कहानी लिज़ा के लिए नई नहीं थी, पर वह जीवंत चित्र, सारी कल्पनाओं को झुठलाता, जैसे एक सजीव सत्य था। पास पड़ी शिला पर लिज़ा चुपचाप बैठ गई। अपनी तन्मयता में चित्रकार को लिज़ा की उपस्थिति का तनिक सा भी भान नहीं था। लिज़ा उसकी तन्मयता भंग नहीं करना चाहती थी कि एक मीठी आवाज़ ने चौंका दिया-

'अब कुछ देर के लिए अपनी तूलिका को विराम दीजिए, चित्रकार महोदय।

देखिए गर्म चाय और सैंडविच लाई हूँ।' हाथ में थर्मस और सैंडविच का पैकेट लिए मीनल खड़ी थी।

'थैंक्स। अगर तुम न होतीं तो यह चित्रकार भूखा मर जाता।' परिहास करते रोहित की दृष्टि अचानक शिला पर बैठी लिज़ा की दृष्टि से टकरा गई।'

'हैलो, आप?' रोहित पूछ बैठा।

'मैं लिज़ा। काफ़ी देर से आपके ब्रश का कमाल देख रही हूँ। इस अद्भुत चित्र को देख कर लग रहा है, कहीं इन लहरों के बीच से कोई ऐसा सुदर्शन युवक सचमुच ना उठ खड़ा हो।' हँसती लिज़ा ने कहा।

'थैंक्स फ़ॉर योर कॉम्प्लिमेंट्। बस शौकिया ब्रश चला लेता हूँ। आइए, इसी बात पर एक कप चाय हो जाए। क्यों मीनू, हमारे मेहमान को भी चाय मिलेगी?'

'ज़रूर, तुम्हारे हिस्से की चाय तो दे ही सकती हूँ। ठीक है ना?' शैतानी से मीनल बोली।

'लिज़ा, यह मीनल, मेरी सखी, मेरा प्रेम, मेरी प्रेरणा, मेरी सब कुछ है। ज़िद कर के मेरे साथ आई है ताकि मुझे डिस्टर्ब कर सके।'

'अच्छा, हम तुम्हें डिस्टर्ब करते हैं। अभी तो कह रहे थे हम ना होते तो तुम भूखे मर जाते। अगर ऐसा ही था तो अपने साथ लाने की इजाज़त क्यों ली?' मान भरे सुर में मीनल ने कहा।

'माफ़ करो, ग़लती हो गई। अरे तुम्हारे बिना तो रोहित का अस्तित्व ही नहीं है। हाँ पहले लिज़ा से परिचय तो कर लें।'

चाय का सिप लेती लिज़ा बताती गई। स्कूल -टीचर लिज़ा हर साल नार्वे से जाड़ों में इसी सी-बीच पर आती है। यहाँ रह कर काफ़ी हिन्दी भी सीख चुकी है। चित्रकला से उसे बहुत प्यार है। नार्वे में आयोजित होने वाली पेंटिंग-एग्ज़िबिशन्ज़ में वह भी सहयोग देती है। रोहित का आज का चित्र देख कर वह अभिभूत है। उसके और चित्र देखना उसका सौभाग्य होगा।

'यहाँ तो रोहित के बस दो-चार चित्र ही देख सकेंगी। हमारे साथ लखनऊ चलिए, घर की हर दीवार पर रोहित के बनाए चित्र लगे हैं।' उत्साहित मीनल ने

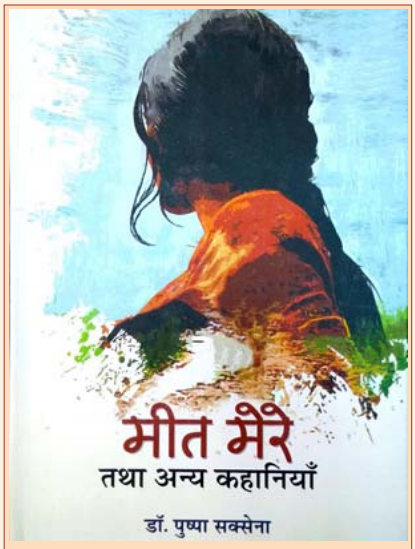

पुस्तक : मीत मेरे तथा अन्य कहानियाँ
प्रकाशक : साहित्य भंडार प्रकाशक, विभा प्रकाशन, 50 चाहचंद, इलाहाबाद -211003
मूल्य : हार्ड कवर- 250 /- पेपर बैक- 50/-

लिज़ा को निमंत्रण दे डाला।

'इंवीटेशन के लिए थैंक्स्। अगर एतराज़ ना हो तो वही दो-चार चित्र देखने आ जाऊँ।' लिज़ा ने इजाज़त चाही।

'ज़रूर आपका स्वागत है। बस यहाँ से थोड़ी दूर पर सनशाइन मोटेल में अपने विद्यार्थियों के साथ ठहरा हूँ।'

'रोहित को भीड़-भाड़ पसंद नहीं इसलिए यह मोटेल चुना है।' मीनल ने जानकारी दी।

'असल में रोमांस के लिए एकांत चाहिए, इसीलिए मैंने एकांतवास चुना है। ठीक कहा न मीनू?' शरारती हँसी से रोहित का चेहरा और भी दर्शनीय हो उठा। लिज़ा मुग्ध देखती रह गई।

'छि:। सबके सामने ऐसे मज़ाक करते शर्म नहीं आती।' मीनल ने नाराज़गी से कहा।

'अरे यहाँ सब कौन हैं? यहाँ तो बस लिज़ा हैं और इनके देश में प्यार का इज़हार चोरी-छिपे नहीं, सबके सामने किस, मेरा मतलब चुंबन कर के किया जाता है। क्यों लिज़ा ठीक कहा ना?' परिहास से रोहित का चेहरा चमक रहा था।

'ठीक कहते हैं। वैसे आप दोनों मैरिड तो नहीं लगते।' कुछ संशय से लिज़ा ने जानना चाहा।

'जी हाँ, अभी हमारी शादी नहीं हुई है, पर उसी की प्रतीक्षा है।' मीनल पर दृष्टि डाल रोहित ने कहा।

'शादी नहीं हुई, पर आप दोनों साथ रह रहे हैं। आपके परिवार वालों को ऑब्जेक्शन नहीं है? मैंने तो सुना था, यहाँ इतनी आज़ादी नहीं दी जाती।'

'ठीक सुना है, पर मेरा और मीनल का जो रिश्ता है, उसकी पवित्रता पर हमारे घरवालों को पूरा विश्वास है।'

सुबह के सूरज की रक्तिम आभा से रंजित आकाश में अब सुनहरी किरणें बिखरने लगी थीं। सैलानी लहरों पर तैरने आने लगे थे। रोहित ने चित्रकारी बंद कर अपना सामान समेटना शुरू कर दिया। शाम को मिलने का वादा कर, लिज़ा ने विदा ली।

'लिज़ा के सामने खूब फ़्लर्ट कर रहे थे। कहीं उसे इम्प्रेस तो नहीं कर रहे थे?' मोटेल पहुँचते ही मीनल चालू हो गई।

'शायद ठीक समझीं। फ़ेअर काम्प्लेक्शन तो मेरी वीकनेस रही है।' रोहित ने बनावटी गंभीरता से कहा।

'तो उसी के साथ शादी कर लेना। हमें पूरी ज़िंदगी यह नहीं सुनना है कि हमारा रंग गोरा नहीं है।' मीनल ने चिढ़ कर कहा।

'अरे बाबा, नाराज़ मत हो। तुम्हारे साँवले रंग में जो नमकीन चार्म है, वह गोरी चमड़ी में कहाँ ? तुम्हारे सामने तो स्वर्ग की अप्सरा भी कम है। ग़लती के लिए कान पकड़ता हूँ।'

रोहित के उस अंदाज़ पर मीनल हँस पड़ी।

लिज़ा के साथ उनकी वो शाम बहुत अच्छी बीती। रोहित का हर चित्र लिज़ा को विस्मित करता गया। अपने कैमरे से रोहित के चित्रों की तस्वीर उतारती लिज़ा ने कहा-

'नार्वे में अक्टूबर के शुरू में एक अंतर्राष्ट्रीय एग्ज़िबिशन होने जा रही है, अगर तुम्हारी परमीशनन हो तो तुम्हारी पेंटिंग्स की एंट्रीज़ फ़ोटो के माध्यम से दे दूँ।

'मुझे खुशी है तुम्हें मेरी पेंटिंग्स पसंद आईं, पर क्या ये पेंटिंग्स उस एग्ज़िबिशन में एंट्री लायक हैं? रोहित ने शांति से कहा।

'तुम नहीं जानते, तुम कितने बड़े कलाकार हो, रोहित। मुझे विश्वास है,

तुम्हारी पेंटिंग्स ज़रूर चुनी जाएँगी।'

'थैंक्स, लिज़ा। मैं सपने नहीं देखता। मैं कोई महान् कलाकार नहीं हूँ। वैसे भी नार्वे आने-जाने के साधन मेरे पास नहीं हैं।' हल्की उदासी रोहित के चेहरे पर उतर आई।

'उसके लिए चिंता की ज़रूरत नहीं है, रोहित। जिन कलाकारों के चित्र चुने जाएँगे, उनके आने-जाने और रहने की व्यवस्था का उत्तरदायित्व आयोजकों का होगा।'

'अगर ऐसा हुआ तो हम भी साथ चलेंगे। हमें ले चलोगे न, रोहित?' मीनल ने चहक कर कहा।

'अभी से ख़याली पुलाव मत पकाइए, मीनल जी। मैं सपने नहीं देखता।'

'शायद इस बार आपके सपने सच हो जाएँ। मेरा विश्वास झूठा नहीं हो सकता।' दृढ़ स्वर में लिज़ा ने कहा।

लिज़ा के वापस नार्वे लौटने के पहले, उसके अनुरोध पर रोहित ने सागर वाला चित्र पूरा कर दिया। रोहित के सभी चित्रों को कैमरे में कैद कर, लिज़ा चली गई। मीनल को लिज़ा की कमी महसूस होने लगी। सच्चाई से बोली..

'लिज़ा विदेशी है, पर उसका स्वभाव कितना मीठा है। कुछ ही समय में कितनी अपनी सी लगने लगी।'

'वाह! कमाल है, आज पहली बार किसी और लड़की की तारीफ़ तुम्हारे मुँह से सुन रहा हूँ।' रोहित ने चिढ़ाया।

'क्यों, क्या हम किसी और की तारीफ़ नहीं कर सकते?' मीनल ने नाराज़गी से कहा।

'बिल्कुल सही फ़र्माया। याद है, जब तुम्हारी सहेली मोना ने मुझसे पेंटिंग सीखनी चाही तो तुमने उसकी हज़ार कमियाँ गिना डालीं। अंततः उसे पेंटिग सीखने नहीं आने दिया। मेरा तो एक स्टूडेंट चला गया। नुक्सान तो मेरा हुआ न।' रोहित ने परिहास किया।

'वो तो इसलिए कि उसकी पेंटिंग में कतई रुचि नहीं थी। वह तो तुम्हें इम्प्रेस करना चाहती थी। वैसे भी मोना अच्छी लड़की नहीं थी।'

'मान गए आपकी पारखी नज़र काबिले तारीफ़ है। मुझे बचा कर आपने मुझ पर बड़ा एहसान किया है। इस एहसान को तो इस जीवन में नहीं चुका सकूँगा।' रोहित की हँसी पर मीनल चिढ़ गई।

'जाओ हम तुम से बात नहीं करेंगे।,

'ऐसा ग़ज़ब मत करना, हम तो जीते जी मर जाएँगे।'

'रोहित, तुम मरने की बात कभी भी मुँह से मत निकालना वर्ना....' मीनल की आँखें भर आईं, गला रुंध गया।

लखनऊ में पुरानी दिनचर्या के साथ लिज़ा से फ़ोन पर बातें होती रहतीं। मीनल उत्सुकता के साथ रोहित की पेंटिंग्स चुनी जाने की सूचना की प्रतीक्षा कर रही थी। अंततः एक दिन वह अप्रत्याशित खुशखबरी आ ही गई। रोहित के चित्र प्रदर्शनी के लिए चुन लिए गए थे। लिज़ा ने बताया था, रोहित के अस्थाई वीज़ा और और टिकट का प्रबंध शीघ्र ही किया जाएगा। रोहित के जाने की बात ने मीनल को उदास कर दिया। उसकी उदासी पर रोहित ने तसल्ली दी थी-

'घबराओ नहीं, बस एक महीने की ही तो बात है। शादी के बाद तुम्हें पूरी दुनिया की सैर कराऊँगा। अपना पासपोर्ट बनवा लो, मीनल।' मीनल की आँखों में सपने तैरने लगे। जबरन होठों पर मुस्कान ला कर, मीनल ने रोहित को विदा किया था।

जिस दिन रोहित ने अपनी पेंटिंग सर्वश्रेष्ठ घोषित किए जाने की सूचना दी, मीनल ने सारे मुहल्ले वालों को मिठाई खिला, भगवान् के आगे सिर नवाया था। रोहित ने एक और अच्छी ख़बर दी थी।

उसके बनाए चित्र देख कर, यूनीवर्सिटी के फ़ाइन आर्ट्स-डिपार्टमेंट के अध्यक्ष ने उसे जॉब ऑफ़र किया था। रोहित के पास स्थाई वीज़ा नहीं था, जिसके बिना उसकी नियुक्ति नहीं हो सकती थी। लिज़ा की राय थी, इस सुनहरे अवसर को खोना ठीक नहीं होगा। यह अवसर रोहित का भविष्य बना देगा। भारी वेतन उसके सारे सपने पूरे कर देगा। नार्वे में उम्मीदवारों की कमी नहीं है। लिज़ा ने एक तरीका सुझाया था, अगर रोहित सिर्फ़ नाम भर के लिए लिज़ा से विवाह कर ले तो रोहित को शीघ्र ही स्थायी वीज़ा मिल जाएगा। वीज़ा मिलते ही दोनों तलाक ले लेंगे। लिज़ा के सुझाव ने रोहित को असमंजस में डाल दिया। एक ओर सुनहरा भविष्य लालायित कर रहा था, दूसरी ओर लिज़ा के साथ विवाह की बात गले से नीचे नहीं उतर रही थी। लिज़ा के साथ विवाह की शर्त मानना कठिन ही नहीं असंभव जैसा था। लिज़ा के सुझाव पर रोहित ने फ़ैसला मीनल पर छोड़ दिया। अगर उसे यह शर्त मंज़ूर नहीं, तो रोहित तुरंत वापस आने को तैयार था। लिज़ा ने रोहित को कई ऐसे लोगों से मिलाया, जिन्होंने स्थाई वीज़ा पाने के लिए किसी नार्वे की नागरिक स्त्री से विवाह किया और वीज़ा मिल जाने पर तलाक ले लिया।

रोहित ने मीनल से कहा था-

'अगर तुम्हें मुझ पर विश्वास है, तो लिज़ा के साथ बस नाम भर के लिए विवाह करने के लिए अपनी स्वीकृति देना। तुम पर कोई दवाब नहीं है। तुम्हारी नामंज़ूरी भी मुझे खुशी-खुशी मंज़ूर है। एक बात ज़रूर याद रखना, घर में किसी को इस बारे में कोई खबर नहीं होनी चाहिए। यह बात बस हम दोनों के बीच ही रहनी चाहिए। तुम जानती हो मैं तुम्हें कितना प्यार करता हूँ। यहाँ जॉब लेने से तुम्हारे सपने सच कर सकता हूँ, मीनल। सोच-समझ कर निर्णय लेना, तुम्हारा फ़ैसला मुझे मंज़ूर होगा।'

मीनल गहरे सोच में पड़ गई। उसकी हाँ का मतलब, चाहें नाम के लिए ही सही, पर कुछेक दिनों के लिए रोहित को लिज़ा के हाथों सौंपना होगा। ना कहने का अर्थ दोनों के स्वर्णिम भविष्य को ख़त्म कर देना था। बेचैनी ने मीनल को कई रातें सोने नहीं दिया। अंततः उसके भय पर रोहित के प्रति विश्वास ने विजय पाई। रोहित को अपनी स्वीकृति देती मीनल ने उसके साथ बेवफ़ाई ना करने के लिए अपनी कसम दे डाली।

एक-दो महीनों की जगह पूरे दो वर्ष बीत गए। रोहित नहीं लौटा। उसकी व्यस्तता इतनी बढ़ गई थी कि अब फ़ोन करने पर रोहित की जगह लिज़ा ही होती। उसका हमेशा एक ही जवाब होता, रोहित को बहुत बड़े-बड़े असाइंमेंट्स मिले हैं वह बहुत बिज़ी है। मीनल के भेजे पत्र वापस आ जाते। अम्मा झुँझलातीं-

'लगता है उस विदेशिनी ने रोहित पर जादू कर दिया है। उसकी कैद में है हमारा रोहित। यह भी कोई बात हुई, ना फ़ोन पर बात करता है, ना तेरे खतों के जवाब देता है। अब उसका इंतज़ार बेकार है।'

रात-रात भर जाग कर रोती मीनल ने उसी दुख में एम.ए. पूरा कर लिया। अम्मा को उसकी शादी की चिंता खाए जाती, पर मीनल शादी के लिए तैयार ही नहीं होती। आख़िर अम्मा की भूख-हड़ताल के आगे मीनल हार गई। उसे हाँ करनी ही पड़ी। मीनल के सपने टूट चुके थे। आशा दामन छोड़ गई थी। निशांत जैसे योग्य, समझदार लड़के के साथ मीनल का विवाह, अम्मा ने अपना सौभाग्य माना था।

रोहित के नाम को सीने में दफ़्न कर, मीनल ने निशांत के साथ नई ज़िंदगी शुरू की थी। शादी के बाद निशांत ने मीनल को कभी शिकायत का मौका नहीं दिया था। रोहित की याद जब भी टीस सी उठती, मीनल उसे जबरन दबा देती। अम्मा ने समझाया था, उस अतीत को भुला देने में ही समझदारी है जिसका कोई अस्तित्व ही न हो।

आज तो उस अतीत से परदा उठ गया था। ना जाने निशांत पर क्या बीते? पता नहीं अब ज़िंदगी कौन सा मोड़ लेगी। घर पहुँचती मीनल का दिल धड़क रहा था, ना जाने क्या होने वाला है।

सारी बात सुन अम्मा गंभीर हो आईं।

'तूने ग़लती की है। तुझे नहीं आना चाहिए था। रोहित तेरा अतीत था, उसे अपने आज से क्यों जोड़ बैठी, मीनू?'

'हम क्या करते अम्मा, हमारे कुछ कहने के पहले ही निशांत ने यहाँ के लिए हमारी फ़्लाइट बुक करा दी।' मीनल रो पड़ी।

'मुझे तो डर है तेरी इस ग़लती के बदले कहीं तेरा उस घर से हमेशा के लिए नाता ही ना टूट जाए। किसके अंतिम संस्कार के लिए आई है? जिसने तेरे साथ सारे नाते तोड़ दिए, उसके साथ कौन सा रिश्ता निभाने आई है? तू उसके अंतिम संस्कार के लिए नहीं जाएगी, मीनू।' अम्मा ने दृढ़ शब्दों में फ़ैसला सुना दिया।

'नहीं अम्मा, हम जाएँगे। उसकी अंतिम इच्छा हमें पूरी करनी ही होगी।' बात कहती मीनल रो पड़ी।

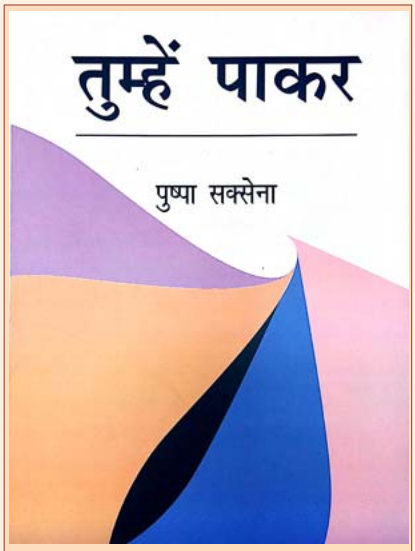

पुस्तक: तुम्हें पाकर (कहानी-संग्रह)
सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन, एन 77 कनाट सर्कस, पहली मंजिल, नई दिल्ली 110001
मूल्य: 250 रुपये, पेपर बैक: 130 रुपये

'ठीक है, मुझे जो कहना था, कह दिया। आगे अपने भले-बुरे के लिए तू ज़िम्मेदार है।' अम्मा ने नाराज़गी से कहा।

गोमती के किनारे की वह शाम बेहद उदास और सूनी थी। यही नदी रोहित के साथ कितनी जीवंत हुआ करती थी। उदास खड़ी लिज़ा के पास पहुँचते ही मीनल की आँखों से आँसू बह निकले। ताबूत में बंद रोहित की कल्पना ने मीनल को सिहरा दिया।

'आई एम सॉरी, मीनल। तुम्हारे रोहित को तुम तक जीवित नहीं पहुँचा सकी।' आगे बढ़ कर मीनल का हाथ थाम, लिज़ा ने उदास स्वर में कहा।

'मेरा रोहित? नहीं लिज़ा। रोहित को तो मैं बहुत पहले ही खो चुकी।'

'नहीं, मीनल। रोहित हमेशा तुम्हारा ही रहा। रोहित के प्यार में पड़ कर मैं सही-ग़लत भुला बैठी। रोहित को पाने की नाकाम कोशिश करती रही, पर वह कभी मेरा नहीं हो सका। आख़िर रोहित को हमेशा के लिए खो दिया।' लिज़ा की आँखें नम थीं।

रोहित की मृत देह पंडित जी द्वारा अग्नि को समर्पित कर दी गई। आँसू पोंछती मीनल को लिज़ा ने एक बंद लिफ़ाफ़ा थमा कर कहा-

'इस पत्र को शांत मन से पढ़ना। कुछ दिन पहले रोहित ने लिखा था। तुम तक पहुँचाने की ज़िम्मेदारी मुझे सौंपी थी। रोहित की बनाई आख़िरी पेंटिंग होटल में छोड़ आई हूँ। वह पेंटिंग तुम होटल से ले जाओगी या मैं तुम्हारे घर पहुँचा दूँ? तुम्हारे यहाँ आने से रोहित की आत्मा को ज़रूर शांति मिली होगी। यहाँ आने के लिए थैंक्स, मीनल।'

'मुझे पेंटिंग नहीं चाहिए। वह तुम्हीं रख लो। रोहित से जुड़ी कोई भी चीज़ मैं नहीं ले सकती।'

'ठीक है। उस स्थिति में मैं वह पेंटिंग यहाँ आर्ट-सेंटर में दे जाऊँगी, पर एक बार उस पेंटिंग को देख ज़रूर लेना मीनल, यह मेरी रिक्वेस्ट है।'

'अपने मन की कर आई। अपना बसा-बसाया घर तोड़ने की क्या तूने कसम खाई है, मीनू?' घर लौटी मीनल को माँ ने आड़े हाथों लिया था।

माँ की बातें अनसुनी कर, मीनल ने अपने को कमरे में बंद कर लिया। शादी के बाद भी घर की इकलौती बेटी मीनल का कमरा उसी के नाम पर था। धड़कते दिल से लिज़ा का दिया लिफ़ाफ़ा खोला था। खत में लिखा था-

मीनल,

तुम्हें मेरी मीनल कहने का अधिकार तो खो चुका हूँ। एक भूल ने जीवन ही बदल डाला। अपने को सज़ा देते यह भूल गया कि मेरे अपराध का परिणाम तुम्हें भी भोगना पड़ेगा। तुम्हारी पीड़ा पूरी तरह से महसूस की है मैंने--जिस दिन मेरी पेंटिंग को सर्वश्रेष्ठ घोषित किया गया, तुम बहुत याद आईं। अपनी हर खुशी को तुम्हारे चेहरे पर पढ़ता रहा हूँ। कितनी खुश होतीं तुम। यूनीवर्सिटी का जॉब पाने के मोह में लिज़ा के साथ तुरंत शादी ज़रूरी थी। तुमसे पूरी दुनिया की सैर कराने का जो वादा किया था, वो जॉब मिलने पर ही पूरा कर सकता था।

लिज़ा ने मेरे पुरस्कार और शादी की पार्टी एक साथ ही आयोजित की थी। खुशी के उस माहौल में ड्रिंक्स ना लेने की मेरी

मनाही नकार दी गई। काश, मैने ड्रिंक्स ना लीं होतीं। सबने ज़ोर दिया दोहरी खुशी सेलीब्रेट करनी ही होगी। ना जाने कितने पेग जबरन गले से उतरवा दिए गए। सफ़लता का उन्माद नशे के साथ चढ़ चुका था। उसी रात जब लिज़ा मुझसे चिपटी, मैं बह गया और अनजाने ही तुम्हारे साथ विश्वासघात कर बैठा। तुमने बेवफ़ाई ना करने की अपनी कसम दी थी। तुम्हारी कसम तोड़ कर तुम्हारा सामना कैसे कर सकता था, मीनू?

सुबह नशा उतरने पर अपने आप से नफ़रत हो गई। उसी रात तुम्हें हमेशा के लिए खो दिया। अपने लिए अकेलेपन की सज़ा तभी तय कर ली। लिज़ा को भी अपना फ़ैसला सुना दिया। उसके साथ की गई नाम की शादी से भी उसे आज़ाद कर दिया। लिज़ा की ज़िद की वजह से स्थायी वीसा ले कर यहीं का हो कर रह गया वर्ना मैं किसी अज्ञात स्थान पर जाना चाहता था। भारत लौटने पर तुम्हें सामने पा कर क्या मैं अपनी सज़ा काट पाता? लिज़ा ने जितना ही पास आना चाहा, मैं उससे उतना ही दूर होता गया। हाँ, तुमसे बात करने का माध्यम उसे ही बनाया था। सब कुछ भुलाने के लिए शराब का सहारा भी बेकार रहा। अपनी हर पेंटिंग में ज़हरीले उदास रंग भरता गया।

तुम्हारी शादी की ख़बर ने रात भर सोने नहीं दिया, पर गुनहगार तो मैं ही था। शराब ने अपना असर दिखा दिया है। डॉक्टर ने बताया है मेरा लिवर डैमेज हो चुका है। शायद दो-चार महीने और साँस ले सकूँ, पर वह नहीं जानता मेरी साँसें तो तुमसे अलग हो कर पहले ही बंद हो चुकी हैं। मैं जो कभी उमड़ता-उफ़नता सागर हुआ करता था, अब बर्फ़ के सागर में दफ़्न हो चुका हूँ। मेरी अंतिम पेंटिंग तुम्हारी शादी के लिए मेरा अंतिम उपहार है। पेंटिंग में खुशी के रंग भरने की कोशिश की थी, पर शायद मेरे अंतर के उदास रंगों ने, पेंटिंग को उदास बना डाला। शायद तुम्हें मेरी जीवंत पेंटिंग्स की जगह यह उदास पेंटिंग पसंद ना आए, पर यह मेरी अंतिम पेंटिंग और आख़िरी तोहफ़ा है। तुम्हें दिया वादा पूरा ना कर सकने का अपराधी हूँ। माफ़ी का हकदार तो नहीं, पर क्या मुझे माफ़ कर सकोगी, मीनल?

रोहित

मीनल की आँखों से आँसू झरते गए। नशे में हुई एक भूल के के लिए रोहित ने अपने को इतनी बड़ी सज़ा दे डाली। अगर उसने मीनल को सचाई बता दी होती तो क्या मीनल उसे माफ़ ना कर देती? मीनल सोच में पड़ गई, क्या सचमुच कोई पुरुष इतना भावुक और संवेदनशील हो सकता है? शायद नहीं, पर रोहित का यही सत्य था। रोहित कोई सामान्य पुरुष नही, मीनल का अद्वितीय रोहित था। कितनी ही बार रोहित के इस सत्य और दृढ़ता से, मीनल का साक्षात्कार हुआ था। मीनल के सोच के बीच एक और सत्य पूरी तरह से उजागर था, क्या भूल सिर्फ़ रोहित से ही हुई थी? मीनल भी तो इस भूल के लिए ज़िम्मेदार थी। विदेश जाने की ललक उस पर इस कदर हावी थी कि आगा-पीछा कुछ नहीं सोच सकी। अपने सबसे अनमोल और प्रिय पात्र रोहित को दूसरी स्त्री को सौंपते, वह ज़रा नहीं हिचकी। अपनी दुनिया उसने खुद उजाड़ी है। रोहित का वह अंतिम उपहार, वह पेंटिंग उसे लानी ही होगी। आँसू पोंछ मीनल उठ खड़ी हुई।

बाहर जाती मीनल को देख माँ चौंक गई। 'अब कहाँ जा रही है? क्या करने पर तुली है मीनल?' माँ के स्वर में आक्रोश था।

'लिज़ा के पास से अपनी एक चीज़ लानी है।'

'देख मीनू, बचपना मत कर। रोहित की कोई निशानी लाने की ग़लती मत करना। निशांत तुझे कभी माफ़ नहीं करेगा। पहले ही क्या कम कर गुज़री है। क्यों अपनी हरी-भरी ज़िंदगी उजाड़ने पर तुली है।'

'डरो मत अम्मा। हम निशांत को अच्छी तरह से जानते हैं। उनका दिल बहुत बड़ा है। वह हमें ज़रूर माफ़ कर देंगे। अगर हमने रोहित का अंतिम उपहार स्वीकार नहीं किया तो निशांत ज़रूर नाराज़ होंगे। रोहित की आख़िरी इच्छा हमें पूरी करनी ही होगी।'

माँ को अवाक् छोड़ मीनल के कदम लिज़ा के होटल की ओर बढ़ चले थे।

****

ग़ज़ल

प्रदीप कांत

आइना हूँ, क्या बताऊँ
आ तेरा चेहरा दिखाऊँ
रोशनी चारों तरफ है
किस तरफ साया दिखाऊँ
चाहता है वो मुझी से
जो निभाऊँ, मैं निभाऊँ
बाद मुददत तू मिला है
क्या छुपाऊँ, क्या बताऊँ
मानता हूँ, ख़्वाब तू है
कब तलक तुझको बचाऊँ

***

किसने कहा पराया था
मैं तेरा ही साया था
कोई हमसे पौन रहा था
कोई ज़रा सवाया था
पर्बत का क्या बिगड़ा था?
बादल जब टकराया था
तुमने सच ही मान लिया
हमने जी बहलाया था
सूरज की गर्मी के क़िस्से
चाँद सुनाने आया था

****

सुन लिये जितने बहुत
हैं बचे क़िस्से बहुत
और करता चाँद क्या
बढ़ गया घट के बहुत
अब समन्दर कर इन्हें
हो गए क़तरे बहुत
हम जहाँ बोले वहीं
आपको खटके बहुत
सच अकेला ही रहा
झूठ को तमगे बहुत
हम अकेले हैं कहाँ
हैं अभी अपने बहुत

****

24, सत्यमित्र राजलक्ष्मी नेचर, सूर्य मंदिर के पास, केट- राऊ रोड़, इंदौर - 453 331 फ़ोन - 094074 23354
ईमेल : kantv008@rediffmail.com

स्वाभिमान की ख़ुशी

संजय कुमार

शाम का समय था। बच्चे सड़कों पर खेल रहे थे। कोई पहिया घुमा रहा था, कोई साइकिल चला रहा था, कोई गुल्ली डंडा खेल रहा था, तो कोई पंतग उड़ने में व्यस्त था। सब मज़े कर रहे थे। मैं अपने घर में बैठा था और प्रसाद जी की एक कहानी पढ़ रहा था। कहानी समाप्त होने को आई थी कि मेरे कानों में आवाज़ पड़ी 'सब्जी ले लो सब्जी'।

यों तो इस तरह की आवाज़ें तरकारी वाले प्राय: लगाते थे, लेकिन यह आवाज़ कुछ अलग थी। मैं किताब छोड़कर नीचे आ गया और इस आवाज़ के मालिक को तलाशने लगा। मेरी नज़र सामने पड़ी। एक छोटा बालक तरकारी का ठेला धकाते हुए मेरी ओर बढ़ रहा था। बीच-बीच में चिल्लाता जाता 'सब्जी ले लो सब्जी'। उसकी उमर बारह या तेरह बरस से ज़्यादा न लगती थी। लड़का देखने में बहुत सुन्दर था। उसके चेहरे से मासूमियत टपक रही थी। उसे देखकर मेरे मन में अनगिनत सवाल नाग की तरह फन फैलाने लगे। वह अभी इतना छोटा था कि ठेलागाड़ी उससे धक भी न पाती थी। उसे धकाने के लिए वह अपनी पूरी ताकत झोंक देता था। जब लड़के को ठेलागाड़ी मोड़नी होती थी तो वह उसे उठाने के लिए पूरा झुक जाता था और अपने शरीर को पूरी तरह झोंक देता था।

वह मेरे पास आ गया और मेरे सामने ही आवाज़ लगाने लगा। उसके बदन पर एक बहुत ही पतली सी सूती बुशर्ट पड़ी थी। जिसमें कई छेद हो रहे थे और कुछ बटनों की जगह धागों ने ले रखी थी। उसकी पतलून बहुत मैली थी और जो पीछे से उधड़ी हुई थी। जब वह ठेला धकाता था तो उसके कूल्हें पतलून के उधड़े हुए छेद में से झाँकते थे। जब मैंने उसके पैरों पर नज़र डाली तो देखा कि उसकी चप्पल बहुत ही छोटी थी। लड़के की ऐड़ी चप्पल से बाहर निकल जाती थी। उसकी चप्पल गल चुकी थी और उनमें छेद पड़ गए थे। धूल मिट्टी और पानी उन छेदों से पार निकल जाता होगा। फिर वह ठेला धकाता हुआ मेरे सामने से निकल गया। कुछ समय तक तो मैं उसे देखता रहा और फिर वह मेरी आँखों से ओझल हो गया।

लेकिन वह लड़का मेरे मन में बस चुका था। दरअसल उस लड़के को देखकर मुझे भी अपने बचपन के दिन याद आ गए थे। क्योंकि मैं भी चौदह साल की उम्र में ठेला धका चुका था। उस लड़के में मुझे अपना बचपन नज़र आने लगा था और मैं आसानी से उसकी मानसिक स्थिति को समझ सकता था। अगले दिन मैं उस लड़के का इंतज़ार करने लगा। कुछ देर बाद वह आता दिखा और मेरे सामने आकर रुक गया।

उसने मेरी ओर देखा और मासूमियत भरी आवाज़ में पूछा, बाबूजी कुछ चाहिए क्या?

मुझे सब्ज़ी नहीं लेनी थी, लेकिन फिर भी मैंने हाँ कर दी और मुझे उससे बात करने का मौका मिल गया।

मैंने पूछा, तुम इतनी कम उमर में काम क्यों करते हो?

लड़के ने सीधे जवाब दिया, मेरे बाबा मर गए इसलिए।

मैंने दु:ख की भावना प्रकट करते हुए पूछा, तुम्हारी माँ कहाँ है?

भोपाल, मध्यप्रदेश के संजय कुमार कंप्यूटर एप्लीकेशन में परास्नातक हैं। आई.टी. मैनेजर, सिस्टम एवं नेटवर्क एडमिनिस्ट्रेटर के पद पर कार्यरत संजय जी की पत्र-पत्रिकाओं तथा वेब पर कुछ रचनाएँ प्रकाशित।
s_kumar61371@yahoo.co.in

लड़का बोला, मेरी माँ बीमार रहती है वह कुछ काम नहीं कर सकती। इसलिए मैं काम करता हूँ।

इतना कहकर लड़का बोला बाबूजी अब मैं चलता हूँ, नहीं तो देर हो जाएगी। मैंने उससे बिना कोई मोल भाव किए ही कुछ सब्जियाँ ले लीं और वह चला गया।

इस खेलने-कूदने की उम्र में वह परिपक्व हो गया था और भला-बुरा सब जानता था। जिस उम्र में बच्चे पाँच किलो भार भी न उठा पाते वह लड़का पचास किलो का ठेला धकाता था। उस बालक को आवश्यकता ने कितना मज़बूत और चतुर बना दिया था। मेरे मन में उस बालक के प्रति साहनुभूति ने जन्म ले लिया था और मैंने मन ही मन उसे अपना मित्र मान लिया था।

मैं हर दिन उससे बिना मोल भाव के सब्जियाँ खरीदने लगा। एक दिन मैं किसी काम से बाहर चला गया और शाम को उस लड़के से न मिल सका। जब मैं रात को घर लौट रहा था कि मेरी नज़र उस लड़के पर पड़ी, वह सड़क के किनारे सिर झुकाकर दुखी अवस्था में बैठा था।

मैंने पूछा, क्या हुआ?

लड़के ने बहुत धीमी आवाज़ में बोला, बाबूजी आज सब्जी न बिकी।

मैंने कहा, कोई बात नहीं कल बिक जाएगी।

लड़का बोला, अगर आज पैसे न मिले तो मैं माँ की दवा न खरीद सकूँगा।

मैंने इतना सुना और अपने बटुए से सौ-सौ के दो नोट निकालकर उसे देने लगा। लड़का स्वभिमान के साथ बोला -'मैं भीख नहीं लेता बाबूजी'। उसके ये बोलते ही मुझे अपनी भूल का एहसास हो गया और मैं अपने घर चला गया। घर से होकर मैं वापस लड़के के पास गया। वह अभी भी वहीं बैठा था और प्रतीक्षा कर रहा था कि कोई उससे कुछ खरीद ले। मुझे फिर से देखकर लड़का खड़ा हो गया और मैंने कहा कि घर में सब्जी नहीं है कुछ दे दो। ये शब्द सुनते ही लड़के के चेहरे पर मुस्कान आ गई। मैंने एक बहुत बड़ा झोला निकाला और उसमें सब्जी भरने लगा कुछ ही समय में झोला भर गया। फिर मैंने लड़के से पूछा कितने पैसे हुए? वह कुछ बोल न सका और उसकी आँखों से आँसू निकल आए। वह मेरी चाल को समझ गया था। उसे रोता देख मैंने उसे चुप किया और फिर पूछा कितने पैसे? इस बार लड़के ने कहा बाबूजी तीन सौ चालीस रुपये हुए। मैंने उसे पैसे दिए और कहा कि अब तुम्हारा थोड़ा ही माल बचा है। अब तुम घर जाओ। लड़का मुझे धन्यवाद बोलकर चला गया और मैं भी खुशी-खुशी अपने घर आ गया।

इसी तरह समय बीतता गया और लड़का मुझसे घुल मिल गया। मैं उससे रोज़ सब्ज़ी ले लेता था और मेरी माँ मुझ पर चिल्लाती कि तुम्हें भी सब्ज़ी की दुकान लगानी है क्या? जो हर दिन झोला भर सब्ज़ी ले लेते हो।

एक शाम मैं लड़के का इंतज़ार कर रहा था। रात होने को आई थी। पर वह न आया था। दूसरे दिन भी लड़का नहीं आया। इसी तरह चार दिन बीत गये। मेरे मन में अनगिनत बुरे विचार आने लगे। मैंने फैसला किया कि मैं लड़के को खोजूँगा। लेकिन कैसे? मैंने तो उससे आज तक उसका नाम भी न पूछा था और वह कहाँ रहता है? ये पूछना तो मेरे लिये दूर की बात थी। फिर भी मैं निकल पड़ा उसे खोजने के लिए। पहले तो मैं उस नुक्कड़ पर गया। जहाँ वह रात को खड़ा होता था। मैंने कुछ दूसरे सब्जी वालों से पूछा तो सब ने कहा कि साब वह तो तीन चार दिनों से आया ही नहीं। मैंने एक से पूछा कि वह कहाँ रहता है? कुछ पता है? उन्होंने न में सिर हिलाया। मुझे निराशा हाथ लगी और मैं घर आ गया। मैं घर में सोच की मुद्रा में बैठा था।

माँ ने पूछा, क्या हुआ?

मैंने कहा, कुछ नहीं।

माँ ने कहा, मुझे पता है कि वह लड़का कहाँ रहता है।

ये सुनते ही मैं उठ खड़ा हुआ। लेकिन माँ को ये कैसा पता चला कि मैं उस लड़के के लिए परेशान हूँ। महात्माओं ने सत्य ही कहा है कि माँ सर्वोपरि है। वह पुत्र की आँखों में देखकर उसकी बात समझ सकती है। मैंने झट से माँ से लड़के का पता लिया और लड़के की घर की ओर लपका। कुछ देर की मेहनत के बाद मैं उसके घर पहुँच ही गया। लड़के के पास घर के नाम पर मात्र टपरिया थी। घास-फूस से बनी हुई जैसी गाँवों में बनी होती है। लड़का मुझे बाहर ही दिख गया मुझे देखकर वह चौंक गया।

पूछने लगा, बाबूजी आप यहाँ क्या कर कर रहे हैं?

मैंने उत्तर दिया, तुमसे मिलने आया हूँ।

मैंने पूछा, तुम कुछ दिनों से आए क्यों नहीं?

लड़का बोला, बाबूजी माँ बहुत बीमार है।

मैंने पूछा, कहाँ है तुम्हारी माँ?

लड़का मुझे घर के भीतर ले गया। एक औरत मैली साड़ी में नीचे पड़ी थी उसकी साड़ी कई जगह से फटी हुई थी। कपड़ों के नाम पर वह चिथड़े लपेटे थी। उसकी माँ बहुत बीमार थी। कुछ बोल भी न सकी। मैं बाहर निकल आया और मैंने लड़के से पूछा कि तुम्हारे पास पैसे हैं। लड़के ने हाँ में सिर हिलाया और फिर मैं घर आ गया। लड़के की ऐसी हालत ने मुझे सोचने पर मजबूर कर दिया और आधी रात तक उसके बारे में सोचता रहा। मुझे समझ आ गया था कि क्यों वह लड़का पढ़ाई और खेलकूद त्याग कर ठेला धकाता था।

लड़का कुछ दिन और न आया। समय गुज़रता गया। इतवार के दिन दोपहर का समय था। गर्मी इतनी भयंकर थी कि अगर आटे की लोई बेलकर धूप में रख दें तो सिककर रोटी बन जाए। मुझे लड़के की आवाज़ सुनाई दी। मैं बाहर निकला। गर्मी बहुत तेज़ थी। मैंने पूछा तुम्हारी माँ कैसी है? लड़का बोला अब तो ठीक है। मुझे खुशी हुई। बातों ही बातों में मेरी नज़र उसके पैरों पर पड़ी। वह नंगे पैर था।

मैंने गुस्से से पूछा, तुम्हारी चप्पल कहाँ है?

लड़का डरते हुए बोला, बाबूजी टूट गई।

मैंने कहा, तो तुम ऐसे ही आ गये।

वह बोला, तो और क्या करता बाबूजी घर में पैसे नहीं हैं। इसके बाद मैं कुछ न कह सका।

लड़का चला गया और नंगे पैर ही सब्जी बेचने लगा। कुछ दिन बीत गए; लेकिन उसे ऐसे नंगे पैर देख मुझे चैन न आता था। वह भरी दोपहरी नंगे पैर ठेला धकाता; उसकी हालात के बारे में सोचकर मेरा मन विचलित हो जाता था।

फिर मैंने सोचा कि क्यों न मैं उसे एक जोड़ जूते ला दूँ। लेकिन तभी मुझे याद आया कि जिस तरह उसने पैसे लेने से मना कर दिया था; यदि उसी प्रकार जूते लेने से भी न कह दिया तो! बहुत चितंन के बाद आख़िर मैंने उसके लिए जूते लाने का मन बना ही लिया। झटपट तैयार होकर मैं बाज़ार पहुँचा। मैंने सोचा कि दौ सौ या तीन सौ रुपये के जूते लूँगा। फिर मैंने सोचा कि ये जूते तो उस लड़के के पास दो महीने भी न चलेंगे। मैं पास ही जूतों के एक बहुत बड़े शोरूम में गया। मैंने सेल्समेन से कहा कि कोई ऐसा जूता दिखाओ जिसे पहनकर पहाड़ों पर चढ़ा जा सके। उसने कहा आपके लिए? मैंने कहा नहीं बारह साल के लड़के के लिए। उसने तुरंत एक चमचमाता जूतों का जोड़ निकाला। यह बहुत मज़बूत था और सब्ज़ीवाले लड़के के लिए एकदम सही था। मैंने वह जूता लिया और घर आ गया।

मैं शाम को लड़के की राह देखने लगा। लेकिन लड़का रात होने पर भी नहीं आया। ऐसा तो नहीं कि आज वह पहले ही आकर चला गया हो। मैं तुरंत नुक्कड़ की ओर बढ़ा। लड़का वहाँ बैठा हुआ था। मुझे देखकर सहसा ही खड़ा हो गया। उसके पैर में अभी भी चप्पल नहीं थी। जूते का थैला मेरे हाथ में लटका था और लड़का बराबर उसकी ओर देखे जा रहा था। मैं यह सोचने लगा कि लड़का खुद ही इस थैले के बारे में पूछेगा। लेकिन उसने एक बारगी भी थैले के बारे में न पूछा। फिर मैंने खुद ही उससे कहा कि मैं तुम्हारे लिये कुछ लाया हूँ। ये सुनते ही उसके मुख पर तिरस्कार की भावना आ गई। उसने हाथ हिलाकर कहा कि मैं आपसे कुछ न लूँगा बाबूजी। बहुत समझाने के बाद आख़िर कार वह मान गया। मैंने फटाफट जूते का डब्बा खोलकर उसे दिखाया। पहले तो वह खुश हुआ लेकिन एकपल बाद ही उसकी आँखें गीली हो गईं। मेरे समझाने पर उसने रोना बंद कर दिया। वह मुझे धन्यवाद कहने लगा। उसने कम से कम मुझे दस बार धन्यवाद कहा होगा। उसने जूते ले लिए और मैं घर आ गया। मैं बहुत खुश था कि अब उसे नंगे पैर न घूमना पड़ेगा।

इसके बाद तीन दिन तक मैं किसी कारणवश लड़के से मिल न सका। चौथे दिन लड़का भरी दोपहरी में चिल्लाता हुआ आया। मैं उससे मिलने बाहर निकला और सबसे पहले उसके पैरों को देखा। वह नंगे पैर था।

मैंने उससे पूछा, तुम्हारे जूते कहाँ है?

लड़का चुपचाप खड़ा रहा और कुछ न बोला।

मैंने इस बार गुस्से से सवाल को दोहराया।

लड़का डरकर थोड़ा पीछे हट गया और नज़रें नीचे करके बोला।

बाबूजी, मैंने जूते बेच दिए।

यह सुनते ही मैं आग बबूला हो गया और लड़के को दुनिया भर की बातें सुनाने लगा।

मैंने पूछा, जूते क्यों बेचे?

लड़का बोला बाबूजी मेरी माँ की साड़ी फट गई थी तो मैंने वह जूते बेचकर अपनी माँ के लिए साड़ी खरीद ली। बाबूजी मैं कुछ दिन और नंगे पैर घूम सकता हूँ। लेकिन माँ की फटी साड़ी देखकर मुझे अच्छा न लगता था। लड़का कहने लगा मुझे जूतों की इतनी आवश्यकता न थी। जितनी कि माँ के बदन पर साड़ी की।

उसकी ये बातें सुनकर मेरे सारे गुस्से पर पानी फिर गया और उसके सामने मैं अपने आपको बहुत छोटा महसूस करने लगा। उस लड़के के मुख से इतनी बड़ी-बड़ी बातें सुन मैं अचंभित हो गया। मुझे उस लड़के पर गर्व महसूस होने लगा। मैंने देखा कि लड़का खुश था। उसके चेहरे पर मुस्कान थी; जो मैंने आज से पहले कभी न देखी थी।

वह नंगे पैर ही ठेला धकाता हुआ चला गया। मैंने जाते-जाते उससे पूछा- 'बेटा तुम्हरा नाम क्या है?'

उसने हँसते हुए कहा 'संजय'।

****

ग़ज़ल

नीलांबुज 'नील'

मैं जब तेरे पास गया था
तुझको जाने कैसा लगा था
दुनिया कब से चीख रही थी
तू ही थककर तब सोया था
अपना दुखड़ा रोने वाला
मेरे आँसू देख हँसा था
मैं तो ख़ैर शुरू का झूठा
तू तो प्यारे इक सच्चा था
कुचल दिया था तूने जिसको
एक घरौंदा मिट्टी का था
'नील' तुम्हारी उजबक बातें
कौन कहेगा जग सुनता था

****

कमियाँ मेरी बताता चल
बेहतर मुझे बनाता चल
कितने अपने दोष गिनूँ
तू भी हाथ बँटाता चल
जब जब मेरे पर निकलें
धरती मुझे दिखाता चल
रात बड़ी अंधियारी है
जुगनू कोई जगाता चल
मैं रो कर बेदार हुआ
टुक पल मुझे हँसाता चल
'नील' अकल का कच्चा है
उसको बस समझाता चल

****

'अकबर' सी धुन लायें कहाँ
'नासिर' सा फ़न पायें कहाँ
दर्द नहीं है इश्क़ नहीं
इल्म को लेकर जायें कहाँ
हँसती हुई इस दुनिया में
दिल को कहो रुलायें कहाँ
अपना तो बस इक चेहरा
अय्यारी-फ़न पायें कहाँ
खुसरो, मीर, कबीर, नजीर
अपना दर्द जगायें कहाँ
दिल की बातें करनी है
बस ये कहो सुनायें कहाँ

***

मोबाइल : 7044178071

तुम बहस के हॉट केक हो

दिलीप तेतरवे

साहब, अगर मैं स्वयं को उल्लू कहूँ तो किसी भी बुद्धिजीवी को कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए, और श्रोतागण और मंचासीन अति प्रबुद्धजन, आप लोगों को भी नहीं....हाँ सज्जनों! आपने ठीक ही प्रतिक्रिया दी कि आप लोगों को कोई आपत्ति नहीं है...किसी भी उल्लू को कतई आपत्ति नहीं है!

साहब, मैं व्यंग्य लिखता हूँ, इसलिए कुछ कलमची मुझे एक अरसे से उल्लू कहते-उड़ते चले आ हैं और जब मैंने स्वयं को हठपूर्वक उल्लू कहना शुरू कर दिया तो, वे चैन की नींद नहीं सो पा रहे हैं। वे रतजगा कर मेरे कार्यकलापों का जायज़ा लेना चाहते हैं- जैसे कोई उल्लू रात में करता है, शिकार का जायज़ा!

साहब, मेरे द्वारा आदमी से ऊल्लू बनने की प्रक्रिया में बहुत-सी बाधाएँ झनझनाती-खनखनाती आईं। कुछ विचारवान विशालकाय राजनेताओं ने भी मेरा घनघोर विरोध किया और कहा कि मेरा यह कुकृत्य संविधान विरोधी है और देश की संस्कृति का भी विरोधी है। एक और माननीय ने मेरे ऊपर यह भी इल्ज़ाम मढ़ दिया कि मैंने उल्लू की उल्लूवीयता या उल्लू की मानवीयता या पक्षी की पक्षीवीयता के खिलाफ घोर दुष्कर्म किया है, जो बिलकुल अनुचित, अधार्मिक, असांस्कृतिक, अराष्ट्रवादी, अमर्यादित और अस्वीकार्य है।

साहब, मुझ पर एक और बड़े विशाल त्रिपुंडधारी महान् नेता ने यह भी आरोप उछाला कि मैंने लक्ष्मी के पवित्र वाहन उल्लू को अपना नाम बनाकर, एक तरह से उनके वाहन होने का नरकगामी दावा पेशकर दिया है। एक गृहत्यागी महामना महाराज व्यवसाई ने भी खुलकर मेरे खिलाफ बोला है- 'पापी ज्ञानेश्वर ने अपना नाम उल्लू रखकर, एक अधार्मिक कुकर्म जैसा अमर्यादित अपराध किया है...यह वेद विरोधी है, पाखंडी है, इसे यथा-शीघ्र नरक यात्रा करा दी जाए। इसे शुद्धतावादी समाचार चैनेल सत्यासत्य के 'कोर्ट' के हवाले कर दिया जाए और उससे कहा जाए कि वह उसे तत्काल सज़ा दे और उसे धर्म-द्रोही का प्रमाण-पत्र आँख मूँदकर जारी कर दे।'' अब उनसे यह उल्लू क्यों पूछता कि मर्यादित और अमर्यादित अपराध क्या होता है?

साहब, मैंने जैसे ही अपना नाम उल्लू होने का एफिडेविट प्राप्त किया, मेरे ऊपर दस पंद्रह जगह मुक़दमे लाद दिए गए। फिर मैंने कोर्ट में दलील दी- जज साहब! मैं उल्लू, गीता की कसम खा कर प्रार्थना करता हूँ कि मैं उल्लू, वल्द उल्लू, वासी उल्लू-धाम अपार्टमेंट, उल्लू नगर, राजधानी उल्लूपुर, पिन कोड-420 का वासी हूँ और मैं उल्लू, जो कुछ भी कहूँगा वह सत्य या असत्य माना जाए, लेकिन मुझे अपने नाम से अलग न किया जाए। इस नाम में मेरे प्राण बसते हैं, जैसे बहुत से माननीयों के प्राण 'नोट' में बसते हैं....जज साहब! जब सिंह, मृग, मयूर, हंस, मैना, सुग्गा, तोता, चकोर आदि स्त्री या पुरुष के नाम हो सकते हैं तो मैं अपने को उल्लू नामित क्यों नहीं कर सकता? जज साहब ने मुझे उल्लू कहते हुए मेरे विरुद्ध दायर सभी मुकदमों को खारिजकर दिया...साहब, अब मैं जज साहब को क्या बताऊँ कि उन्होंने मुझे पब्लिसिटी का लाभ उठाने का मौका ही नहीं दिया। केस कुछ दिनों चलता रहता, थोड़ी-थोड़ी बहस होती और डेट पर डेट पड़ता रहता और मेरी प्यारी डेटिंग प्रसिद्धि के साथ चलती रहती। मैं पब्लिक फीगर बनकर मंत्री बनने का सौभाग्य, पब्लिक दुर्भाग्य पा लेता!

साहब, मैंने अपने को उल्लू ऐसे ही नामित नहीं किया। मुझे यह पदवी कमलासन पंडित जी की ओर से मिला है। उनका कहना है कि उनका एक भक्त तो सुबह में अपानवायु विसर्जित करता है, लेकिन यह उल्लू तो लगातार करता ही रहता है...यह लेटेस्ट बाबा के पादुका राज के लोकतान्त्रिक राजा का चाटुकार है। कमलासन पंडित जी मुझे उल्लू

राँची के दिलीप तेतरवे के बाल साहित्य-कहानी, कविता, गीत, गीत नाटिका, नाटक आदि विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। एक काल खण्ड की यात्रा-व्यंग्य उपन्यास, हाशिए का आदमी-खण्ड काव्य के अलावा पाँच और पुस्तकें प्रकशित। व्यंग्य और व्यंग्य आलेख-हज़ारों व्यंग्य चित्र और आलेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। संप्रति हिन्दी की साहित्यिक पत्रिका अनवरत के संपादक हैं।
संपर्क:423, न्यू नगरा टोली, राँची-834001 (झारखण्ड)
ईमेल: diliptetarbe2009@gmail.com
मो: 09304453797

की पदवी कभी नहीं देते, लेकिन उन्होंने यह कार्य तब किया जब, मैंने कहा कि मैं बिना गालियों की छौंक लगाए व्यंग्य लिखूँगा। कमलासन पंडित जी ने मुझे जज साहब की तरह सिर्फ उल्लू ही नहीं कहा, बल्कि कई सड़क छाप पशुओं का भी नाम दे दिया। मैं तो विरोध की मूसलाधार वर्षा के कारण अपान-वायु त्यागना ही भूल गया। किन्तु उनके विरोध का अति सम्मान करते हुए, द्रवित मन-हृदय से मैंने उल्लू नाम को अपना लिया...

साहब, इस अद्भुत् घटना के बाद मेरे लघु-मस्तक से उल्लू के प्रति करुणा की विशाल रसधारा बह निकली। वह जल्दी ही एक पहाड़ी नदी बन गई और उसी नदी के किनारे मैंने गालियों की छौंक लगी, व्यंग्य की चटनी और ब्लैक किए गए सरकारी गेहूँ की दो रोटियों को टेस्ट किया, और मुझे लगा कि कुछ कडुवी-सी चीज़ है, जो गले में अटक रही है, मटक रही है। मैंने कहा कि कुछ भी हो जाए, जब व्यंग्य लिखने के लिए इतनी बड़ी मात्रा में खिचड़ी, पापड़, घी, अचार, चोखा और इंग्लिश-हिन्दी सम्मानित दारुओं के ब्राण्ड ब्रह्माण्ड में यूँ सृजित-विसर्जित हो रहे हैं, तो मैं क्यों उन गालियों का तड़का लगाऊँ जो मुझे पचती नहीं।

वैसे भी, साहब, यह बिलकुल सच है कि उल्लुओं को गालियाँ नहीं पचतीं, वे गालियों का स्वागत ही नहीं करते, मैं भी नहीं करता। उल्लूगण साफ़ शब्दों में बुद्ध की तरह कह देते हैं- 'हे दाता! मैंने तुम्हारी गालियों को स्वीकार नहीं किया...इसे अपनी जुबान पर वापस ही रख लो, वैसे ही, जैसे तुम अगर हमें अपनी मुट्ठी में अपने भंडार से लाकर कुछ चावल देते और मैं उन्हें स्वीकार नहीं करता, तो तुम उसे फिर से अपने भण्डार में ही उसे रख देते!'

साहब, मैंने उल्लुओं को सदैव स्वस्थ और प्रसन्न देखा है। मैं भी हमेशा स्वस्थ और प्रसन्न दीखता हूँ, भले तन से बीमार रहूँ। साहब, सब जानते हैं कि उल्लू अँधेरे में देखते हैं और मैं अंधेर में। उल्लू अँधेरे में शिकार करते हैं, और मैं अंधेर करने वालों का शिकार बनता हूँ। यही सब कुछ हम दोनों की समानताएँ हैं और इसलिए साहब, अगर मैंने अपने को उल्लू कहा तो क्या ग़लत कहा? साहब, मैं अपने व्यंग्य-शिकार को मसालेदार शब्द देता हूँ, लतखोरी पंक्तियाँ देता हूँ, गाली रहित पुलिसिया पैराग्राफ देता हूँ, हिटलरी आलेख देता हूँ- इसमें क्या ग़लत है कि मैं स्वाभाविक रूप में या अंग्रेज़ी कहूँ तो मैं उनके लिए नैचुरल भोजन पकाता हूँ?

साहब, जब से मेरा नाम उल्लू हो गया है, मैं अपने शहर के महात्मा कवियों के उपहास का पात्र बन गया हूँ, जो आदतन एक दूसरे को उल्लू कहते रहते हैं, जबकि मैं गारंटी के साथ कह सकता हूँ कि उनमें से किसी एक में भी उल्लू होने का, एक भी गुण मौजूद नहीं है- वे महात्मा न आदमी हैं न उल्लू, बस महात्मा हैं, जिसकी ढीली लंगोटी और नारी विषयक उत्तेजक-उत्प्रेरक कविताओं की चर्चा होती ही रहती है।

साहब, मैं यह गारंटी के साथ कह सकता हूँ कि उन महात्मा कवियों ने अपने जीवन में कभी उल्लू नहीं देखा, वर्ना वे मेरा कतई विरोध नहीं करते। और साहब, वे ठीक से अपना आईना भी नहीं देखते और वे अपना आईना देखेंगे भी क्या, वे तो अपने आईने का पिछला भाग ब्लेड से खुरच-खुरच साफ़ कर देते हैं, जिससे वह पारदर्शी हो जाता है, जैसे उनकी कविता में स्त्रियाँ पारदर्शी हो जाती हैं!

साहब, आपका यह उल्लू अपने आईने को साफ रखता है और जानता है कि उसका चेहरा कैसा है- एकदम उल्लू-सा...मासूम; और साहब, मैं उल्लू कहलाते हुए भी स्वर्ण-चिड़ियों की गंध से कभी पराजित नहीं हुआ!

मुझपर एक और गंभीर आरोप है कि मैंने नामाकरण की फीस किसी धार्मिक पुरुष के चरणों में नहीं रखी और इस प्रकार उनके संविधान के चरण-चढ़ाव धारा-840 के तहत महाराष्ट्र के किसी नगर में मुकदमा दायर किया गया है और जहाँ बिना सुनवाई के मुझे सज़ा दे दी जाएगी-वहाँ मेरे खिलाफ कंगारू कोर्ट चालू आहे....साहब!

कुछ लोग प्रश्न करते हैं कि यह अष्टवक्र ज्ञानेश्वर उल्लू कैसे हो सकता है? इस प्रश्न पर टेलीविजन पर लगातार बहस जारी है, जिसकी मुझे कोई चिंता नहीं है। बस, एक दिन मैंने भी बहस सुनी और एक बड़े आदमी का बयान भी सुना-'यह जो महामूर्ख उल्लू अपने को मात्र उल्लू कह रहा है, शायद अपने को बहुत विद्वान समझता है, गदहा कहीं का! मैं इस मूर्ख की हठधर्मिता और षड्यंत्रकारी, प्रचारवादी नीति के खिलाफ आमरण भोजन करता रहूँगा! मैं इसे सात जनमों तक उल्लू नहीं बनने दूँगा। मैं संसार के सभी उल्लुओं को आश्वस्त करना चाहता हूँ कि इस नकली उल्लू के हाथों हुए उनके अपमान को मैं जाया नहीं होने दूँगा। उनका अपमान तब तक कायम रहेगा जब तक सूरज और चाँद रहेगा! यह नकली उल्लू, असली उल्लू के हक़ को नहीं मार सकता, उसकी अस्मिता को नहीं मिटा सकता। उसकी सामाजिकता और धार्मिकता के साथ-साथ उसकी आध्यात्मिकता को भी नहीं मिटा सकता। विश्व के सभी उल्लुओं के सम्मान के लिए मैं प्रतिबद्ध हूँ। वे मुझे अपना सेवक माने और सेवा कर प्रदान करें...'

साहब, इस उल्लू को जो गदहा समझे रहे हैं, वे वास्तव में गदहों का सम्मान कर रहे हैं या अपमान कर रहे हैं, इसपर वे खुद विचार कर लें। उनसे यह सादर निवेदन भी है कि वे उल्लू-नामकरण विवाद में गदहा समेत किसी अन्य जानवर को न घसीटें, जब तक उनसे वे परमिशन या आज्ञा न ले लें। नहीं तो मैं उन सभी पशुओं और पक्षियों के नाम अपने नाम उल्लू में जोड़ कर उनके लिए भी एफिडेविट करवा लूँगा।

मैं अपने उन दो दोस्तों के प्रति भी आभार प्रकट करता हूँ कि विरोध के दिनों में उन्होंने न जाने क्यों मेरा समर्थन किया और और कहा-'चलो उल्लू, तुमने इस जीवन में कुछ तो किया जो तुमको भी लोगों ने विरोध के काबिल समझा। तुम हमारे पहले दोस्त हो जिसका इतन्वा बड़ा विरोध हो रहा है। पहले तुम मनहूस थे। अब जान गया कि ईश्वर ने तुमको बड़ा सौभाग्यशाली बनाया है। तुम न्यूजचैनेल की बहसों के हॉटकेक हो, हॉटकेक!'

****

'स्मृति में समय'

प्रताप सहगल

9 मार्च, 2015

कल राजी सेठ की दो कहानियों का मंचन देखने चला गया। दो दिन पहले राजी ने ही फ़ोन पर आमंत्रित करते हुए बताया था कि उनका बेटा राहुल सेठ अमेरिका में अपनी नौकरी छोड़कर स्वदेश लौट आया है और वह यहाँ रहकर लेखन और नाटक करना चाहता है। इसीलिए उसने 'लांग जंप स्टूडियो' नाम से एक नए नाट्य-दल की स्थापना की है। शुभ लक्षण। एक और नाट्य-दल मिला है दिल्ली रंगमंच को। अपनी पहली ही प्रस्तुति उन्होंने कल राजी सेठ की ही दो कहानियों से की- 'मेर लिए नहीं' और 'अनावृत्त कौन'। शाम को पहुँचा तो राजी अपने स्नेही अंदाज़ में मिलीं। राहुल से भी मुलाकात हुई। प्रस्तुति का निर्देशन देवेन्द्र राज अंकुर कर रहे थे और हम जानते ही हैं कि कहानी के रंगमंच की शुरूआत उन्होंने ही की थी।

दोनों ही कहानियों का थीम स्त्री-पुरुष संबंध थे और इन संबंधों में अपनी इयत्ता की खोज करतीं दो स्त्रियाँ हैं। पहले अनावृत्त कौन को पेश किया गया। पति-पत्नी और घर में पिता। कहानी की प्रस्तुति प्रभावित कर रही थी तो दूसरी कहानी 'मेरे लिए नहीं' ने उस प्रभाव को खंडित कर दिया। वैसे तो दोनों कहानियाँ अंडर रिहर्सड थीं लेकिन 'मेरे लिए नहीं' में बहुत झोल थे। अमिताभ श्रीवास्तव को क्या हो गया है। संवाद बोलते-बोलते कुछ शब्द ही गायब हो जाते थे। और दुर्गा शर्मा ने भी बिना भावों के शब्द फ़ेंके। केवल और केवल गौरी देवल ने 'अनावृत्त कौन' में प्रभाव छोड़ा। थोड़ी मेहनत किया करो यार।

17 मार्च, 2015

कल हिन्दी नाटक के पितामह की स्मृति में हर साल की तरह से भारतेन्दु नाट्य उत्सव शुरू हुआ। साहित्य कला परिषद साल के सर्वश्रेष्ठ नाटकों का चयन करके एक साथ मंचित करवाती है। यह एक अच्छा अवसर होता है उन छूटे हुए तमाम नाटकों को देखने का, जो किसी भी वजह से कोई देख न पाया हो। कल पहला नाटक था 'ग़ज़ब तेरी अदा'। एरिस्टोफ़ेनिस के प्रसिद्ध कामदी नाटक 'लिसिस्त्राता' पर आधारित। वामन केन्द्रे ने हालाँकि इसे मौलिक नाटक कहा है लेकिन नाटक का केन्द्रीय बिन्दु 'लिसिस्त्राता' ही है तो क्यों न इसे रूपांतर माना जाए। ग्रीक में 411 बी सी में खेला गया यह नाटक अगर आज भी रंगकर्मियों को आकर्षित करता है तो कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं है इसकी।

2.

नाटक का मूल बिन्दु युद्ध-विरोध है और युद्ध-विरोध का पहला स्वर 'लिसिस्त्राता' में लिसिस्त्राता उठाती है तो 'ग़ज़ब तेरी अदा' में 'लाया'। दोनों महिलाएँ मानसिक रूप से मज़बूत हैं और दोनों ही नाटकों में अन्य महिलाओं को युद्ध के विरोध के लिए संगठित किया जाता है। महिलाएँ युद्ध विरोध का एक नायाब तरीका यह ढूँढ़ती हैं। युद्ध से लौटे हुए अपने पतियों के साथ तब तक सहवास के लिए इंकार करती रहती हैं, जब तक वे युद्ध न करने के लिए वचन दें। यही वह मुकाम है, जहाँ स्त्री-विमर्श खड़ा करके अंततः नाटक को बड़े मकसद की पूर्ति के लिए आगे बढ़ाया जाता है और अंत में जीत महिलाओं की ही होती है। महिलाओं के तर्कों के सामने पुरुष पस्त हो जाते हैं और फ़िर शरीर की भूख मिटाने के लिए भी जाएँ तो जाएँ कहाँ, क्योंकि देश की वेश्याएँ तक भी युद्ध रोकने के पक्ष में सहवास के लिए मना कर देती हैं। युद्ध की भयावहता को वामन ने पुराने समय से निकाल कर आज के समय के साथ जोड़ा है और स्त्री-विमर्श के आधुनिक तर्कों को जगह दी है। इसलिए नाटक आज का और अपने समय का हो जाता है।

हालाँकि नाटक शब्द-बहुल है लेकिन अंत में अपना प्रभाव तो छोड़ता ही है। वामन केन्द्रे का निर्देशन तो अच्छा है ही लेकिन संगीत ग़ज़ब है। खासतौर पर घंटी का इस्तेमाल तरह-तरह के मूडों और स्थितियों को उद्दीप्त करने के लिए जिस तरह से किया गया है, वह

संपर्क: एफ-101, राजौरी गार्डन, नई दिल्ली-110027
ईमेल: partapsehgal@gmail.com
दूरभाष: 9810638563

अद्भुत है। यह भी मानना होगा कि वामन केन्द्रे के 'जानेमन' नाटक से यह नाटक एकदम अलग है। कथ्य में तो है ही, प्रस्तुति में भी। लाया की भूमिका में ईष्पिता सिंह की बेहतरीन अदायगी दिखी। इतनी बेहतरीन की एक दर्शक भावुक होकर चल रहे नाटक में ही मंच पर आ गया और रोती हुई ईष्पिता के सिर पर हाथ रखकर सौ रुपए का नोट इनाम के तौर पर देकर लौट आया। मैं पिछले पैंतालीस सालों से नाटक देख रहा हूँ, लेकिन इस तरह की घटना पहली बार देखी। रंगकर्म की नज़र से यह ठीक तो नहीं। अभिनेता का ध्यान भंग हो सकता है लेकिन ईष्पिता ने अपने आप को सँभाले रखा।

3.

आज के समारोह का उद्घाटन करने के लिए दिल्ली के उप-मुख्यमंत्री मनीष सिसोदिया और कला मंत्री जितेन्द्र तोमर उपस्थित थे। आम आदमी पार्टी की सरकार बनाने के बाद मनीष सिसोदिया को पहली बार सुना। बहुत पहले उनसे एक बार मुलाक़ात हुई थी और पार्टी बनने के शुरूआती दिनों में पार्टी से जुड़ने की भी लेकिन फ़िर वही कि आज तक राजनीतिक गठबंधनों से दूर रहा तो अब क्यों? और फ़िर दूर से ही आम आदमी पार्टी को देखता रहा और चुनाव के समय अपनी ओर से कुछ योगदान भी किया। एक हितैषी की तरह से कि राजनीति में बदलाव आना ज़रूरी है। बाद की घटनाओं पर यहाँ टिप्पणी करने का मौका नहीं है। मनीष ने अपने उद्घाटन भाषण में रंगकर्म के अपने अनुभवों को साझा किया तो आशा जगी कि साहित्य कला परिषद की बंद पड़ी कई योजनाएँ फ़िर से शुरू हो सकेंगी और परिषद के क्रिया-कलापों का विस्तार होगा। मनीष ने अपनी बात एक आम आदमी की तरह से ही रखी; लेकिन अपने प्रारंभिक वक्तव्य में जो मुद्दे शोभना जगदीश ने उठाए थे, उन्हें वे गोल कर गए। भला बिना अर्थ के कला के कामों का विस्तार हो सकेगा क्या? यहाँ मनीष ने निराश किया।

और फ़िर अंत में सभी कलाकारों का अभिनन्दन करने के लिए एक नाटककार के रूप में मुझे मंच पर आमंत्रित किया गया। लगता है जैसे अंत में मंच पर मेरा जाना और कुछ बोलना एक स्थायी भाव बन गया है।

18 मार्च, 2015

कल शाम नाटक 'बेबे का चंबा' देखा। बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में स्पेनिश कवि और नाटककार गार्सिया लोर्का के नाटक का रूपांतरण नीना वाघ ने किया था और निर्देशन था सोहेला कपूर का। यह सर्व विदित है कि अपने वामपंथी रुझान के कारण लोर्का को स्पेन में चल रहे गृह-युद्ध में राष्ट्रवादियों ने 1938 में मार दिया था। अपने यहाँ भी राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ से समर्थित भाजपा और दूसरे हिन्दू संगठन क्या कभी ऐसी ही स्थिति पैदा करने वाले हैं? बदले हुए हालात देखकर तो यही लगता है कि कभी ऐसा हो भी सकता है। हम देख रहे हैं कि अघोषित सेंसरशिप तो यहाँ-वहाँ अपना काम कर ही रही है। यह सोचकर मन बहुत विचलित होता है। खैर, यह प्रश्न अलग है। यहाँ बात नाटक की करता हूँ।

4.

नाटक का रूपांतर नीना ने भारत विभाजन की पृष्ठभूमि में किया है। स्थान है पंजाब का कोई गाँव। इसलिए नाटक के संवाद पंजाबी-हिन्दी मिश्रित भाषा में हैं। पंजाबी लोक-गीतों का यथास्थान बहुत संवेदनशीलता के साथ इस्तेमाल किया गया है। नाटक की शुरूआत 1947-48 की पृष्ठभूमि में होती है। घर के मुखिया की मौत पर घर की सभी औरतें विलाप कर रही हैं। घर की और घर की चार लड़कियों की पूरी ज़िम्मेदारी अब घर की बड़ी यानी बेबे पर आ गई है। बेबे ने ही अपने से बुज़ुर्ग झाजी को एक किनारे लगा दिया है और घर पर पूरी तरह से उसका वर्चस्व कायम है। विवाह-योग्य घर की चारों बेटियों को घर की चहारदीवारी में बंद कर दिया जाता है। घर में नैतिक वर्जनाओं के कारण जैसे-जैसे तपन बढ़ती है, वैसे-वैसे ही चारों लड़कियों की यौन-कुंठाएँ बढ़ती हैं और पुरुष के संपर्क में आने की लालसा भी। बेबे का रुआब उन्हें घर से बाहर निकलने नहीं देता और लड़कियाँ पुरुष-संसर्ग के लिए आतुर हैं। बड़ी लड़की की सगाई होती तो है घनश्याम से लेकिन घनश्याम का शारीरिक संबंध उसी की एक छोटी बहन से हो जाता है। इंतिहा तब होती है जब उसी की एक और बहन अपनी उस बहन से प्यार करने लगती है, जिसे घनश्याम से प्यार था।

और फ़िर घर में होता है विद्रोह। घनश्याम के प्रेम में पागल संतोष से उसी की छोटी बहन शारीरिक संबंध बनाना चाहती है। बीच-बीच में घर की नौकरानियाँ और मुहल्ले की एक औरत के ज़रिए स्थितियों को हाइटन किया जाता है। संतोष खुला विद्रोह करते हुए बेबे का आतंकवादी डंडा छीन कर तोड़ देती है तो बेबे कहती है- ''अब मुझे पता है कि मैंने क्या करना है''। वह घर के बाहर संतोष का इंतज़ार करते घनश्याम पर गोली चलाती है; लेकिन निशाना चूक जाने के कारण वह बच निकलता है और उसका यह संवाद -'एन वक़्त पर औरतों का निशाना चूक क्यों जाता है?' जैसे औरतों की काम्पलैक्स चारित्रिक बुनावट पर एक तेज़ टिप्पणी कर जाता है। जब संतोष को यह सब पता चलता है तो वह खुद को एक कमरे में बंद करके गोली मार लेती है।

5.

यानी कुल मिलाकर यह वर्जनाओं और केवल औरतों के लिए बनाए गए नैतिक मानों को तोड़ने वाला नाटक है। क्या इसे हम स्त्री-विमर्श का हिस्सा नहीं मानेंगे?

नाटक का अंत सिर्फ़ चौंकाने वाला ही नहीं, डराने वाला भी है। झाजी के किरदार में मदनबाला सिंधु ने अपनी बुलंद आवाज़ में पंजाबी लोकगीतों के ज़रिये नाटक को बहुत शक्ति दी है और अंतिम गीत 'साडा चिड़ियाँ दा चंबा वे, बाबल असाँ उड़ जाणा। साडी लम्मी उडारी वे, बाबल केड़े देस जाणा' अंदर तक हिला देता है।

नाटक के इस त्रासद अंत पर पूरे प्रेक्षागृह में सन्नाटा था। इसे मैं एक अच्छी प्रस्तुति ही मानूँगा। अंत में मंच पर जाकर सोहेला कपूर तथा अन्य सभी कलाकारों का स्वागत करते हुए मैंने उनसे यह बात कही भी।

******

आज बहुत दिनों बाद मुरली मनोहर प्रसाद सिंह और रेखा सिंह से भी मुलाकात

हो गई। मुरली भाई के साथ 'डूटा' के संघर्ष के दिनों की बहुत स्मृतियाँ जुड़ी हुई हैं। उन्हीं दिनों उनके जुझारू रूप में निखार आया था और वे शिक्षकों के संघर्ष को अंतिम परिणिति तक ले गए थे। ऐसी पुरानी स्मृतियाँ शक्ति देती हैं।

19 मार्च, 2015

दारा शिकोह भारतीय इतिहास में एक ऐसा नाम है जिसे सत्ता या शासन के कारण नहीं, बल्कि उनकी उदार सोच के कारण याद किया जाता है। इतिहास में औरंगज़ेब दर्ज है तो दारा शिकोह इतिहास के साथ-साथ भारत की उदारवादी परंपरा में भी दर्ज है। सत्रहवीं शताब्दी का मध्य और मुग़लिया सल्तनत में शाहजहाँ का शासन-काल। इसी पृष्ठभूमि में लिखा गया नाटक 'दारा' कल देखा।

नाटक के नाम से ही ज़ाहिर है कि नाटक का केन्द्रीय पात्र दारा शिकोह ही है। नाटक की शुरूआत दारा के अपने पिता शाहजहाँ के उत्तराधिकारी बनने की इच्छा से शुरू होती है और यहीं से शुरू होता है मुग़ल भारत के इस शासक परिवार का अंतर्द्वंद्व।

6.

वस्तुत: यह नाटक इसी अंतर्द्वंद्व का पुनराख्यान है। दारा शिकोह इस बात पर दृढ़ है कि सभी धर्मों, खासतौर पर हिन्दू और इस्लाम धर्म के मूल में एकता का भाव है। हम जानते हैं कि दारा शिकोह ने गीता और कई उपनिषदों का फ़ारसी में अनुवाद किया था और वह वेदांत के साथ-साथ सूफ़ी संत सरमद से बेहद प्रभावित था। दूसरी ओर औरंगज़ेब इस्लाम का पैरोकार, हिन्दू धर्म को हिक़ारत की निगाह से देखने वाला, महत्त्वाकांक्षी, युद्ध के अनुभवों में पका रणनीतिकार तथा एक चालाक और साहसी योद्धा था। दारा और औरंगज़ेब ज़हनी और जिस्मानी तौर पर एक-दूसरे के विरोधी ही ठहरते थे। और उनकी दोनों बहनें रौशनआरा और जहाँआरा भी एक-दूसरे के विरोध में खड़ी नज़र आती हैं। जहाँआरा दारा के पक्ष में है तो रौशन आरा औरंगज़ेब के। मज़ेदार बात यह है कि सत्ता के इस खेल में अन्य दो भाइयों शुजा तथा मुराद को कठपुतलियों की तरह से ही इस्तेमाल किया गया है। यह एक प्रभावी थियेटरीकल डिवाइस है। महलों की दुरभि-संधियाँ, मलिक जीवन खान का दारा के प्रति विश्वासघात, बेग़मों की अन्तर्कलह के बीच अंतत: औरंगज़ेब अपने छल और बल के कौशल से दारा का जीवन और ताज छीनने में कामयाब हो जाता है।

सूर्यकान्ति त्रिपाठी मेरे लिए नया नाम है और इस नाटक का आलेख सूर्यकान्ति का ही है, जिसका उर्दू में अनुवाद ज़िकरूर रहमान और अफ़शान अंजुम ने किया है। बहुत दिनों बाद उर्दू ज़बान अपनी खूबसूरती और शक्ति के साथ सुनने को मिली। और नाटक का सैट-डिज़ाइन माशा-अल्लाह! अशोक सागर भगत ने कमाल का सैट डिज़ाइन किया कि मंच पर यमुना भी प्रवाहित हो रही है और कुछ चिलमनों की मदद से कितने ही महल और दरगाह बनती चली जाती हैं। उसी के मुताबिक प्रकाश-व्यवस्था भी बदलती जाती है।

दारा को देखना सचमुच एक अनुभव से गुज़रना था। मोहम्मद शाहिदुर रहमान (दारा शिकोह), अमित शाह (औरंगज़ेब) तथा अशोक धवन (शाहजहाँ) के रूप में अपना-अपना किरदार जी गए। और तमाम अभिनेताओं ने जमकर काम किया। त्रिपुरारि शर्मा का निर्देशन लाजवाब। लेकिन केवल अंत में दिए गए भाषण-नुमां संवाद कम किए जा सकें तो शुरू से कसा हुआ चला आ रहा नाटक अंत में ढीला नहीं होता।

7.

यहाँ याद आ रही है भीष्म साहनी की कहीं कही हुई बात जो उन्होंने अपने नाटक 'आलमगीर' के संदर्भ में कही थी। वे भी दारा शिकोह पर पूरी तैयारी के साथ एक नाटक लिखने लगे तो उन्हें लगा कि नाटक उनके हाथ से धीरे-धीरे छूटता हुआ औरंगज़ेब का नाटक हो गया और फ़िर उन्होंने उस नाटक का नाम ही 'आलमगीर' रख दिया। आलमगीर में दारा की जगह औरंगज़ेब मुख्य पात्र हो गया। अजीब शै है लेखन। जाना हो कहीं और लेखक कई बार पहुँच जाता है कहीं और।

****

ग़ज़ल

संजु शब्दिता

ख्वाहिशें बेहिसाब होने दो
ज़िन्दगी को सराब* होने दो
उलझे रहने दो कुछ सवाल उन्हें
खुद ब खुद ही जवाब होने दो
तुम रहो दरिया की रवानी तक
मेरी हस्ती हुबाब होने दो
जागना खुद ही सीख जाओगे
अपनी आँखों में ख़्वाब होने दो
हार का लुत्फ़ भी उठा लेंगे
इक दफ़ा कामयाब होने दो
*सराब - मृग-तृष्णा

****

जो चाहें हम वही पाया नहीं करते
खुदाया फिर भी हम शिकवा नहीं करते
विदा के वक़्त वो मिलने का इक वादा
उसी वादे पे हम क्या -क्या नहीं करते
ज़माने की नज़र में आ गए हैं वो
अकेले हम उन्हें देखा नहीं करते
सितमगर पूछता है, मुझसे हालेदिल
ज़हर में यों दवा घोला नहीं करते
इशारों को समझना भी ज़रूरी है
किसी से बारहा पूछा नहीं करते
उन्हें है इश्क हमसे जाने फिर भी क्यों
ये लगता है हमें गोया नहीं करते

****

पहले शाइर समझने लगते हैं
फिर वो मुज़हिर* समझने लगते हैं
इतना ज़्यादा है मेरा सादापन
लोग शातिर समझने लगते हैं
थोड़ी सी दिल में क्या जगह माँगी
वो मुहाज़िर समझने लगते हैं
हम सुनाते हैं अपनी ताबीरें
आप शाइर समझने लगते हैं
इक ज़रा से किसी क़सीदे पर
खुद को माहिर समझने लगते हैं
जो समझने में उम्र गुज़री है
उसको फिर-फिर समझने लगते हैं
*मुज़हिर - प्रदर्शन करने वाला

****

ईमेल : sanjushabdita@gmail.com

एक और अभिमन्यु
(लेफ्टिनेंट सुशील खजुरिया, कीर्ति चक्र)

शशि पाधा

पाठकों, अमेरिका निवासी शशि पाधा की नवीन पुस्तक शौर्य गाथाएँ, देश की सीमाओं पर शहीद हुए सैनिकों की ऐसी गाथाएँ हैं, जिन्हें पढ़कर मेरी आँखें ही नहीं, रोम-रोम बह निकला। हम अपने घरों में जिनकी बदौलत सुरक्षित रहते हैं, वे किन कठिनाइयों से निकल कर सीमाओं की हिफाज़त करते हुए शहीद होते हैं, पढ़कर जाना। शशि जी स्वयं भी एक सैनिक की पत्नी हैं। जनरल केशव पाधा (रिटायर) के साथ वर्षों सीमाओं पर उन्होंने सैनिक जीवन जिया है। 'एक और अभिमन्यु' शौर्य गाथाएँ से लिया गया संस्मरण है।–संपादक

उन दिनों मैं अमेरिका में रह रही थी। देश में रहो या विदेश में, सुबह उठते ही चाय के कप के साथ समाचार पत्र पढ़ना पुरानी आदत है; जो यहाँ साथ ही आ गई। अंतर केवल इतना है कि विदेश में हम लैप-टॉप खोल कर भारत के सभी समाचार पत्रों की सुर्खियाँ अवश्य पढ़ लेते हैं। उस दिन भी वैसा ही हुआ। जम्मू निवासी होने के कारण जम्मू-कश्मीर का दैनिक समाचार पत्र 'डेली एक्सेल्सियर' खोला। मुख पृष्ठ पर जो चित्र और समाचार था उसे देख कर पूरे शरीर में कंपकपी दौड़ गई। तीन दिन से हम कश्मीर घाटी में भारतीय सेना एवं आतंकवादियों के बीच हो रही मुठभेड़ का समाचार पढ़ रहे थे, और प्रभु से सैनिकों की सुरक्षा की प्रार्थना भी कर रहे थे। किन्तु होनी को कौन टाल सकता है। उस मुठभेड़ में आतंकवादियों का संहार करते हुए भारतीय सेना ने और जम्मू नगर ने एक और वीर सेनानी को खो दिया था। चित्र में उस शहीद की अंत्येष्टि के समय तिरंगे में लिपटे उसके शरीर के आस-पास उसके परिजन, मित्र और हज़ारों की संख्या में न जाने कितने लोग उसे श्रद्धांजलि देने को खड़े थे।

मैंने उस अमर शहीद का नाम पढ़ा - 'लेफ्टीनेंट सुशील खजुरिया'। बहुत सोचा, नहीं जानती उसे, कभी नहीं मिली उससे, किन्तु मन में इतनी पीड़ा हुई कि सोचने लगी,'काश मैं भी वहाँ उसे श्रद्धांजलि दे सकती, शायद उसकी माँ से मिलती, कुछ सांत्वना दे सकती'। ना जाने क्या-क्या सोचती रह गई। पर, सात समंदर पार की दूरी पाट नहीं पाई। केवल नम आँखों से उस नवयुवक शहीद को मौन श्रद्धांजलि दी।

उस वर्ष तो नहीं किन्तु अगले वर्ष मेरा जम्मू जाना हुआ। मेरे मन मस्तिष्क पर सुशील खजुरिया का चित्र तो अंकित था ही। अत: मैंने वहाँ जाते ही सुशील के परिवार से मिलने का यत्न किया। एक रविवार को मैं सुशील के बड़े भाई मेजर अनिल खजुरिया के निवास स्थान पर आमंत्रित थी। वहीं पर सुशील के माता-पिता भी रह रहे थे। जाने से पहले मैं स्वयं से ही जूझ रही थी। मन में कई प्रश्न थे, 'क्या पूछूँगी, कैसे मिलूँगी। पता नहीं उनकी मनोदशा कैसी होगी'। आदि -आदि।

घर के द्वार तक पहुँचते ही मुझे किसी महिला द्वारा 'गायत्री मन्त्र' के सस्वर पाठ के मधुर स्वर सुनाई दिए। सुशील के पिता और भाई ने मुझे अंदर बिठाया। माँ अंदर आई और मेरे गले लग कर सुबकने लगीं। सैनिक पत्नी होने के नाते मैं भी स्वयं को सुशील की माँ जैसी ही मानती थी। हम दोनों कुछ पल यूँ ही चुपचाप गले लगी रहीं। धीरे से मैंने उन्हें बिठाते हुए कहा, ''मैं बहुत दूर से आपसे मिलने आई हूँ। जब से समाचार पत्रों में मातृभूमि की रक्षा के लिए सुशील जैसे योद्धा के बलिदान की गाथा पढ़ी है, मैं आपसे मिलना चाहती थी।''

मेरे दोनों हाथ थाम कर अश्रुसिक्त स्वर में कहने लगीं, ''बहुत अच्छा किया आप आईं। मुझे भी सुशील के विषय में बात करके कुछ शान्ति मिलती है। लगता है वो यहीं है, मेरे आस-पास।''

वातावरण कुछ सहज हो गया था। मैंने पूछा, ''क्या आप हर संध्या को गायत्री मन्त्र का

संपर्क :
Shashi Padha
10804, Sunset hills Rd,
Reston Virginia 20190
ईमेल : shashipadha@gmail.com

पाठ करती हैं?''

वे कहने लगीं, ''मेरे पति, मेरे तीनों बेटे और अब बेटी भी भारतीय सेना में ही हैं। उन सब की रक्षा के लिए एक यही तो कवच है मेरे पास। यही मेरा नियम है।''

उनकी गोदी में दो साल का उनका पोता हृदान बैठा था। उसे स्नेह से देखते हुए मैने पूछा, ''क्या आप सुशील को भी ऐसे ही गोद में बिठाकर पाठ करती थीं?''

मन के किसी कोने में झाँकते हुए कहने लगीं,''नियम तो वर्षों से यही रहा है, हमारे संस्कार ही ऐसे हैं।''

कुछ पल रुक कर वो कहने लगीं, ''सुशील मेरा सब से छोटा बेटा था। बचपन से ही उसे फौज में भर्ती होने की ललक थी। हमने कहा भी कि अब हम वृद्धावस्था में प्रवेश कर रहे हैं, तुम्हारे दोनों बड़े भाई भी घर से दूर रहते हैं। तुम कोई सिविल की नौकरी कर लो, हमारा सहारा बनो। लेकिन वो तो छुटपन से ही पहले पिता की और फिर भाई की वर्दी पहन कर भागता-दौड़ता था। उसे बस फौज में भर्ती होने की धुन सवार थी।''

इसी बात को आगे बढ़ाते हुए उनके पिता सोम नाथ जी (रिटायर्ड नायब सूबेदार) बोले, ''बचपन से ही ज़िद्दी था, बस अपनी बात ज़रूर मनवाता था।'' यह सुन कर अब हम सब हँसने लगे।

सुशील की ट्रेनिंग के विषय में बताते हुए वो बोले, ''ट्रेनिंग के बाद जब हम उसकी पासिंग ऑउट परेड में गए तो बड़े गर्व से मुझे कहने लगा,'' डैडी, मैंने की न अपनी ज़िद्द पूरी। पर डैडी, बड़ा रगड़ा लगा।'' उसका संकेत शायद इस कठिन ट्रेनिंग के दौरान होने वाली रगड़ा पट्टी की ओर था। इसी अवसर पर सुशील के कमांडिंग अफसर ने उनसे कहा था ''लोहे जैसा जिगरा है आपके बेटे का। You should be proud that you have a brave son like him. ऐसा बेटा अगर हर घर में हो तो हिन्दोस्तान का कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता।''

मेरे सामने सुबह-शाम कड़ी मेहनत करते हुए एक दुबले-पतले और चुस्त शरीर वाले नवयुवक की मूर्त आ गई।

और क्या-क्या शौक थे आपके बेटे के?'' मेरा अगला सवाल था।

पिता कहने लगे,'' बास्केट बॉल, हॉकी, फुटबॉल, बॉक्सिंग, सभी खेलों में उसकी रुचि थी। लेकिन जब घर आता था तो बस अपनी दादी और माँ की बहुत सेवा करता था। दादी माँ के ठाकुर द्वारे में उनके साथ बैठ जाता था। एक बार जब दादी वैष्णों देवी की कठिन चढ़ाई नहीं चढ़ पाईं तो उनको अपनी पीठ पर उठा कर दर्शन करा लाया। सेवा भाव उसमे कूट-कूट कर भरा हुआ था। जब भी छुट्टी आता तो अपनी क्लासफैलो लड़की की बीमार माँ का इलाज करवाता था। उस परिवार में और कोई नहीं था। अतः, उनके घर के काम काज भी कर देता था। बहुत से गरीब बच्चों की पढ़ाई का शुल्क उनके स्कूल में दे आता था।''

मन में विचार आया कि इसी सेवा भाव के कारण ही तो वो भारत माँ की रक्षा के लिए पूर्ण रूप से समर्पित था।

पास बैठी सुशील की भाभी इशिका ने बड़े लाड़ के साथ उसके व्यक्तित्व के एक और रूप को उजागर किया। कहने लगीं, - सजने का बड़ा शौक था उसे फैशनेबल कपड़े पहन कर, मेरे सामने खड़े हो कर पूछता, ''भाभी बताओ मैं कैसा लग रहा हूँ। मेरी कुछ तो तारीफ़ करो।''

मैंने सामने की दीवार पर टँगी सुशील की तसवीर की ओर देखा जिसमें पूरी वर्दी में सजा संवरा वो मुस्कुरा रहा था, मानों पूछ रहा हो, ''मैं कैसा लग रहा हूँ ?'' सचमुच बहुत सुन्दर तसवीर थी उसकी।

मैंने उनके पिता से अगला प्रश्न किया ''आख़िरी बार आप सब कब मिले थे उससे?''

अपने पुत्र की तसवीर की ओर स्नेह भरी दृष्टि से देखते हुए वे बोले, ''30 दिन की छुट्टी पर आया था, पाँव में चोट भी लगी हुई थी। जैसे ही उसे पता चला कि उसकी टीम को कश्मीर घाटी के कुपवाड़ा क्षेत्र के जंगलों में छिपे आतंकवादियों के ठिकानों को नष्ट करने के लिए भेजा जा रहा है, बस उत्तेजित हो गया। बोला, ''पैर खराब है तो क्या हुआ, मेरे साथी अभियान में जा रहे हैं, मैं घर नहीं बैठ सकता। और अगले दिन ही हवाई टिकट लेकर अपनी यूनिट में चला गया।''

मन में विचार आया, 'ऐसे कर्त्तव्य निष्ठ सैनिकों के कारण ही आज भारत की सीमाएँ सुरक्षित हैं। पास ही खड़े सुशील के सहायक 'प्रीतम' ने मुझे बताया कि वो उनका सामान लेकर सड़क के रास्ते यूनिट पहुँचा लेकिन अपने 'साब' से मिल नहीं पाया। वे अभियान में चले गए थे। सुशील के शहीद होने के बाद उनकी पलटन ने अभी तक 'प्रीतम' को उसके माता-पिता के पास रहने की अनुमति दे रखी थी।

उसकी ओर देखते हुए उनकी माँ बोलीं, ''इसके विषय में सुशील हमेशा कहता था, इसे अपना बेटा ही मानना। इसको बस मुझे ही समझना। इतना स्नेह था उसे अपने साथ के सैनिकों से।''

मैं समाचार पत्रों में भारतीय सेना की '18 ग्रनेडियर पलटन' के लेफ्टिनेंट सुशील और उसकी घातक टीम की आतंकवादियों के साथ कई दिन तक चलने वाली मुठभेड़ के विषय में पढ़ चुकी थी। किन्तु उनके पिता ने जो विवरण दिया, उससे कई बातें स्पष्ट हो रहीं थी। जैसे सब कुछ सामने ही घट रहा हो।

उन्होंने कहा,''वो उस क्षेत्र में जुलाई के महीने में पहले भी दो अभियानों में भाग ले कर सफलता प्राप्त कर चुका था। उस जंगल के चप्पे-चप्पे से परिचित था वो। इस बार सुशील के साथ 'स्‍ ञ्ञ स्र (स्पेशल टास्क फ़ोर्स)' के जवान भी थे। सूचना यह थी कि कुपवाड़ा जिले के 'कोपरा मलियाल' क्षेत्र के सघन जंगलों में लगभग पाँच - छह आतंकवादी बहुत से अस्त्र-शस्त्रों के साथ प्राकृतिक गुफाओं में छुपे हुए थे, और वे भारतीय सेना तथा निरीह लोगों पर प्रहार करने की योजना बना चुके थे। सुशील आरम्भ से ही घातक टीम का कमांडर रह चुका था। इस बार टीम की तैयारी में इसने पुनः अपने आप को वालंटियर किया। ब्रिगेड कमांडर ने अभियान आरंभ होने से ठीक पहले सब सैनिकों में जोश भरते हुए कहा-''खज्जू, तुम पहले भी इस जंगल में दो अभियानों में सफल हो कर आए हो।

किन्तु इस बार ऐसा सबक सिखाना है कि शत्रु फिर से इस जंगल में आने की हिम्मत न करें। बस उनका पूरी तरह से सफाया करना है।'' क्योंकि सुशील के पिता स्वयं एक सेवानिवृत्त सैनिक हैं, वो उस मुठभेड़ का ऐसा विवरण दे रहे थे जैसे यह सब उनकी आँखों देखी हो। कहने लगे, ''पूरा सफ़ाया ही किया था सुशील और उसकी टीम ने। यह घमासान मुठभेड़ पाँच दिन तक लगातार चलती रही। इसमें उनकी टीम ने पाँच तंकवादियों को मार गिराया। लेकिन एक आतंकवादी किसी प्राकृतिक गुफा में छिप कर बैठा रहा। वहाँ घना जंगल था और केवल अनुमान से ही आगे बढ़ा जा सकता था। जैसे ही सुशील अपनी टीम के साथ जंगली नाले से होते हुए शत्रु के छिपने के ठिकाने तक पहुँचे, छिपे हुए आतंकवादी ने इन पर घातक प्रहार किया, जिसमें इनकी टीम के दो जवान शहीद हुए थे। अपने शहीद साथियों के मृत शरीर को सुशील अपने कैम्प तक ले आए थे। लक्ष्य की पूर्ति पूरी तरह से अभी तक नहीं हो पाई थी। एक या दो आतंकवादी अभी तक कहीं छिपा हुए थे। सुशील और उनके साथी रवि कुमार एक बार फिर छिपे हुए आतंकवादी की टोह लेते हुए उनके छिपने के स्थान तक पहुँचे। आतंकवादी उस प्राकृतिक गुफा के द्वार से आसानी से इन्हें देख सकता था। उसने इन दोनों पर लगा तार गोलियाँ दागीं। इनके साथी हवलदार रवि कुमार को गोली लगी और वो घायल हो गए। सुशील किसी भी तरह उन्हें अपने कैम्प तक पहुँचाना चाहते थे। उस समय उन्हें अपनी रक्षा की कोई चिंता नहीं थी। बस उन्हीं पलों में उस आतंकवादी ने सुशील पर गोलियाँ चलाई। एक गोली उनकी कनपटी पर लगी। वो अपने शहीद साथी को अपने कैम्प तक लाने में सफल तो हो गए थे, किन्तु गोली के आघात से उसी स्थान पर वीरगति को प्राप्त हो गए। उस रात भारत माँ ने और हमने अपने बेटे को सदा-सदा के लिए खो दिया।''

वीरता, निडरता, अदम्य साहस और कर्त्तव्य के प्रति दृढ़ निश्चय जैसे अप्रतिम गुणों के धनी उस वीर सेनानी की

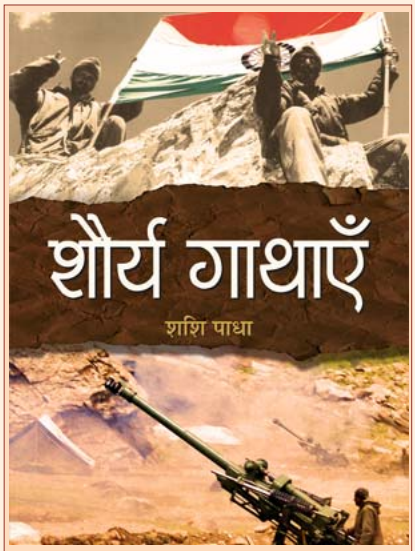

प्रकाशक: प्रभात प्रकाशन
4 / 19 आसफ़ अली रोड,
नई दिल्ली-110002
मूल्य: 250 रुपये

गौरवशाली गाथा ने हम सब को रोमांचित कर दिया था। मेरे सामने महाभारत के अभिमन्यु का चित्र आ गया। कैसे होंगे वो ओज और संकल्प के क्षण जब अपनी जान की चिंता से परे, अपने साथी की जान बचाने की चिंता हो।

उनकी माँ निर्मला देवी अब बहुत गंभीर हो गईं थीं। उनके चेहरे पर अगाध पीड़ा के भाव अंकित हो गए थे। एक दीर्घ निश्वास लेकर बोलीं,'' बस 22 सितम्बर को गया था, 27 को ख़त्म।'' मैं कुछ देर उनका हाथ थाम कर चुपचाप बैठी रही। एक बेटे के खोने के दु:ख को वो कैसे झेल रही हैं, मैं उस समय देख रही थी।

पिता शांत और गर्वपूर्ण मुद्रा में बैठे थे। मैंने उन्हीं से पूछा,''आपकी उनसे बातचीत तो हुई होगी, आख़िरी बार कब बात हुई?''

अब उनकी आँखें भी नम थीं। बड़े ही भीगे-भीगे स्वर में उन्होंने कहा,'' 25 सितम्बर की सुबह उसका फ़ोन आया था। बोला, ''मैं जा रहा हूँ।''

''मैं जानता था कि सुशील एक बहुत ही कठिन अभियान के लिए जा रहा था। पिता होने के नाते मैंने उससे केवल यही कहा,''अपना ध्यान रखेयाँ बेटे, पता नईं ओ किन्ने न, साढ़े मकाए दे मुक़क्ने न या नेंई।'' इस बार वो अपन मातृ भाषा 'डोगरी' में बोल रहे थे। (बेटे, अपना ध्यान रखना, पता नहीं वो कितने हैं, पता नहीं वो सारे के सारे खत्म होंगे कि नहीं) बस सुशील ने बड़े ओज भरे शब्दों में यही कहा, ''डैडी, कुसा ने ते मुकाने न, उन मेरी बारी ए।'' (डैडी, किसी ने तो खत्म करना है उन्हें, अब मेरी बारी है)।

यही अंतिम बातचीत थी पिता और पुत्र के बीच। दो दिन तक पिता फ़ोन मिलाते रहे। किन्तु युद्धरत पुत्र फ़ोन कैसे उठाता ? नवरात्रि का पहला दिन था। परिवार को पता था कि सुशील उस घमासान मुठभेड़ में युद्धरत है। अत:, उस समय केवल ईश्वर से प्रार्थना ही एक मात्र संबल था उनके पास। माँ,पिता और भाभी ने वैष्णों देवी की मूर्ति के सामने सुशील की रक्षा के लिए अखंड ज्योत जलाई। प्रार्थना के क्षणों में ही उनके पास एक फ़ोन तो आया पर अत्यंत दु:खद समाचार लेकर।

''शेर की तरह था मेरा बेटा। निडर इतना कि डर भी उसके सामने काँपता था।'' इन गर्वपूर्ण शब्दों के साथ एक बहादुर सैनिक पुत्र को उसके धैर्यवान सैनिक पिता ने याद किया था।

कुछ देर तक उस कमरे में अभेद्य मौन छाया रहा। हम सब उस क्षण को अपने-अपने तरीके से जी रहे थे, जब उनको यह दु:खद समाचार मिला होगा। मैंने अब निर्मला जी की तरफ देखते हुए पूछा, ''आपसे क्या कह कर गया था, कब लौटेगा?''

कहने लगीं,'' छुट्टी आया था एक महीने की। अपने विवाह की तैयारियों में ही लगा रहा। मेरे लिए नई साड़ी और सैंडल लाया था। साड़ी तो उसने मुझे अपनी शादी में पहनने के लिए दी थी और देते हुए हँसते हुए कहने लगा, ''यही पहननी है आपने बारात में, आप सब से अलग दिखनी चाहिए, सुशील की माँ। और झट से दोनों पैरों को जोड़ कर खट्ट की आवाज़ करते हुए मुझे सैलूट किया था।''

अब वो फिर भावुक हो गईं थी। रुँधी आवाज़ में बोलीं,'' मैंने पहनी तो थी वो साड़ी, पर अवसर कोई और था। जब सुशील को उसकी वीरता के लिए राष्ट्रपति

द्वारा 'कीर्ति चक्र' प्रदान किया गया तो राष्ट्रपति भवन में वही साड़ी पहन कर गई थी।''

सुशील के बड़े भाई मेजर अनिल अब तक चुपचाप हमारी बातें सुन रहे थे। वो उस समय भारत की पूर्वोत्तर सीमाओं पर तैनात थे। और सुशील के बड़े भाई सुनील भी सेना की किसी और पलटन में सेवारत थे। अनिल ही सुशील के पार्थिव शरीर को वायुयान से अपने घर जम्मू लाये थे।

मैंने उनसे पूछा, ''आप और आपके बड़े भाई तो भारतीय सेना में हैं। क्या आपके परिवार के और भी युवक अभी भी सेना में भर्ती होने को इच्छुक हैं?''

उन्होंने बड़े संयत स्वर में उत्तर दिया, ''मैम हमारी बहन दीपिका 'बायो टेक्नॉलॉजि में एम.एस.सी कर रही थी। बस सुशील के बलिदान के बाद जाने उसे क्या सूझी, सारी पढ़ाई छोड़-छाड़ कर उसने भी एयर फोर्स ज्वाइन कर ली है। वो इस समय हैदराबाद में है। अगर आप कुछ दिन बाद आतीं तो वो भी छुट्टी लेकर आ रही है। आप उससे भी मिल लेती।''

मैंने समाचार पत्रों में दीपिका की तस्वीर देखी थी, जिसमें वो अंत्येष्टि के समय अपने भाई की टोपी अपने हृदय से लगाए शोकरत खड़ी थी। मुझे इस चित्र ने बहुत विचलित किया था। अब मुझे यह सुनकर खुशी हुई कि यह सैनिक परिवार अपने एक बेटे को खो देने के बाद भी देश की रक्षा के लिए कितना समर्पित है।

मेजर अनिल ने मुझे यह भी बताया कि सुशील की यूनिट हर साल ''कारगिल दिवस'' समारोह पर इनके परिवार को आमंत्रित करती है और इनसे सदैव संपर्क बनाए रखती है।

समय बहुत हो गया था किन्तु ऐसा लग रहा था कि बहुत कुछ पूछना बाकी है। मैंने पूछा, ''क्या राजकीय सरकार ने भी उनकी स्मृति में कुछ विशेष किया?''

बड़े ही निराशा भरे स्वरों में सुशील के पिता ने बताया, ''उसकी अंत्येष्टि पूरे सैनिक सम्मान के साथ जम्मू के 'साम्बा क्षेत्र' में हुई थी, जिसमें दूरदर्शन और समाचार पत्रों से जुड़े बहुत से लोग आए थे। किन्तु, दु:ख की बात यह है कि राजकीय सरकार की ओर से चीफ मिनिस्टर का एक फ़ोन तक नहीं आया। तब जाकर मन कई बार पूछता है,किसलिए, किसके लिए ?''

यही प्रश्न तो मैं देश के नेताओं से अनवरत पूछती रहती हूँ। कब और कौन देगा इन प्रश्नों का उत्तर!

मुझे इस बात का गर्व है कि शहीद सैनिकों की स्मृति में उनकी यूनिट और उनके परिवाए के सदस्य उनके बलिदान की ज्योत को जलते रहने के लिए सदैव प्रयत्नरत रहते हैं।

मैंने अनिल से पूछा ''आपने उनकी स्मृति में क्या कोई ऐसा स्थल, स्कूल या कुछ और बनवाया है जिसे देख कर भावी पीढ़ी कुछ प्रेरणा पा सके?''

अनिल ने मुझे बताया, ''मैम, साम्बा के पास हमारे गाँव में मेरे चाचा की कुछ पैतृक ज़मीन थी। सुशील के चाचा ने और हमारे पूरे परिवार ने उस ज़मीन पर एक सुन्दर सा बाग लगाया है। हमने और गाँव के अन्य लोगों ने उस वीरभूमि पर सैकड़ों पेड़ रोपे हैं। गाँव के स्कूल के बच्चे वहाँ जा के खेलते भी हैं और श्रमदान भी करते हैं।''

उनकी माँ ने ममता भरी वाणी में कहा,''मुझे वहाँ के हर पेड़ में 'वो' ही दिखाई देता है। मुझे बहुत अच्छा लगता है वहाँ समय बिताना।''

उनकी गोद में उनका पोता नन्हा हृदान खेल रहा था। उसकी ओर स्नेह भरी दृष्टि से देखती हुई वे बोलीं, ''मेरे पास अब यह है, पूरा परिवार है, पर ना तो मैं सुखी हूँ ना दुखी।''

मैं जानती हूँ इस वीतराग की अवस्था को। सैनिक पत्नी हूँ ना। ऐसी कितनी ही सैनिक पत्निओं, माताओं और बहनों के दु:ख को उनके साथ मिल कर जिया और भोगा है मैंने। उठने लगी तो निर्मला जी ने मेरे दोनों हाथ पकड़ कर बड़े स्नेह के साथ कहा, ''चलो हमारे गाँव, वहाँ आपको सुशील का बाग दिखाऊँगी।''

मुझे इस आग्रह और निमंत्रण में धैर्य, अपनत्व और सांत्वना के जो स्वर सुनाई दिए, वे जीवन भर मेरे साथ रहेंगे।

****

ग़ज़ल

दीपक शर्मा 'दीप'

बोझिल हैं ये पलकें बाबू
आ जाओ तो छलकें बाबू
रूह ढँकी है तन-कपड़े से
घाव न मानें झलकें बाबू
ऊपर-ऊपर पर्वत-सी मैं
भीतर झरने ढलकें बाबू
थक के सोतीं आहट पा के
खुल जाती हैं पलकें बाबू
प्रीत न जाने क्या चाहे है
जिधर निहारूँ झलकें बाबू

****

था करम आपका मोहल्ले में
मैं नहीं चल सका मोहल्ले में
जो ज़रूरत थी, वो ज़रूरत है
और सब हो गया मोहल्ले में
आपने, मैंने और हम सब ने
कुछ बदलने दिया मोहल्ले में
इस मोहल्ले में भी मोहल्ले हैं
आपने क्या किया मोहल्ले में
शक्ल उतरी है, लड़खड़ाते हो
यार क्या खा लिया मोहल्ले में

****

आपका मामला नहीं छूटा
ओ हमारा गला नहीं छूटा
ईंट-पत्थर तलक़ से रगड़ा है
इस क़दर था जला नहीं छूटा
आपके ज़हन में तहे-तह है
मैल, काफ़ी मला नहीं छूटा
छूट जाने को क्या नहीं छूटा
सिर्फ़ ये मशग़ला, नहीं छूटा
कैसे कैसे तो छूट निकले 'दीप
और अच्छा भला नहीं छूटा

****

संपर्क : मकान संख्या - 343-ए पेप्टेक सिटी, पन्ना रोड, ग्राम - सोहावल, सतना (मध्य प्रदेश), पिन - 485441

'कफ़न' कहानी : मृत्यु नहीं, जीवन की कहानी है

कमल किशोर गोयनका

'कफ़न' (दिसम्बर, 1935) कहानी प्रेमचंद की सबसे अधिक चर्चित विवादास्पद एवं लोकप्रिय कहानी है। 'कफ़न' कहानी पर जितने दृष्टिकोणों, विचारों और वादों से विचार-विवेचन हुआ है, यदि उसे यहाँ उद्धृत किया जाए तो एक पूरी पुस्तक ही तैयार हो जाएगी। इन सभी में राजेन्द्र यादव के इस मत की विवेचन अधिक हुई है कि 'कफ़न' हृदय-स्तब्धता या विजड़ित संवेदना की कहानी है। इस स्थापना के दो आधार हैं-एक, आलू खाने के लालच में घीसू-माधव का बुधिया को मरने देना, और दूसरा, दोनों का कफ़न के पैसों से शराब पीना और मस्ती में झूमना-नाचना। ये दोनों ही अमानवीय एवं संवेदन शून्यता की घटनाएँ हैं, परन्तु कहानी का सारा वातावरण ऐसा नहीं है। उसमें संवेदना और मानवीयता से परिपूर्ण प्रसंगों की कमी नहीं है। घीसू में हमदर्दी का भाव है। उसकी औरत मरी थी तो वह तीन दिन तक उसके पास से हिला भी नहीं था। वह माधव से प्रसव-वेदना से चीखती बुधिया को देखने-सँभालने को कहता है। बुधिया मरती है तो पड़ोसी सांत्वना देते हैं और गाँव की नर्म दिल वाली स्त्रियाँ आँसू बहाने आती हैं तथा गाँव के दूसरे लोग कफ़न तथा लकड़ी को एकत्र करने में मदद करते हैं। यह सब गाँव की सामूहिक संवेदना का प्रमाण है। माधव का दो बार रोना भी भावावेग ही है। हँसना और रोना दोनों ही मनुष्य की संवेदनशीलता के अंग हैं। 'गोदान' (जून, 1936) में प्रो. मेहता यही बात गोविन्दी से कहता है, ''मैं कहता हूँ, अगर तुम हँस नहीं सकते और रो नहीं सकते, तो तुम मनुष्य नहीं हो, पत्थर हो।'' प्रेचंद की भी एक लेखक के रूप में यही राय है। उन्होंने 'हंस' के मई 1935 के अंक में लिखा था कि साहित्य भावुकता की वस्तु है, लेकिन आदर्श साहित्य वही है जिसमें बुद्धि और भावुकता का कलात्मक सम्मिश्रण होता है। यदि रचना में हँसने और रोने के भावुक क्षण नहीं है तो ऐसा सूखा साहित्य अगर अमृत भी हो तो पड़ा-पड़ा भाप बनकर उड़ जायेगा और जनता के मनोभावों का स्पर्श भी न कर सकेगा। स्पष्ट है, प्रेमचंद अपनी किसी भी रचना को संवेदना-शून्य नहीं बनाना चाहते हैं। माधव के व्यवहार और विचारों में तो मनोभावों और मनुष्यता का रंग है। वह पत्नी के प्रति कृतज्ञ है, क्योंकि उसके कारण ही उसे वह भोज मिला जो उम्र-भर न मिला था। वह 'दु:ख और निराशा' में चीख मार-मारकर रोता है यह सोचकर कि बुधिया ने जीवन में कितना दु:ख झेला है। उसका मनुष्यत्व एक भिखारी को देखकर जाग्रत होता है और वह बची हुई पूड़ियाँ उसे दे देता है और लेखक इस पर लिखता है कि उसे पहली बार 'देने' का गौरव, आनन्द एवं उल्लास का अनुभव होता है। यह आत्मिक गौरव और आह्लाद तो माधव को उस समय भी नहीं मिला था, जब वह मधुशाला में बैठकर जीवन की सबसे बड़ी लालसा पूरी कर रहा था। माधव की ये आनन्दानुभूति चाहे एक-दो क्षण लिए ही थी, परंतु लेखक उसके व्यक्तित्व के मानवीय तथा सकारात्मक पक्ष का उद्घाटन कर देता है। ये सारे प्रसंग 'कफ़न' कहानी को विजड़ित संवेदना की कहानी की स्थापना पर प्रश्न चिह्न लगा देते हैं।

'कफ़न' (दिसम्बर, 1935) कहानी में तीन परिच्छेद हैं, दो पात्र और दो ही रंगमंच हैं। कहानी की प्रमुख घटनाएँ गाँव और मधुशाला में घटित होती हैं। घीसू-माधव ही दोनों स्थलों पर कथा का विकास करते हैं, लेकिन उनकी मन:स्थिति, परिवेश और क्रिया-व्यापार भिन्न-

ए-98, अशोक विहार, फेज प्रथम,
दिल्ली-110052
मो. 9811052 469

भिन्न हैं। गाँव में चीख है, मौत है, अमानुषीय व्यवहार है और कफ़न के लिए पैसे एकत्र करने की भाग-दौड़ है, और मधुशाला में जीवन की जगह मौत को सम्मान देने पर आपत्ति है, मदिरा है, चिर अभिलाषित भोजन है, गौरव-आनन्द-उल्लास है, परलोक-वैकुंठ-आत्मा-परमात्मा में विश्वास है, नशे में अस्थिरता, विस्मृति और कृतज्ञता है और अन्त में कबीर का एक पद है जो धार्मिक कर्मकाड को असत्य कहता है। माधव मधुशाला में प्रवेश से पहले एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाते हुए कहता है, ''कैसा बुरा रिवाज है कि जिसे जीते जी तक ढँकने को चीथड़ा भी न मिले उसे मरने पर नया कफ़न चाहिए।'' यह हमारी सामाजिक-धार्मिक व्यवस्था की विडम्बना पर गहरा व्यंग्य है। यह कहानी में पहला बौद्धिक हस्तक्षेप है जो विचार के लिए एक सूत्र देता है। यह वाक्य जीवन और मृत्यु के संबंध में हमारी सामाजिक-धार्मिक धारणाओं पर आघात करता है। जीवन से अधिक समाज मृत्यु को सम्मान देता है तभी मृतक को नया कफ़न और जीवित को फटा वस्त्र भी उपलब्ध नहीं कराता है। यह माधव ही नहीं, कहानी भी यह प्रश्न उठाती है कि हमारे समाज में जीवन का महत्त्व एवं सम्मान मृत्यु से कम क्यों है? हमारी यह परंपरा, विश्वास और कर्मकांड जीवन विरोधी है, क्योंकि मृत्यु जीवन से श्रेष्ठ नहीं है। वास्तव में, जीवन ही श्रेष्ठ है और वही सत्य है। जीवन है तो अभिलाषाएँ और लालसाएँ भी होंगी और उन्हें तृत्त्व एवं पूर्ण करने के लिए उचित-अनुचित साधनों का उपयोग होता ही रहेगा।

घीसू-माधव के अन्तर्मन की दुनिया कफ़न के लिए एकत्र पाँच रुपये हाथ में आते ही बदलने लगती है। कफ़न खरीदने का विचार कमज़ोर होता जाता है और जीवन की सबसे बड़ी लालसा पंख फड़फड़ाने लगती है। इस लालसा के प्रकट होने से पहले वे नया कफ़न खरीदने के अनौचित्य पर तीन तर्क प्रस्तुत करते हैं-रात को कौन कफ़न देखता है, इसलिए कफ़न कैसा भी हो सकता है, जीवित हो जब चीथड़ा भी नसीब नहीं है तो मृतक को नया कफ़न क्यों मिलना चाहिए तथा कफ़न तो लाश के साथ जल जाता है तो वह नया हो या पुराना, क्या फर्क पड़ता है। इन्हीं विचारों के साथ वे बाज़ार जाते हैं तथा कफ़न के लिए तरह-तरह के कपड़े देखते हैं, परंतु उन्हें कोई कपड़ा जँचता नहीं है, और वे लेखक के अनुसार, 'दैवी प्रेरणा' और 'पूर्व निश्चित व्यवस्थानुसार' एक मधुशाला के अन्दर चले जाते हैं। यहाँ लेखक के ये दोनों कारण बुद्धिगम्य नहीं हैं, क्योंकि कोई देवी प्रेरणा तथा पूर्व निश्चित व्यवस्था के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करेगा, और यदि कोई दैवी शक्ति है भी तो वह क्यों मृतक के अन्तिम संस्कार की अपेक्षा उन्हें क्यों मदिरालय में भेजना चाहेगी? लेखक ने प्रकट में कोई तर्कसंगत कारण नहीं दिया है, परंतु कहानी के आरंभ में हमें एक सबल कारण मिलता है। घीसू आलू खाते समय ठाकुर की बारात में खाई दावत का स्वाद ले-लेकर बखान करता है और माधव इस भोज का मन-ही-मन आनन्द लेता है। इससे माधव के मन में भी ऐसे ही भोज की लालसा उत्पन्न होती है। वह कहता भी है, ''अब हमें कोई ऐसा भोज नहीं खिलाता।'' माधव की यह लालसा कहानी की भावी घटनाओं को रचती है और उसे चरम परिणति तक ले जाती है। माधव की इस लालसा के उत्पन्न होने के बाद ही बुधिया की मौत होती है, कफ़न के पाँच रुपये बाप-बेटे के हाथ में आते हैं और उनके अन्तर्मन में उभरी लालसा उन्हें मधुशाला के तृप्ति-स्थल पर जैसे खींचकर ले जाती है। घीसू तो ठाकुर की दावत में भरपेट स्वादिष्ट भोज का आनन्द ले चुका था, परन्तु दोनों के मन एक जैसे ही विचार से आन्दोलित होते हैं। लेखक लिखता है, ''दोनों एक-दूसरे के मन की बात ताड़ रहे थे।'' दोनों के मन में मधुशाला कौंध रही थी और दोनों एक-दूसरे की इस लालसा को समझ रहे थे। इस कारण वे मधुशाला के सामने पहुँचकर एक साथ अन्दर चले जाते हैं।

घीसू-माधव मधुशाला में पहुँचकर ज़रा देर के लिए असमंजस में खड़े रहते हैं। उनके अन्दर आने तक उनके मन में कोई ग्लानि, पश्चाताप, दुविधा या अपराध-बोध नहीं है, परन्तु शराब की बोतल खरीदने से पहले असमंजस में खड़े रहते हैं। लेखक इस 'असमंजस' शब्द से उनके अन्तर्द्वंद्व को प्रकट करता है कि कफ़न के पैसों से शराब पीना पाप-कर्म तो नहीं है? घीसू तो बहुत दुनिया देख चुका था, लेकिन माधव तो ऐसा कार्य पहली बार करने जा रहा था। इसलिए लेखक माधव के मन में पाप-बोध उत्पन्न करता है, क्योंकि मधुशाला का पूरा आनन्द तो पापी मन से लिया नहीं जा सकता था। इसी कारण माधव अपनी 'निष्पापता' के लिए देवताओं को साक्षी बनाता है। कहानीकार ने लिखा है, ''माधव आसमान की तरफ़ देखकर बोला, मानों देवताओं को अपनी निष्पापता का साक्षी बना रहा हो।'' माधव के मन में पाप-चेतना नहीं होती तो लेखक यहाँ 'निष्पापता' के लिए देवताओं तक का प्रमाण क्यों देता? माधव अपने जीवन की सबसे बड़ी लालसा की तृप्ति के इस दुर्लभ अवसर का आनन्द पाप की छाया में नहीं ले सकता था। लेखक के अनुसार, मधुशाला वैसे भी अपने प्रेमियों को जीवन की बाधाओं तथा जीवन-मरण की स्मृति तक से मुक्त कर देती है। मधुशाला में जीवन का निर्द्वंद्व आनन्द है और बाहरी संसार के घोर अभावों, कष्टों और पापों का विस्मरणस्थल है। घीसू-माधव के मधुशाला में आते ही उनके मन से मृत्यु-शास्त्र हट जाता है। वे अब मौत का मर्सिया नहीं गाते हैं, बल्कि वे जीवन की नई सरगम छेड़ते हैं। इसमें जीवन की अतृप्त एवं दबी लालसाएँ हैं और उनकी तृप्ति का आनन्द है। यहाँ की आनन्दानुभूति और उल्लास मृत्यु को पराभूत करके उसे चेतना से ही लुप्त कर देता है और यहाँ तक भी अस्तित्व-बोध की चेतना भी यहाँ के सुख-सागर में विलीन हो जाती है।

घीसू और माधव का मधुशाला में प्रवेश भीतरी और बाहरी सभी दबावों से मुक्ति का प्रमाण है। उनके लिए पारिवारिक दायित्व, सामाजिक मर्यादाएँ एवं नैतिक बोध जैसे निरर्थक एवं प्राणहीन हैं। वे जब शराब की बोतल बीच में रखकर पीने बैठते हैं तो वे अपनी व्यक्तिगत लालसाओं की तृप्ति का अनुष्ठान करते हैं। निर्मल वर्मा ने लिखा भी

है कि दो हिन्दुस्तानी पियक्कड़ों का शमशान की छाया में हुआ यह मुक्ति-समारोह है। वे जैसे ही कफ़न के पैसों से शराब का कुल्लड़ मुँह में लगाते हैं, उसी क्षण हिन्दी साहित्य में व्यक्ति अपनी स्वतंत्रता का स्वाद चखता है। उन्हें यह मुक्ति और स्वतंत्रता बौद्धिक कौशल एवं आत्म-छल से मिलती है।

वे परिवार और गाँव वालों दोनों के अपराधी हैं। वे पहले अपराधी अपने परिवार के हैं। बाप-बेटा दोनों घर की बहू को मरने देते हैं और वह भी प्रसव-पीड़ा में चीखती-चिल्लाती बहू को, जो इनकी उपेक्षा और असहयोग के कारण पेट के शिशु के साथ मर जाती है। वे इस अमानुषीय अपराध के दोषी हैं। दूसरे वे गाँव वालों के दोषी हैं। गाँव के लोग उन्हें बुधिया के कफ़न के लिए पाँच रुपये एकत्र करके उनके हाथ में देते हैं, परन्तु वे विश्वासघात करते हैं और मधुशाला में जाकर शराब पीते हैं। गाँव के लोग तो उन्हें पहले से ही कामचोर, आलसी, बेशर्म और झूठे मानते थे और वे भी इस सत्य को जानते थे। अत: उन्हें कोई नया विश्वासघात करने में कोई भय नहीं था। वे जानते हैं और घीसू माधव को समझाता भी है कि गाँव वाले ही दुबारा कफ़न की व्यवस्था करेंगे। इसलिए कफ़न के पैसों से शराब पीना अनुचित इसलिए नहीं है, क्योंकि बुधिया को तो कफ़न मिल ही जाएगा। उनका यह दृढ़ विश्वास उन्हें जीवन के निकृष्टतम अपराध करने के दंश से बचा लेता है। वे मृतक को नया कफ़न देने की धार्मिक, सामाजिक एवं नैतिक अनिवार्यता के दायित्व से सभी स्वयं को मुक्त कर लेते हैं और उसके अपराध-बोध से भी अपना बचाव कर लेते हैं। इसी कारण वे निर्द्वंद्व और निश्चिंत होकर मधुशाला में पहुँचते हैं और अपने जीवन की सबसे बड़ी लालसा की पूर्ति के लिए बोतल खरीदकर पीने बैठते हैं। इस प्रकार उनकी छलपूर्ण तर्कशीलता उन्हें निरपराधी रूप में मधुशाला तक पहुँचा देती है।

घीसू-माधव मदिरालय में बोतल लेकर बैठते हैं तो उनके मनोभाव, व्यवहार तथा विचार में परिवर्तन होता है। इस अंश की मूल घटना यह है कि वे अपने जीवन की सबसे बड़ी लालसा की पूर्ति के लिए मन

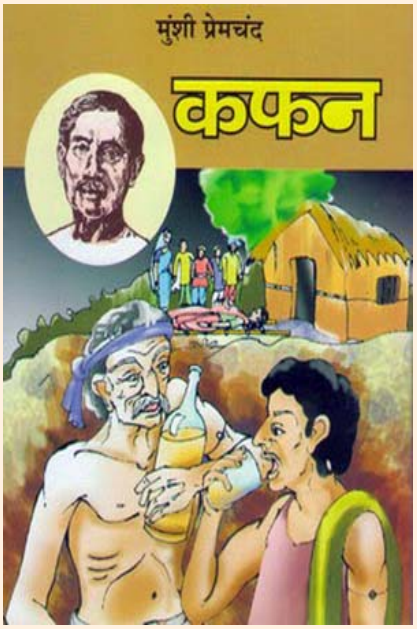

भरकर शराब पीते हैं, भोजन करते हैं, बचा हुआ भोजन भिखारी को देते हैं और आनन्द विभोर होकर मस्ती में गाते, नाचते, कूदते-भटकते एवं अभिनय करते हैं तथा 'नशे से बदमस्त' होकर गिर पड़ते हैं। यह उनके जीवन की सुखानुभूति की चरमावस्था है, जब जीवन के सारे सुख-दु:ख मिट जाते हैं, सांसारिक चेतना लुप्त हो जाती है और रहता है केवल आत्मिक आनन्द। इस अनुभूति में एक तो मधुशाला का मादक वातावरण एवं मदिरापान से होने वाली चेतना शून्यता सहायक बनी है, दूसरे वे धार्मिक एवं दार्शनिक विश्वासों तथा आस्थाओं के संसार में उतर कर स्वयं पापानुभूति से मुक्त करके निश्शंक एवं निर्द्वंद्व बनते हैं। लेखक ने स्वयं घीसू के 'दार्शनिक भाव' से बोलने तथा माधव पर 'श्रद्धालुता का रंग' चढ़ने का उल्लेख किया है, क्योंकि घीसू-माधव अब अपने पूर्व दुष्कर्मों और उनके दुष्परिणामों को धार्मिक-दार्शनिक शब्दावली में छिपाकर बुधिया को वैकुंड तक पहुँचा देते हैं। वे दोनों आत्मा-परमात्मा, परलोक, वैकुंठ, पाप-पुण्य, माया-जाल आदि धार्मिक-दार्शनिक शब्दों के प्रयोग से बुधिया की मौत को गौरवान्वित करते हैं और इनकी आड़ में वे एक बार फिर अपने पाप-कर्म को छिपा लेते हैं। घीसू-माधव के वार्तालाप में बुधिया का ही गुणगान है। बुधिया पुण्यवान् है, क्योंकि उसकी मृत्यु उनके लिए पुण्य-कर्म बनती है। उसकी मृत्यु से ही उन्हें शराब तथा स्वादिष्ट भोजन मिलता है जो उन्हें उम्र-भर नहीं मिला था। इससे घीसू की आत्मा तृप्त होती है और माधव की तो जीवन की सबसे बड़ी लालसा पूरी होती है। इन दोनों के लिए इससे बड़ा पुण्य बुधिया की ओर से क्या हो सकता था? बुधिया जब जीवित था तो इनका दोजख़ भरती थी और मरी तो इन्हें जीवन का सबसे बड़ा सुख दे गई। बुधिया निर्मल हृदय थी और मानवता उसकी जीवन-शैली थी। वह न किसी को सताती थी और न दबाती ही थी। अत: वह वैकुंठ न जाएगी तो कौन जाएगा? माधव इसीलिए पूरे विश्वास के साथ से कहता है, ''वह बैकुंठ में जाएगी दादा, बैकुंठ में जाएगी।'' माधव घीसू के सन्तोष के लिए एक और नया तर्क लाता है। वह कहता है कि बुधिया बैकुंठ न जायेगी तो क्या ग़रीबों को दोनों हाथों से लूटने वाले मोटे-मोटे लोग जाएँगे जो अपने पाप को धोने के लिए गंगा में नहाते हैं और मन्दिरों में जल चढ़ाते हैं। कहानी में इस कथन से कई अर्थ निकलते हैं। एक, ग़रीबों को लूटने वाले ये मोटे लोग सामाजिक अपराधी हैं। इनके पाप इतने भयानक और गंदगी से भरे हैं कि गंगा भी उन्हें निर्मल नहीं कर सकती है। दो, जो पापी यह समझते हैं कि गंगा पापों को धो देती हैं, वे तो अज्ञानी हैं। तीसरा, ऐसे मोटे पापियों और बुधिया में कोई समानता नहीं है। यह उनका कितना बड़ा बौद्धिक छल है कि ये मोटे-मोटे पापियों की तुलना अपने उस पाप-कर्म से नहीं करते हैं जो उन्होंने बुधिया और उसके पेट के बच्चे को मरने देने में किया है। वे उस बुधिया के साथ तुलना करते हैं, जो निष्पापी है और इनके शब्दों में पुण्यवान् है और उसे अवश्य ही वैकुंठ मिलेगा। घीसू के अनुसार वह भाग्यवान् भी है क्योंकि वह इतनी जल्दी संसार के माया जाल के बंधन तोड़कर चली गई। इस प्रकार वे किसी धर्म-गुरु अथवा पुरोहित के समान धार्मिक शब्दों और धारणाओं के द्वारा बुधिया को परलोक के सर्वोच्च स्थान पर पहुँचा कर स्वयं भी अपने जीवन का सबसे बड़ा सुख प्राप्त करते हैं। बुधिया तो इनके काल्पनिक परलोक के बैकुंठ में पहुँचती है लेकिन घीसू-माधव को अपने बैकुंठ जैसे सुखानुभव के लिए बुधिया के समान मरने की

आवश्यकता नहीं है। वे जीवितावस्था में ही अपने जीवन की सबसे बड़ी लालसाओं को पूर्ण करते हैं और अपूर्व उल्लास एवं आनन्द की अनुभूति करते हैं। असल में भाग्यशाली तो घीसू-माधव हैं जो मौत की काली छाया में भी जीवन का सबसे बड़ा सुख और आनन्द खोज निकलते हैं और बुधिया की मौत अपराध-दंश से भी अपने को बचा कर रखते हैं। यद्यपि उनकी यह आनन्दानुभूति अल्पावधि की है, परंतु वे क्षण उनके जीवन के सर्वोत्तम क्षण हैं। उनका यह सुख एकदम निजी है। वे ही उसके नियन्ता और नियोजक हैं। वे इसके लिए पारिवारिक दायित्वों एवं सामाजिक नैतिकता को नकारते हैं और लोक-परलोक आदि की धार्मिक एवं दार्शनिक शब्दावली का दुरुपयोग करके इस बाहरी दुनिया को एकदम अदृश्य कर देते हैं। प्रेमचंद की कहानियों में यह व्यक्ति की निजी सत्ता का आरंभ है।

प्रेमचंद चाहते तो कहानी का अन्त यहीं कर सकते थे, क्योंकि मृत्यु पर जीवन की विजय का उत्सव अपनी अन्तिम परिणति पर पहुँचकर मूर्छित होकर गिर पड़ता है। यह आनन्दानुभूति की चरम अवस्था है। जब अस्तित्व की संज्ञा भी शून्य हो जाती है। घीसू-माधव के लिए तो यह लोक में लोकोत्तर आनंद जैसा ही है, जो बुधिया के लोक से बैकुंठ यात्रा से कहीं श्रेष्ठ और अनुभूतिजन्य है। घीसू-माधव का आनन्द वास्तविक जगत् का आनन्द है और बुधिया का बैकुंठ कहाँ है, इसे कोई नहीं जानता है। प्रेमचंद इसी स्थिति को सिद्ध करने के लिए कबीर के पद की आरंभिक पंक्ति को उद्धृत करते हैं। घीसू-माधव कहानी के अन्त में 'नशे में बदमस्त' होकर गाते हैं- ''ठगिनी! क्यों नैना झमकावै! ठगिनी।'' कहानी में यह पद पूरा नहीं है, लेकिन 'अग्नि-समाधि' (जनवरी, १९२८) कहानी में इसे इस प्रकार दिया गया है :-

ठगिनी! क्यों नैना झमकावै!/कद्दू काट मृदंग बनावे, नीबू काट मंजीरा,/पाँच तरोई मंगल गावें, नाचे बालम खीरा।/रूपा पहिर के रूप दिखावे, सोना पहिर रिझावे,/गले डाल तुलसी की माला, तीन लोक भरमावे॥

कबीर की ठगिनी माया है, जो मनुष्य को अनेक रूपों में भरमाती है। इनमें धर्म के कर्मकांड और लोकोत्तर विश्वास भी भ्रमोत्पादक हैं। कबीर जिसे, 'गले डाल तुलसी की माला' से संबोधित करते हैं, उनमें पाप-पुण्य, आत्मा-परमात्मा, लोक-परलोक-बैकुंठ आदि हमारी परंपरागत धारणाएँ एवं विश्वास हैं, वे सब छलनाएँ हैं जो भरमाती हैं। इस संसार के अतिरिक्त और कोई पारलौकिक संसार नहीं है, इसलिए ऐसे सभी विश्वास भी सत्य नहीं है। इसलिए बुधिया की बैकुंठ यात्रा तथा माया-जाल का भंजन आदि में कोई सत्यता नहीं है, वे मिथ्या और भ्रामक हैं। सत्य है तो जीवन ही सत्य है। कहानी जिस कफ़न पर लिखी गई है, वह न खरीदा जाता है, न इस्तेमाल होता है। बुधिया का मृत शरीर बिना कफ़न के पड़ा रहता है, और न उसका अन्तिम संस्कार ही होता है, लेकिन वह कहानी में मृत्यु और जीवन के सत्यासत्य के बड़े सवालों से रूबरू करता है। कफ़न तो मृत्यु का साथी है, लेकिन लेखक कफ़न से ही जीवन का आनन्द-रस निकालता है। इस प्रकार कहानी में दो पक्ष हैं-एक मृत्यु और परलोक (बैकुंठ) का तथा दूसरा लोक तथा जीवन का। इन दोनों के द्वंद्व में मृत्यु पर जीवन की जीत होती है। अत: 'कफ़न' कहानी को मृत्यु पर जीवन की तथा परलोक पर लोक की विजय की कहानी मानना पूर्णरूप से औचित्यपूर्ण एवं तर्कसंगत है। जयशंकर प्रसाद ने एक स्थान पर लिखा है कि दु:ख दग्ध धरा और आनन्दपूर्ण स्वर्ग के एकीकरण का नाम ही साहित्य है। कहानी में बुधिया की जिस अमानवीय एवं हृदयद्रावक स्थिति में मृत्यु होती है, उससे अधिक दु:खद घटना और क्या हो सकती है? इसी प्रकार जयशंकर प्रसाद जिसे 'आनन्दपूर्ण स्वर्ग' कहते हैं, वह घीसू-माधव के मदिरापान की चरमावस्था के आनन्द के अतिरिक्त और क्या है? यही विरुद्धों का सामंजस्य है और यही प्रसाद की धरा और स्वर्ग का तथा दु:ख और आनन्द का एकीकरण है। इसमें प्रेमचंद अपनी परम्परानुसार मृत्यु को अवीकार तथा जीवन को स्वीकार करते हैं। 'कफ़न' (दिसम्बर, 1935) से लगभग दो वर्ष पूर्व लिखी गई उनकी कहानी 'रंगीले बाबू' (26 जनवरी 1933) में भी एक ओर मृत्यु है जो बुधिया की मृत्यु के समान ही भयावह एवं जीवटता है। कहानी में बाबू रसिकलाल के बेटे की बरात निकलने वाली है कि उसका देहान्त हो जाता है, परन्तु रसिकलाल उसकी अर्थी को दुल्हे के रूप में सजाकर, उसके सिर पर बेलों का मोर पहनाकर हाथी घोड़े, बैंड बाजों के साथ उसकी बरात निकालता है और अपने मित्र कथावाचक से कहता है, ''तुम भूल जाते हो लाला, यह विवाह का उत्सव है।'' हमारे लिये सत्य जीवन है, उसके सिवा जो कुछ है, मिथ्या है।'' यह मृत्यु परजीवन की अपराजेय शक्ति और आनन्द की विजय है। जीवन के अतिरिक्त जो कुछ भी है, ईश्वर, परलोक, बैकुंठ सब मिथ्या है। 'गोदान' में प्रो. मेहता गोविन्दी से ऐसे ही विचार कहता है, ''जो यह ईश्वर और मोक्ष का चक्कर है, इस पर तो मुझे हँसी आती है। वह मोक्ष और उपासना अहंकार की पराकाष्ठा है, जो हमारी मानवता को नष्ट किए डालती है। जहाँ जीवन है, क्रीड़ा है, चहक है, प्रेम है, वहीं ईश्वर है, और जीवन को सुखी बनाना ही उपासना और मोक्ष है।'' होरी की मृत्यु के समय में भी प्रेमचंद ने जीवन के ऐसे ही उल्लास और आनन्द को उद्घाटित किया है। उसके छोटे भाई हीरा को लौटने पर, जिसके कारण होरी विपत्तियों में घिरता चला गया, उसका विषाद एवं मृत्यु-बोध तथा जीवन में पराजित होने का भाव विजय के 'उल्लास, गर्व एवं पुलकता' में बदल जाता है और लेखक के अनुसार उसे स्वर्ग का सुख मिलता है। होरी अपनी इस सुखानुभूति में मौत को भूल कर, चाहे कुछ क्षणों के लिए ही सही, जीवन के इस आनन्द में मग्न हो जाता है और उसकी आत्मा आनन्दमय हो जाती है। स्वामी विवेकानन्द ने कहा था कि स्वर्ग का मार्ग नर्क से होकर जाता है। घीसू-माधव ऐसे ही नारकीय मार्ग पर चलकर अपने जीवन की सबसे अधिक सुखद एवं आनन्द की अनुभूति करते हैं जो उनके लिए उस क्षण जीवन का सर्वोत्तम एवं आत्मलीन करने वाला आनन्द था। अत: 'कफ़न' कहानी की आत्मा के सत्य को खोजने में हमें मध्यकाल

की उस भक्ति-भावना को भी ध्यान में रखना होगा, जिसमें मृत्यु-लोक के कष्टों और विपत्तियों से मुक्ति के लिए परलोक की सेवा-साधना का विधान था। तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' के 'किष्किंधा कांड' में सुग्रीव से यही कहलवाया है- ''तजि माया सेइअ परलोका/मिटहिं सकल भवसंभव सोका।'' प्रेमचंद की 'कफ़न' कहानी इसी मध्ययुगीन भक्ति-दर्शन के विरुद्ध आधुनिक चेतना की कहानी है कि परलोक की अवधारणा एवं विश्वास मिथ्या है, इसलिए उसकी कामना एवं उपासना निरर्थक है। हमें जीवन को ही सत्य मानना चाहिए। मैथिलीशरण गुप्त जैसा वैष्णव कवि भी भूतल को ही स्वर्ग बनाना चाहता है। प्रेमचंद के समय में पश्चिम में ईश्वर की मृत्यु की घोषणा हो चुकी थी और अपने देहान्त से पूर्व उन्होंने परिपूर्णानन्द वर्मा से कहा था कि उन्हें ईश्वर की सत्ता में विश्वास नहीं है, अर्थात् ईश्वर, परलोक या स्वर्ग के अस्तित्व में उनकी कोई आस्था नहीं थी। प्रेमचंद की दृष्टि यही थी कि मृत्यु एवं परलोक नहीं, जीवन ही वरेण्य है और जीवन ही इस संसार का सर्वांग सत्य है। कहानी में कबीर की उपस्थिति परलोक की सत्ता को चुनौती देती है और एक प्रकार से जीवन की सत्यता एवं श्रेष्ठता को स्थापित करती है और मृत शरीर को नया वस्त्र उपलब्ध कराने तथा जीवित मनुष्य को फटा चीथड़ा भी नसीब न होने का प्रश्न भी जीवन से अधिक मृत्यु को अधिक महत्त्व देने के धार्मिक विश्वास तथा पारलौकिक सत्ता के माया-जाल के तिलिस्म को निरावृत्त करके मृत्यु तथा उससे जुड़े स्वर्ग-नर्क, बैकुंठ-परलोक आदि की अवास्तविक कल्पना पर जीवन की वास्तविकता एवं श्रेष्ठता को स्थापित करती है। कहानीकार मृत्यु एवं परलोक का गौरव नहीं जीवन का सम्मान चाहता है और इसलिए वह 'कफ़न' कहानी को मृत्यु की कहानी न बनाकर जीवन की कहानी के रूप में रचता है। पराधीन भारत के मरणासन्न समाज को मृत्यु के अन्धकार-लोक एवं अस्तित्वहीन परलोक के स्थान पर जीवन के उल्लास की ही आवश्यकता थी।

****

लघुकथा

प्लान

कमल चोपड़ा

बच्चा सिर से पाँव तक एकदम ऊनी कपड़ों में एकदम पैक था। कुछ ही देर में श्रेया से अच्छी तरह घुल मिल गया था। उसकी मम्मी किसी ज़रूरी काम से कहीं गई हुई थी। वह कुछ देर के लिये उसे श्रेया के पास छोड़ गई थीं। मन ही मन खीझ उठी श्रेया। मेरी अपनी तबीयत ठीक नहीं है। टैन्शन, डिप्रेशन, सिरदर्द, घबराहट, बेचैनी, चक्कर और जाने क्या क्या। कितनी तो बीमारी लगी हुई हैं। साल भर से आठ नौ गोली रोज़ खानी पड़ती है। तीन-चार दिन से तो ऑफिस भी नहीं जा पा रही हूँ। ऊपर से यह बच्चा? पड़ोस के नाते रखना तो पड़ेगा.... बच्चा फ्लैट में इधर से उधर दौड़ता भागता फिर रहा था जैसे फ्लैट के हर कोने का निरीक्षण कर रहा हो।

जब पहली बार वह प्रेगनेन्ट हुई थी तब वह राहुल के साथ लिव-इन में रहती थी। राहुल अड़ गया-अभी हम बच्चा ऑफोर्ड नहीं कर सकते। अभी अबॉर्शन करवा लो। पहले हम लोग सैट हो लें। अभी कैरियर पर ध्यान दो। दो साल बाद शादी करेंगे। बच्चे-वच्चे की तब देखी जाएगी। शादी के बाद भी ऐसे मौके आए थे जब वह उम्मीद से हुई थी। लेकिन राहुल नहीं माना था। बच्चा प्लान करने का अभी हमारे पास वक्त नहीं है। अभी बच्चा हुआ तो जी.एम. की पोस्ट, बड़ी कोठी और लम्बी सी कार सभी प्लान धरे रह जाएँगे। श्रेया को भी लगा था राहुल सही कह रहा है। उसने भी अपनी पढ़ाई बच्चे पालने के लिये नहीं की है। उसे कुछ कर दिखाना है।

एम टी पी करवाने की ज़रूरत नहीं पड़ी थी। गोलियों से काम चल गया था।

एकाएक श्रेया को पड़ोसिन के बच्चे का ख़याल आया। साथ वाले कमरे से बच्चे की आवाज़ आ रही थी। श्रेया उसे देखने के लिये चली तो बच्चा पर्दे के पीछे से निकला और उसकी साड़ी पकड़ते हुए उसे डराते हुए बोला- हऊ! श्रेया खिलखिला पड़ी। शरारती मुझे डराता है? खिलखिलाते हुए वह फिर दूसरे पर्दे के पीछे जा छिपा। श्रेया उसे ढूँढ़ने लगी तो वह पीछे से फिर से डराते हुए खिलखिलाने लगा - हाऊ....ऊ.....ऊ!

बच्चे ने खेल ही बना लिया। वह भी बच्चे के साथ बच्चा बनकर खेलने लगी। बच्चा कभी आगे-आगे दौड़ता.... श्रेया पीछे....कभी वह श्रेया की कोई चीज़ उठाकर भाग जाता तो कभी बैड पर कलाबाज़ियाँ खाने लगता। श्रेया भी जैसे बच्चे के साथ बच्चा बन गई थी। शाम हो गई थी। बच्चे की माँ आ पहुँची थी। सॉरी ज़रा देर हो गई। इसने ज़्यादा तंग तो नहीं किया? बहुत शरारती है..... थैंक्यू सो मच.....! एकाएक श्रेया को याद आया। आज उसने कोई भी दवाई नहीं खाई है। उसे सिर दर्द, बेचैनी, घबराहट, स्ट्रेस, टेन्शन, डिप्रेशन कुछ भी महसूस नहीं हो रहा था। उसके हाथ-पाँव भी नहीं काँप रहे थे। उसका मूड भी अच्छा है।

राहुल ऑफिस से लौटा तो बोला-अब हमें ये सर्विस वर्विस छोड़कर अपनी कंपनी खोलने के प्लान पर काम शुरू कर देना चाहिए। श्रेया एकाएक उठी और अलमारी से गर्भनिरोधक गोलियाँ निकालकर डस्टबिन में फेंकते हुए बोली-अब बच्चे के सिवाय कोई प्लान नहीं।

****

1600/114, त्रिनगर, दिल्ली - 110035.
मो-9999945679

शंघाई की सड़कें और गलियाँ

अनीता शर्मा

(भूमंडलीकरण ने देश-विदेश के शहरों, कस्बों की सड़कों, गलियों और बाज़ारों को बहुत प्रभावित किया है। जबकि शहरों और कस्बों के दिल वहीं धड़कते हैं। पर्यटक विदेशों की बड़ी-बड़ी इमारतें, म्यूज़ियम और पर्यटन स्थल देखकर लौट आते हैं। उन स्थलों की रूह तक नहीं पहुँच पाते। हम अपने इस स्तंभ के अन्तर्गत आपको भिन्न-भिन्न देशों के मुख्य शहरों की सड़कों और गलियों में घुमाएँगे। चीन से हमारी प्रतिनिधि अनीता शर्मा आप को ले जाएगी शिंघाई की गलियों, सड़कों और बाज़ारों में। -संपादक)

यूँ तो शंघाई में घूमने आने वाले लोग कितना भी घूम लें, यहाँ घूमने का आनंद उतना ही आता है जितना पहले दिन से आना शुरू होता है। क्या कुछ नहीं है यहाँ; जो दुनिया के सबसे बड़े और अच्छे शहरों में होता है। पर शंघाई घूमने के असली मज़े का तब तक स्वाद पता नहीं चलता जब तक यहाँ की गलियाँ और बाज़ार न देखो; जिनमें शंघाई की रूह बस्ती है। आमतौर पर लोग जो शंघाई आते हैं, इस मज़े के बिना ही लौट जाते हैं और समझ लेते हैं इसे देख लिया। मुझे ऐसा लगता है किसी शहर को देखने के लिए बहुत अधिक समय नहीं चाहिए पर जब घूमने आते हैं तो समय की कमी हमेशा खलती है। पर शहर को तो कम समय में भी जाना जा सकता है और जब थोड़ा जान लें उस जगह को तो उससे अपनेपन का एहसास होता है पर यह एहसास गलियाँ और सड़कें ही दिलाती हैं न की बड़ी और मशहूर इमारतें; जिनकी जानकारी तो अंतरजाल पर बिखरी पड़ी है। एक ओर शंघाई में नएपन ने जगह ले ली है, और दूसरी ओर पुराने समय की छुअन भी बाकी है। बहुत से ऐसे कोने ढूँढ़ने से मिल जाते हैं, जो आपको अपने से लगेंगे.... तो चलो! मैं उन्ही कोनों, गलिओं और सड़कों पर आपको भी ले चलती हूँ।

सबसे पहले चलते हैं संसार की सबसे मशहूर सड़कों में से एक, और शंघाई के दिल में बसी सड़क पर। यह है नान जिंग रोड। नान जिंग ईस्ट और वेस्ट। यह सड़क जो कभी घोड़ों का रेस ट्रैक हुआ करती थी और इसका नाम पार्क लेन हुआ करता था; सन् 2000 में गवर्नमेंट के डिवेलपमेंट प्लान के तहत इसे विशेष पेडेस्टरियन स्ट्रीट का रूप दे दिया गया। अब यह शंघाई का मुख्य शॉपिंग सेन्टर है। यह 5.5 मीटर लम्बी सड़क दुनिया की सबसे लम्बी शॉपिंग रोड है। एक कहावत भी है कि अगर आप शंघाई आकर नान जिंग रोड नहीं घूमे तो आपने शंघाई देखा ही नहीं।

नान जिंग ईस्ट रोड : यह पैदल यात्री सड़क है और फैशनपरस्त जवानों की तो यह पहली पसंद है। यहाँ बहुत बड़े-बड़े शॉपिंग मॉल, पुरानी एवं प्रसिद्ध दुकानें कितनी ही विशेष चाइनीज़ सामान की दुकानें भी हैं। आप यहाँ घरेलू उपकरण, फिटनेस उपकरण दुनिया भर के ब्रांडेड कपड़े जूते कुछ भी खरीद सकते हैं; यदि आप खरीदारी के लिये नान जिंग जा रहे हैं, अगर आपकी किसी भी खरीदारी की योजना है तो पर्याप्त नकदी लाना मत भूलिए।

यदि आप चीनी संस्कृति और कला में रुचि रखते हैं तो विशेष दुकानों में आप सिल्क स्कार्फ, सुलेख, चित्र, पारंपरिक चीनी चिकित्सा, हस्तशिल्प और अन्य स्मृति चिह्न जैसे विभिन्न विशेष स्थानीय उत्पादों में से कुछ भी चुन सकते हैं; या फिर किसी कैफ़े या रेस्टोरेंट में मज़े लें या सड़क पर बने बेंच पर सुस्ता सकते हैं और सड़क की रौनक का नज़ारा देख सकते हैं। यह सड़क बंध पे जाकर ख़त्म होती है। सड़क में से निकलती हुई कई गलियाँ आपको साथ ही साथ पुराने शंघाई की झलक भी दिखा देती हैं।

अब बात करते हैं नान जिंग वेस्ट रोड की: यह रोड ब्रांडेड सामान खरीदने वालों के लिये मक्का है। बीते कुछ सालों में यहाँ पर विश्व के लगभग हर जाने-माने ब्रांड के स्टोर खुल गए हैं। नान जिंग वेस्ट रोड पर जारा एल वी से लेकर हर्मिस बिर्कन तक के लगभग

संपर्क :
1188 Yanggao North Road,
Building 1, Yang Ming Garden,
Apartment number 1151,
Pudong, Shanghai, Zip: 200135

सात सौ पचास से ऊपर अंतराष्ट्रीय ब्रांड हैं।

इस रोड पर ओशन प्लाजा 66 शंघाई सेंटर जैसी शहर की जानी-मानी इमारतें हैं। साथ ही लगा मशहूर पीपल स्क्वेयर पार्क भी है; जहाँ घूमने का अपना ही मज़ा है। इसके दक्षिण में बहुत ही खूबसूरत और मशहूर जेड बुद्धा मन्दिर(जिंग आन स्स) है। कहते हैं इस मन्दिर का इतिहास सात सौ अस्सी साल से भी ज़्यादा है। इस दौरान यह कई बार ढह कर बना। अंतिम बार 1984 में फिर से बनना शुरू हुआ और 1990 में आम जनता के लिये इसे खोल दिया गया।

सड़क पर एक तरफ जहाँ आकाश को छूते मॉल हैं तो दूसरी तरफ सड़क के दोनों ओर छाया देने वाले पेड़ों से सजी यह सड़क चाहे शंघाई की सबसे महँगी जगह मानी जाती है फिर भी यहाँ घूमने का मज़ा ही कुछ और है। आप यहाँ विश्व भर से आए यात्री देख सकते हैं। यह रोड शंघाई का प्रतीक चिह्न बन गई है। यह सड़क संस्कृति और कला प्रेमिओं के लिये मंच प्रदान करती है।

शरखु मन (गेट): यह शहर की सबसे पुरानी बची हुई कुछ गलिओं में से एक है; यहाँ जाकर मुझे अपने शहर जालंधर के माईहीराँ गेट की याद आ जाती है। यहाँ पुरानी गलीओं और उनमें पुराने घर जालंधर के किले मोहल्ले की तरह ही लगते हैं। यहाँ की पत्थर की बनी इमारतों की शृंखला 1870 के दशक में शंघाई में आने वाले अप्रवासी परिवारों के लिए बनाई गईं थीं; जिनकी संख्या तेज़ी से बढ़ रही थी। 1949 में यह जगह अपनी जवानी पर थी। उस समय शरखु मन में शहर की साठ प्रतिशत आबादी बसती थी। गलिओं के दोनों ओर एक तरह के दो या तीन मंज़िला मकान इसकी खासियत थी। पर 1990 के बाद ऊँची इमारतों के आने के कारण इनका ढहना शुरू हो गया। पर बची हुई ठेठ चाईनीज़ स्टाइल की इमारतों को हेरिटेज के तौर पर सँभाला गया है। कुछ को कला और संस्कृति केंद्र में बदल दिया गया है तो कुछ घरों को रेस्टोरेंट में बदल दिया गया है, जहाँ पर देशी और विदेशी सब तरह के स्वाद आपको मिल जाएँगे।

लाओ शी मन (गेट): पुराने शहर में पुरानी बची लगभग सभी इमारतों को रेनोवेट करके थोड़ा नया बना दिया गया है पर लाओ शी मन में वही पुरानी इमारतें हूबहू खड़ी हैं। यही यहाँ की ख़ासीयत है। मैं पुराने शहर की हूँ शायद इसीलिए मुझे यह जगह अपनी ओर खींचती है। जब भी मुझे इस जगह के आसपास किसी काम से जाना पड़ता है तो दिल लाओ शी मन जाए बिना नहीं मानता। तंग गलिओं के दोनों तरफ पुराने मकान, पुरानी छेदों से भरी और उखड़े चूने वाली दीवारें और कुछ हमारे गाँव की दुकानों से मेल खाती टूटी सी दुकानों से सजा बाज़ार भी अपना ख़ास सा लगता है।

यू युऐन बाज़ार: यह बाज़ार काफी मज़ेदार और व्यस्त बाज़ार है। इस का आर्किटेक्चर बहुत आकर्षक और पुराने तथा नए का मेल है। यहाँ आपको हर समय देशी और विदेशी पर्यटकों की भीड़ ज़रूर मिलेगी लेकिन सप्ताहाँत में तो भीड़ के कारण हाल ख़राब हो जाता है सो मेरे ख़याल से यहाँ शनिवार और रविवार को न जाएँ तो बेहतर है। इसमें एक तो स्वभाविक बाज़ार जो छोटी दुकानों के साथ रंगीला और चुटीला सा बाज़ार है, दूसरे इसी में मॉल भी हैं अंदर जाकर छोटी- छोटी चीज़ें जैसे कि स्कार्फ, चप्पलें, बायनाकुलर, बच्चों के खिलौने और भी बहुत कुछ खरीद सकते हैं ; जो कि नान जिंग रोड से काफी सस्ते में मिल जाएँगे पर मोलभाव करने की कला आप में ज़रूर होनी चाहिए नहीं तो खरीददारी महँगी पड़ेगी। कई बार तो दो हज़ार का मोल बताकर दो सौ में भी चीज़ दे देते हैं। इस बाज़ार में गोल्ड स्ट्रीट है वहाँ सोने, हीरे, पर्ल के, जेड के और भी सभी तरह के कीमती स्टोन के गहने आप खरीद सकते हैं और वे भी शुद्ध एकदम बढ़िया क्वालिटी के।

यु युऐन गार्डन घूमने के लिये थोड़ा समय ज़रूर निकालें। यह बाज़ार की भीड़-भाड़ से परे बिलकुल शाँत और आकर्षक गार्डन है। कहते हैं इसको बनाने में सत्रह साल (1559-1577) लगे थे। और 1842 की ओपियम वार ने इसे तहस-नहस कर दिया था। गार्डन के एक तरफ हू शिंग थिंग टी हॉउस है, जो कि चीन का सबसे मशहूर टी हॉउस है; जहाँ पर महारानी एलिज़बेथ और बिल कलिंगटन भी आ चुके हैं।

तोंग थाय रोड एंटीक मार्केट : अगर आपको लीक से हट कर कुछ देखने या खरीदने का शौक है तो आप इस रोड पे जाने के लिए मन बना लें। पीपल स्कवेयर के दक्षिण में यह तंग रोड पर हर तरफ एंटीक की दुकानें भरी हैं। पहली झलक देख कर तो मुझे लगा मुझे यहाँ कई बार आना होगा। हालाँकि यह सामान सचमुच का एंटीक नहीं बल्कि फैक्ट्री में बना हुआ है फिर भी काफी कुछ खरीदने लायक है। पुराने ढंग का ट्रंक, लकड़ी की अलमारी, घड़ियाँ, कार्विंग वाले लकड़ी के ज्यूलरी बाक्स, बर्तन, शंघाई थिएटर के पुराने ज़माने में इस्तेमाल होने वाले म्यूज़ीकल इंस्ट्रूमेंट और न जाने क्या

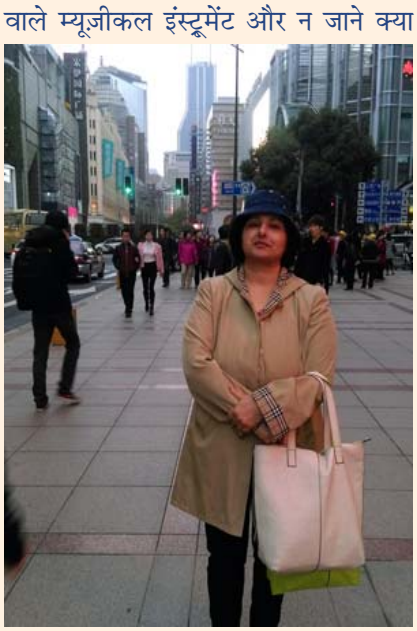

क्या.....

इसके साथ-साथ आप यहाँ शंघाई के रोज़ाना जीवन की झलक भी देख सकते हैं; जो आपको स्वदेश के क़स्बों, गाँवों की याद दिला देगी। टोलिओं में ताश खेलते और ऊँची आवाज़ में बातें करते लोग, माह चोंग खेलते हुए या आपस में बतियाती हुई औरतें यहाँ आपको यह नज़ारा आम देखने को मिलेगा।

छांग ल रोड : यह रोड वह है जहाँ जाकर आपको पता लगता है कि कौन से कपड़े फैशन में हैं। यहाँ आप पूरा दिन बिता सकते हो। यह जगह ड्रेस डिज़ाइनरों का गढ़ है। लोग इस सड़क को जापान की हाराजुकू स्ट्रीट कहते हैं।

शिएन शिया रोड : यह एक फूड स्ट्रीट है जो शंघाई के दक्षिण में छांगनिंग डिस्ट्रिक्ट में स्थित है। यह कहो कि खाने के शौकीनों को यहाँ क्या नहीं मिलता ! चीनी पारंपरिक हॉट पॉट से लेकर जापानी, कोरियन, योरोपियन, माडर्न कैफे हो या थाईवान के खाने के रेस्टोरेंट सब यहाँ मिलेंगे आपको।

थिएन आए रोड (स्वीट लव रोड): यह रोड प्यार करने वालों के लिये है और सिर्फ प्यार का मतलब बताती और सिखाती है यह सड़क। जी हाँ ! इसकी लम्बाई और चौड़ाई से क्या लेना-देना, मुझे तो इसमें गहराई ही दिखी, प्यार की गहराई। प्यार करने वालों से सचमुच प्यार करती है यह जगह और उन्हें प्यार सिखाती भी है।

इस सड़क का नाम भी यहाँ रहने वाली लड़की थिएन आए के नाम पर ही रखा गया; जिसे शिआंग त नाम के लड़के से बेइन्तहा मोहब्बत हो गई थी।

शंघाई की सबसे रोमानी जगह है यह। कहते हैं इस सड़क पर हाथों में हाथ डाले घूमने से प्रेमिओं का प्यार हमेशा बना रहता है, हो भी क्यों ना, यहाँ का माहौल ही कुछ ऐसा बना देता है प्यार करने वाले दिलों को। यहाँ की दीवारों पर जगह-जगह प्रसिद्ध 28 प्रेम कविताएँ लिखी हुई हैं; यहाँ आने वाले प्रेमी जिन्हें ज़रूर पड़ते हैं। प्रेमी यहाँ कोने में लगे परंपरागत लव मेलबाक्स में अपने साथी को पत्र डालते हैं तो उस पर एक खास मोहर लगाई जाती है, यह अंग्रेज़ी अक्षर लव की मोहर उस पत्र को ऐसा खास बना देती है कि पत्र पाने वाला उसे ज़िन्दगी भर अपने पास सँभाल कर रखता है। और तो और यहाँ थिएन आए कैफे (स्वीट लव कैफे) भी है। यह रोमानी ढंग का कैफे घूमकर थके हुए प्रेमिओं को आराम के मीठे पल बिताने के लिये खूब भाता है। शंघाई आने से पहले इस खूबसूरत सड़क के लिए समय तय करना मत भूलें।

अब उस सड़क की बात जो कला प्रेमिओं के लिये बहुत मायने रखती है।

मो कान शान रोड : यह सड़क सु चोउ नहर के किनारे पर स्थित है; जिसे एम 50 के नाम से भी जाना जाता है। आज का यह जाना-माना समकालीन कला का गढ़ सन् दो हज़ार से पहले औद्योगिक क्षेत्र हुआ करता था; यहाँ कपड़ा मिल और फैक्ट्रीयाँ भी थी। सन् 1999 में फक्ट्रीयाँ और मिल को शहर से हटा देने के बाद यह जगह खाली पड़ी थी। सन् 2000 में समकालीन कलाकार शुवे सोंग खाली पड़ी कपड़ा मिल और गोदामों के किराए बहुत सस्ते होने के कारण यहाँ आ गया। उसके पीछे-पीछे तिंग ई और वांग शिंग वेइ जैसे कई जाने-माने आर्टिस्ट भी आ गए। अब यहाँ लगभग सौ कलाकार हैं। पुरानी खाली पड़ी फक्ट्रीओं और गोदामों में अब अनेक आर्ट गैलरिज़ खुल गई हैं; जो देश और विदेश में मशहूर हैं तथा टूरिस्ट्स के आकर्षण का केंद्र बन चुकी हैं। कला तो वैसे भी सबको बरबस ही अपनी ओर खींचती हैं फिर यहाँ कलादर्शन के साथ-साथ कलाचित्र खरीदने की सुविधा भी है। मुझे यहाँ जाना बहुत भाता है। आर्ट डिस्ट्रिक्ट में प्रवेश करने से पहले मुझे इस सड़क के किनारे दीवारों पर बनी चटक रंगों के भित्ति चित्र मोहित से करते लगते हैं। शंघाई आने पर यह सड़क देखे बिना भी शंघाई घूमना अधूरा सा ही होगा।

चीप रोड: शंघाई आए हैं तो कुछ सस्ता खरीदने के लिये यहाँ भी है चीप रोड। जी हाँ, बिलकुल यह अपने नाम के मुताबिक ही सस्ते दामों पे खरीददारी करने के लिये मशहूर है। तभी इसका नाम चीप रोड पड़ा और चाइनीज़ में भी इससे मिलता जुलता नाम ही रखा गया है छीपू लु। शंघाई की नौजवान पीड़ी के साथ-साथ आगंतुकों को भी यह सड़क खूब भाती है। बस आपके पास परखी नज़र और मोलभाव करने की कला हो तो आप यहाँ से भरे हाथों और खुश मन से घर लौटेंगे। हाँ, यहाँ दुकानदारों के साथ मोलभाव के लिये खींचातानी ज़रूर हो जाती है। कई बार घूमफिर कर सामान बेचने वाले पीछा कर-कर के आपको इतना परेशान कर देते हैं कि पीछा छुड़ाना मुश्किल हो जाता है। एक जानकारी जो ज़रूरी है बस यहाँ जेबकतरों से ज़रा बच के रहें और अपने बटुए तथा मोबाईल को सँभाल कर रखें। कुल मिलाकर यह सड़क शॉपिंग का खूब आनंद लेने लायक जगह है।

****

समकालीन कविता की मानवीय भूमि में लोक चेतना

डॉ. ममता खाण्डल

सम+काल में ईन् और क्त प्रत्यय के योग से समकालीनता शब्द व्युत्पन्न है। 'सम्' का अर्थ है- दो वस्तुओं में यथायोग्य संबंध, और 'काल' का अर्थ उस संबंध सत्ता से है जो भविष्य या वर्तमान की प्रतीति कराती है। अत: समकालीनता में एक ही समय में रहने या होने का अर्थ निहित है, जो अंग्रेज़ी भाषा के 'कण्टेम्पोरेरी' (Contemporary)का हिन्दी अनुवाद है। समकालीनता अपने मूल अर्थ में अंग्रेज़ी के 'कोइवल्' (coeval) अथवा कण्टेम्पोरेनिटी (Contemporaneity) शब्दों के, जो इसके समतावाची अर्थ देने वाले हैं, के अर्थ में प्रचलित हैं। इनका अर्थ है- 'उसी समय का कालखण्ड में होनेवाली घटना या प्रवृत्ति या एक ही कालखण्ड में जी रहे व्यक्ति।' डॉ. चन्द्रशेखर 'समकालीनता' को 'आधुनिकता की प्रक्रिया को गतिमान बनानेवाली व नया अर्थ प्रदान करनेवाली प्रक्रिया' मानते हुए निष्कर्ष देते हैं - समकालीनता 'समसामयिकता' की आधुनिकता है अर्थात् उसकी सप्रश्नता अथवा प्रश्नशीलता है।' इस प्रकार कहा जा सकता है कि किसी वस्तु, व्यक्ति या भाव का समय से यथायोग्य संबंध ही समकालीनता है। दूसरे शब्दों में किसी वस्तु, व्यक्ति या भाव का सामयिक गुणों से युक्त होना ही समकालीन होना है और 'समकालीनता' में काल-विशेष के प्रति जागरण का भाव निहित है। यानी की 'समकालीनता वह समग्र चेतना है, जो सामयिक संदर्भों, दबावों और तकाजों के तहत विशिष्ट स्वरूप धारण करती है।'

लेकिन समकालीनता की स्वभावगत एक और पहचान भी है जो उसे अविराम रूप से काल-चक्र से संबंध करती है। यह शिनाख्त है उसके भीतर की द्वंद्वात्मक स्थिति की। 'समकालीनता' इस प्रक्रिया में अपने वर्तमान में एक ओर व्यतीत को समर्पित होती रहती है दूसरी ओर अनागत में अपनी संभावनाएँ खोजती है। उसकी यही द्वंद्वात्मक स्थिति उसमें रचनात्मक ऊर्जा भरती है।

इस प्रकार समकालीन कविता अपने को व्यापक आयाम देती हुए दिशाएँ भी देती है। समकालीन कविता का जो दिक् और काल है, वह यद्यपि स्वतन्त्र भारत के समय और समाज का संवाहक माना जा सका है, पर इसे केवल इसके प्रस्थान सूत्र से जोड़ने का एक आग्रह हो सकता है, पर यह काल अभी अपनी निरन्तरता में गतिशिल है। एक अर्थ में इस समय और समाज को न सामन्ती समाज का परिदृश्य कहा जा सकता है और न ही साम्राज्यवादी और उपनिवेशवादी परिदृश्य ही कहा जा सकता है। इस अर्थ में समकालीन कविता ने अपने काल की लगभग आधी शताब्दी को देखा और अभिव्यक्त किया है। यह अभिव्यक्ति ही उसके मूल्याकंन का आधार है। वस्तुत: समकालीन कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि पर यदि विचार किया जाए तो यह भी कह सकते हैं कि समकालीन कविता में उन सभी सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक विचारों और प्रवृतियों को अभिव्यक्ति मिलती रही है, जिनका सरोकार व्यक्ति और समाज तथा जीवन से रहा है। एक-एक विचार पद्धति के स्थान पर इस कविता की वैचारिक विविधा ने भी इसकी समकालीनता को बनाए रखा है। कविता अपने मूल्यांकन और परीक्षण से परे नहीं हो सकती। लेकिन आज समकालीन कविता के साथ उसके पाठक जगत् का सन्तुलन गड़बड़ होता जा रहा है। शिक्षित और

सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग,
राजस्थान केन्द्रीय विश्वविद्यालय,
बांदरसिंदरी, किशनगढ़,
अजमेर, राजस्थान-305801

सहृदय जाने वाला यह पाठक कविता से कोई दृष्टिया जीवन-दर्शन पा रहा है, इसमें संदेह है। यह देखना और भी दिलचस्प है कि समकालीन कविता किस तरह के बिंब-चित्र प्रस्तुत कर रही है। क्या वे बिंब चित्र जातीय चेतना से सम्पृक्त हैं।

आज कहा जा रहा है कि कविता घर-परिवार से दूर होती जा रही है। वस्तुत: यह सच नहीं है। आख़िर समाज में ही कितनी और कौन-सी पारिवारिकता शेष बची है। यदि समकालीन कविता घर से निरन्तर दूर होती गई है तो यह भी जानना आवश्यक है कि आज जो घर बचा है वह क्या हमारे घर का प्रतिनिधित्व करता है। क्या इस घर की दीवार से भाई की छाती की तरह चिपटकर खुलकर रोया जा सकता है। क्या भाइयों ने कब से गले लगाना नहीं छोड़ दिया है। इस सच्चाई को जानने पर ही पुरखों के कोठार की याद आई, घर का रास्ता याद आया और घर-घर घूमना याद आया।

समकालीन कविता की जड़ें जहाँ हैं और जहाँ से इस कविता को निरन्तर उर्वरक मिलता रहा है, उसकी तरफ देखने के प्रयास किए जा रहे हैं। समकालीन कविता के युवतर कवियों की पीढ़ी इस बात के प्रति कहीं अधिक सजग है। वह नकली दुनिया की वास्तविकता को उजागर कर रही है। एक वास्तविक संसार और उसकी संवेदनशीलता को निरन्तर खोज रही है। एक समय ऐसा भी आया जब समकालीन कविता में भयानक टूट-फूट हुई। कविता की कोई एक समग्र पहचान नहीं बन पाई थी। मुक्तिबोध की कविता ने हमें यह पहचान दी। मुक्तिबोध की कविता अपनी तमाम विशेषताओं और आधुनिकता के बावजूद लोक-संपृक्त बनी रहती है।

मुहल्ले के मुहाने के उस पार / बहस छिड़ी हुई है / बरगद की शाखें ढीठ / पोस्टर धारण किए / भैरों की कड़ी पीठ / भैरों और बरगद में बहस खड़ी हुई है / ज़ोरदार जिरह कि कितना समय लगेगा / सुबह होगी कब और / मुश्किल होगी दूर कब / गगन की कालिमा से/ बूँद-बूँद चू रहा/ तड़ित्-उजाला बन!! (चाँद का मुँह टेढ़ा है- मुक्तिबोध)

जनता के साहित्य और कविता के आत्मसंघर्ष की बात मुक्तिबोध निरन्तर करते हैं। वे जानते हैं कि इसके बिना कविता के किसी सौन्दर्यशास्त्र की रचना नहीं की जा सकती है। वे भारतीय प्राणचेतना के स्वर को अनसुना नहीं कर पाते। उनमें चीज़ें भीतर-ही-भीतर पकती रहती है। समकालीन कविता में यह लोक कई बार फिसला है तब-तब कविता सँकरी और अँधेरी गली में पहुँच गई है। लोक की अनदेखी करना कविता का स्वभाव नहीं, एक बनाया गया स्वभाव है। एक किस्म की सनक और एक किस्म की मनोवैज्ञानिक बीमारी भी है, जो हमें मनुष्य-मनुष्य के बीच भेदभाव करना सिखाती है। ऐसी कविता सबकुछ को तात्कालिकता में घटित कर देना चाहती है। सब कुछ को मटियामेट कर देना चाहती है। आशा और निराशा के भावों पर विचार करने वाले जान सकते हैं कि ऐसी कविता का आशावाद भी कितना खोखला कितना भ्रामक होता है। लोक से जुड़कर ही कविता की और शब्द की अर्थसत्ता कायम रखी जा सकती है। यह कितना प्रीतिकर है कि कविता में लोक निरन्तर जीवित है और युवतर कवियों की कविता में वह लौट-लौटकर नए-नए रूपों में आ रहा है। लोक के साथ घालमेल करना कविता का बचकानापन कहा जाएगा। इसलिए समकालीन कविता की एक बड़ी प्रेरणा निराला की कविता है जो लोक की वकालत और अभिजात्य को अनावृत करती है।

समकालीन कविता का परिवेश अपने यहाँ का जीवन है। लोक -सम्पृक्ति समकालीन कविता की एक खास विशेषता है। वह सहज लोक-जीवन के प्रति उसकी उन्मुखता प्रगतिवाद में एक आन्दोलन का स्वर था, सहजता नहीं थी, और उसने अपने विशिष्ट दृष्टिकोण के कारण लोक-जीवन का एक विशिष्ट अर्थ लगा लिया था। प्रयोगवाद लोक-जीवन से कट गया था। समकालीन कविता ने लोक जीवन की अनुभूति, सौन्दर्य-बोध, प्रकृति और उसके प्रश्नों को एक सहज और उदार मानवीय भूमि पर ग्रहण किया। साथ ही साथ ही लोक-जीवन के बिंबो, प्रतीकों, शब्दों और उपमानों को लोक-जीवन के बीच से चुनकर उसने अपने को अत्यधिक संवेदनापूर्ण और सजीव बनाया। प्रश्न यह उठता है कि लोक-जीवन की संवेदना और बिंबो की सहज सुन्दरता से पूर्ण होकर भी समकालीन कविता क्यों लोकप्रिय नहीं हो पाती ? कारण यह है लोक जीवन की सतही भावनाओं का इतिवृत्त नहीं पेश करती, अपितु लोक-जीवन में लिये गए बिंबों के माध्यम से लोक-जीवन की जटिल अनुभूतियों और प्रश्नों को ध्वनित करती है। एकान्त श्रीवास्तव लिखते हैं -

रात की बारिश में भीगी हुई भूमि पर ही/ उतरता है नए दिन का प्रकाश / फिर लगता है पेड़ों को देखो / और भूल जाओ अपनी थकान /पहाड़ों को देखो और भूल जाओ अपनी उदासी /भोर के आकाश में सफेद पड़ते चाँद को देखो /और किसी को याद करो /परिन्दों की पहली उड़ान को देखो / फिर किसी यात्रा पर निकल पड़ो (बारिश में आख़िरी बस)

आज इस समकालीन अनुभूति के अलग-अलग शेड्स हैं। कहीं वह विडंबनाओं का खेल है और सपाटबयानी में रखा गया एक भावोद्रेक भरा तर्क तो कहीं आस्था का गान और प्रार्थनाओं की पवित्रता में रंगा एक समर्पण। कहीं वह अवचेतन है, क्षतिपूर्ति है, जादू-टोना बन जाने का ख़्वाब है, संग-साथ, अप्रत्याशित हाथ आई खुशी और मन का उछाह है तो कहीं एक अपराध बोध, विभक्त मन और दारुण अकेलापन, समकालीन दुनिया में अमानवीयता, हिंसा, परपीड़न, संताप, कायरता, मिथ्याभिमान, विस्मृति, दु:स्वप्नों या नैतिक ऊर्जा, स्फूर्ति, जीवट, रोमान और खिलंदड़ेपन आदि।

हर युग का अपना एक कामन-सेन्स होता है जिसमें एक पूरी सभ्यता की बर्बरता छिपी रहती है। कविता को इसी कामन-सेन्स पर हमला बोलना होता है। इसके लिए हर बार वह अपनी भाषा खोजती है। प्रख्यात विचारक लुडविग विटर्गेस्टाइन ने कहा था कि 'To imagine a language means to imagine a form of life' और इसी के आगे वे कहते हैं कि 'सिर्फ जो उम्मीद करते हैं वो ही अपनी भाषा का

इस्तेमाल करते हैं।' आज यही एक कविता का अभिप्रेत हो सकता है।

कविता के ऊपरी आयोजन समकालीन कविता वहन नहीं कर सकती, वह अपनी अन्तर्लय, बिंबात्मकता, नव प्रतीत-योजना, नए विशेषण के प्रयोग, नव उपमान - संघटना में कविता के शिल्प की मान्य धारणाओं में काफी अलग दीखती है। जनता के पक्ष में अनेक कविताएँ लिखी गई हैं लेकिन जनता और लोक चेतना को आत्मसात् कर कविता लिखने वाले कवि त्रिलोचन, नार्गाजुन, श्रीकांत वर्मा, कैलाश वाजपेयी, डॉ. रामदरश मिश्र, गिरधर राठी, भगवत रावत, विनोद कुमार शुक्ल, राजेश जोशी आदि ने समकालीन कविताओं को लोक चेतना से संपन्न बनाया। नागार्जुन जब लिखते हैं -

देखोगे, सौ बार मरूँगा / देखेगो, सौ बार जिऊँगा/ हिंसा मुझसे थर्राएगी / मैं तो उसका खून पिऊँगा/ प्रतिहिंसा ही स्थायीभाव है मेरे कवि का /जन-जन में जो ऊर्जा भर दे / मैं उद्गाता हूँ उस कवि का / जनता के पक्ष को आत्मसात् करते हैं।

समकालीन कविता में एक भोलापन है, कहीं बहुत कोमल और एक उदार विस्तार। ये सब उपभोक्ता समाज की धूर्त्तता, कठोरता और संकीर्णता के ही प्रति ध्रुव हैं। एक गहरा आत्मनिरीक्षण है समकालीन कविता। फलतः इसमें उग्रतावाद और 'लाउडनेस' नहीं है। शोर को एक धीमी पुकार ही बेध सकती है, चीख नहीं। निरा मौन भी नहीं। कवि संवेदनशील होता है, वह शब्दों को ही ब्रह्मास्त्र की तरह अमोघ बनाकर व्यवस्था पर वार करता है। कवि श्यामसुन्दर घोष जंगली जीवों को राजधानी में घुसाकर 'हाँका' बोलते है। जानवरों का कहना है कि-

अब तो आदमी हो गए हैं जानवर / और शहर हो गए हैं जंगल और राजधानी महाजंगल / तभी तो हमने निर्णय लिया कि / हम हाँका लगाएँगे शहरों और राजधानियों में। (साक्षात्कार मार्च-2009)

हाँका सुनकर हाकिम, हुक्काम, नेता, विधायक, मन्त्री, बिचौलिये, दलाल सभी के चेहरों से हवाइयाँ उड़ रही है। हाँक लगाने वाले जानकर कह रहे हैं हमें तुम्हारी सुख-सुविधा के सामान नहीं चाहिए, तुम्हारे बंगले, कोठियों और फ्लैटों में हम बसने भी नहीं आए हैं। अत्याचार के खिलाफ जब मनुष्य हारता है तो संपूर्ण प्रकृति-शक्ति अत्याचारियों के समूल नाश के लिए आगे आ जाती है। कवि मिथकों का नए संदर्भ में प्रयोग करते हुए कहते है-

हम तो इतिहास में सिर्फ यह दर्ज कराने आये हैं / कि जब-जब मनुष्य भ्रष्ट, लालची और निकम्मा होता है / तब-तब हम दुन्दुभि बजाते हुए उद्घोष करते हुए आते हैं सम्भवामि युगे-युगे।

हम हैं वराह / हम हैं नरसिंह / हम हैं वामन / हम हैं परशुराम / और हमीं हैं कलिक / तुम हमारी सत्ता को भूल न जाओ / इसलिए हम तुम्हें समूल नष्ट करने आए हैं।

आम मेहनतकश जनता मौसम की विपरीत स्थितियों में जीने के लिए जद्दोजद करती है, अँधेरे में भूख, दर्द और दु:ख से जहाँ वह दवा और रोटी की जुगाड़ में व्यस्त रहती है, राजा (सत्ताधारी) को अपनी मूँछ (ऐंठ तथा बड़प्पन) की चिन्ता रहती है। कवि हरे प्रकाश उपाध्याय जनता की आवाज़ को कविता में मुखरित करते हुए कहते हैं-

हमारे बच्चे अक्सर / बीमार रहते हैं, डगमग करते हैं / हम खोजते हैं / हम खोजते हैं बकरी का दूध / राजा श्वानों को खीर खिलाता है / हम गीत प्रीत का गाना चाहते है / मिलना और बतियाना चाहते हैं / भेद भूलकर हँसना और हँसाना चाहते हैं / राजा क्रोध में पागल बस बैण्ड बजाता रहता है। (खिलाड़ी दोस्त तथा अन्य कविताएँ पृ. 46)

कविता में गहरी मानवीय संवेदना होती है। कवि आगे सभी मूल्यों पर बाजार को हावी देखकर सवाल खड़ा करते हैं-

माँ का दूध कितने रुपये किलो बिकना चाहिए भाइयो! / सोचो एक दिन सब लोग। / धरती ने शुरू कर दी दुकानदारी तो क्या होगा?

इसी प्रकार समय क्रूरता पर उनकी संवेदना इस प्रकार प्रकट होती है-

अभी तो भूमिका बाँध रहे हैं कसाई। / छुरे बजा रहे हैं और धार जाँच रहे हैं।/ थोड़ा ठहरो देखोगे जब कतरेंगे कलेजा, / आग में भूनने, तश्तरी में सजाकर बाजार में बेचेंगे।

मानवता का विकास केवल वैज्ञानिक प्रगति से नहीं, उसके लिए मन की शुद्धि व शान्ति के साथ साहित्य के क्षेत्र में नवीनता के साथ मर्यादित संवेदनाओं को प्रस्तुत करना हैं। नई जीवन शैली ने संवेदनाओं से किनारा और रिश्तों को विघटित किया है। ईमानदारी, संवेदना त्याग- जैसे आदर्शों का अवमूल्यन होता जा रहा हैं। इन शिथिल पड़ते रिश्तों की डोर को पकड़कर राजेन्द्र शर्मा आगे बढ़ लिखते हैं-

रिटायर्ड पापा बूढ़ी माँ और लाडले छोटी की लाडली / नीलू में धीरे-धीरे प्रवेश करती उदासी से / भयभीत रहने लगा है घर / हर महीने की पहली शाम के अलाव। (माध्यम, अक्टूबर-सितम्बर, 2006 पृ. सं. 167)

आधुनिकीकरण के संपर्क में ही आधुनिकताबोध का जन्म होता है। इसी आधुनिकताबोध ने जन्म दिया भय, आतंक, खून-खराबा, हिंसा, आतंकवाद, सम्प्रदायवाद आदि, आज के समाज की सच्चाई को और हिन्दी साहित्य की कविता अपने समय, अपने समाज की इस संवेदना को उतनी ही सच्चाई से उजागर कर रही है। केदारनाथ सिंह, कुँवरनारायण, मंगलेश डबराल आदि स्थापित कवियों के साथ-साथ आज की युवा पीढ़ी भी जैसे कुमार अम्बुज, एकान्त श्रीवास्तव, आशुतोष दुबे, संजय कुन्दन, राकेश रंजन, हरीशचन्द्र पाण्डेय आदि काफी ईमानदारी से आज की कविता के समय, समाज और संवदेन पर अपनी बात रख रहे हैं। इस हिंसा, आतंक, साम्प्रदायवादी ताकतों के हावी होने से हमारा समाज जिस तरह से विखण्डित होता हैं, परिवार छिन्न-भिन्न होते हैं, सदियों से स्थापित मान्यताएँ खण्डित होती हैं और भी न जाने क्या-क्या टूटता हैं। जो हमारे मूल्यों में समाहित है और उसके लिए हमारे हृदय में स्थान मौजूद है। मगर इस साम्प्रदायिक हिंसा ने सब-कुछ समाप्त कर दिया। आज का कवि उस तनाव से परेशान है। वह रिश्तों को खण्डित होते नहीं देख पा रहा है,

तमाम तरह के सवालों को वह समाज में रखता है लेकिन उसके प्रश्नों का जवाब देने वाला कोई नहीं है।

आम का था या फिर अमरूद का / भाग न सका जो औरों के साथ / वह पेड़ अभागा हरसूद का था / दो छज्जे थे आमने-सामने/ जो आपस में बतियाते तो झुक आते आधे-आधे / बता सकते हैं अब / कौन-सा अनुपमा का था। / और कौन-सा अनूप का था। (हरीशचन्द्र पाण्डेय, वागर्थ: जुलाई 2009)

उत्तर आधुनिकतावाद यही कहता है कि अब कहीं कुछ नहीं बचा है। उजड़ना, बिखरना और एक आदिम किस्म की अत्याधुनिकता में ठिठुरना ही आज के आदमी की नियति है। सभी मूल्य निरर्थक है। संबंध का तभी तक अर्थ है, जब तक वह ज़रूरत से बंधा है। संवेदना एक नुकसान का सौदा है। कोई कह सकता है कि ऐसे माहौल में आशावाद एक बैठे-ठाले की कल्पना है, यह भी कि यह कविता के स्वराज में एक सामाजिक घुसपैठ है। वस्तुत: जीवन का असल तत्त्व यह आशा ही है। कविता भी तभी तक है, जब तक आशा है। और यह आशा बनती है लोक चेतना से। यही कारण है कि समकालीन कविता में लोक-चेतना और सांस्कृतिक अस्मिता की भूख दिखाई देती है, क्योंकि यह उसका आधार स्तंभ है। कविता को ज़मीन प्रदान करती है। जनकवि भाग्य के खिलाफ लड़ाई के संस्कार बोता है।

21वीं सदी की रचनात्मक चुनौतियाँ विकट है। मनुष्य के भौतिक और आत्मिक विस्थापन के विरुद्ध खड़ी समकालीन कविता के अलग-अलग अनुभव क्षेत्र, तेवर और अभिव्यक्ति रूप उभर रहे हैं। इनमें जहाँ हमारे बनते-बिगड़ते इतिहास की घेराबन्दी का निर्मम अंकन हैं; वही वह मनुष्य के भीतर की शाश्वत जिजीविषा, राग, स्मृति, आकांक्षा और न्याय-कामना का संघर्ष-स्वप्न भी है। वरिष्ठ कवियों से लेकर नितान्त युवा कवियों तक की रचनाओं में यह समय के एहसासों की नई संभावनाओं से भरी यात्रा है।

****

दोहे

नरेश शांडिल्य

ज़रा-ज़रा सी बात पर, रिश्तों को मत तोड़
सात अरब की भीड़ में, सात लोग तो जोड़॥

****

जो भी रख इस हाथ पर, रख इज़्ज़त के साथ
वर्ना लौटा दे ख़ुदा, मुझको ख़ाली हाथ॥

****

एक कहो कैसे हुई, मेरी-उसकी बात
मैंने सब अर्जित किया, उसे मिली ख़ैरात॥

****

घुटनों पर जो हैं अभी, तुतले जिनके बोल
ये बच्चे ही देखना, बदलेंगे भूगोल॥

****

यूँ ही नहीं दधीचि का, गाती दुनिया गान
अस्थि अस्थि मिट भर गया, वो क़ुदरत में जान॥

****

ललचाए नीला कमल, मीलों गहरी कीच
एक तरफ़ है स्वर्ण मृग, एक तरफ़ मारीच॥

****

मैला ढोने की प्रथा, कहाँ हुई है बंद
नदियों के सिर कर दिया, हमने अपना गंद॥

****

जैसा जिसका काम है, वैसा होता नाम
क्या गाँधी क्या गोडसे, क्या रावण क्या राम॥

****

एक ब्रह्म से ही बना, सबका अगर वज़ूद
सच कबीर का पूछना, फिर क्यों बामन-सूद॥

****

सदियों तक हमने जपा, आज़ादी का मंत्र
तब जा कर हासिल किया, हमने यह गणतंत्र॥

****

कोई औरों से लड़े, कोई अपने संग
अपने अपने मोरचे, अपनी अपनी जंग॥

****

चुका नहीं हूँ मैं अभी, तुम्हें हुई है चूक
पतझर पतझर रच रहा, मैं वसंत की कूक॥

****

ख़्वाब न हों तो ज़िन्दगी, चलती फिरती लाश
पंख लगा कर ये हमें, देते हैं आकाश॥

****

बार बार कायर मरे, वीर मरे इक बार
मरने से पहले मरे, तो जीना धिक्कार॥

****

महलों पर बारिश हुई, भीगे सुर-लय-साज
छप्पर मगर ग़रीब का, झेले रह रह गाज॥

****

महँगाई से जंग थी, बैठा हूँ थक-हार
आख़िर कब तक भाँजता, लकड़ी की तलवार॥

****

कहना है जो कह मगर, कला कहन की जान
एक महाभारत रचे, फिसली हुई ज़ुबान॥

****

कबिरा की क़िस्मत भली, कविता की तक़दीर
कबिरा कवितामय हुआ, कविता हुई कबीर॥

****

केवल वो ही कोयला, जिसके जिगर जुनून
सदियों तप कर पाए है, इक हीरे की जून॥

****

रोज़ रोज़ के रतजगे, दिनभर भागमभाग
फिर भी हँस हँस गा रहा, मैं जीवन का राग॥

****

नरेश शांडिल्य एक प्रसिद्ध कवि, दोहाकार,ग़ज़लकार और रंगकर्मी हैं। आपके 6 कविता संग्रह प्रकाशित हुए हैं जिनमें उनका दोहा संग्रह -कुछ पानी कुछ आग- काफ़ी चर्चित रहा। आपको नुक्कड़ नाटकों के लिए भारत सरकार के संस्कृति विभाग से सीनियर फैलोशिप भी मिली है। आप वर्तमान में केंद्रीय फ़िल्म प्रमाणन बोर्ड के सलाहकार सदस्य हैं।

यूनियन बैंक ऑफ इंडिया, नई दिल्ली में प्रबंधक के पद से सेवानिवृत्त।

संपर्क: ए-5, मनसाराम पार्क, संडे बाज़ार रोड, उत्तम नगर, नई दिल्ली-110059

ईमेल: nareshhindi@yahoo.com

दूरभाष:9868303565

इच्छा

सुनील गज्जाणी

पति मुस्कुराता हुआ अपने मोबाइल पर फटाफट उँगलियाँ दौड़ा रहा था ! उसकी पत्नी बहुत देर से उसके पास बैठी खामोशी से देख रखी थी, जो उसकी रोज़ की आदत थी और जब भी कोई बात अपने पति से करती तो जवाब 'हाँ' 'हूँ' में ही होता या नपेतुले शब्दों में !

'किससे चैटिंग कर हो?'

'फेसबुक फ्रेंड से।'

'मिले हो कभी अपने इस फ्रेंड से?'

'नहीं।'

'फिर भी इतने मुस्कुराते हुए चैटिंग करते हो ?'

'और क्या करूँ बताओ?'

'कुछ नहीं, फेसबुक पे आप की महिला मित्र भी बहुत सी होगी ना ?'

'हूँ'

उँगलियों को हल्का सा विराम दे मुस्कुराते हुए पति ने हुंकार भरी !

'उनसे भी यूहीं मुस्कराते हुए चैटिंग करते हो, क्या आप सभी को भली-भाँति जानते हो' ?

पत्नी ने मासूमियत भरा प्रश्न पर प्रश्न किया !

'भली-भाँति तो नहीं मगर रोज़ाना चैटिंग होते-होते बहुत कुछ हम आपस में एक दूसरे को जानने लगते हैं और बातें ऐसी होने लगती है कि मानों बरसों से जानते हों और मुस्कराहट होठों पे आ ही जाती है, अपने से लगने लग जाते हैं फिर ये !'

'हूँ' और पास बैठे पराए से ! पत्नी हुंकार सी भरने के बाद बुदबुदाई !

'अभी मज़ेदार टॉपिक चल रहा है हमारे ग्रुप में ! अरे, अभी तुमने क्या कहा था, ध्यान नहीं दे पाया ! बोलो ना फिर से, अरे, यार किस सोच डूब गई !'

पति मुस्कुराता हुआ तेज़ी से मोबाइल पर अपनी उँगलियाँ चलाता हुआ एक नज़र पत्नी पर डाल बोला !

'किसी सोच में नहीं ! सुनो,बस मेरी एक इच्छा पूरी करोगे ?'

पत्नी टकटकी लगाए बोली !

'क्या अब तक तुम्हारी कोई अधूरी इच्छा रखी है मैंने? ख़ैर,बोलो क्या चाहिए ?'

'मेरा मतलब ये नहीं था, मेरी हर इच्छा आपने पूरी की है मगर ये बहुत ही अहम है !'

'ऐसी बात! तो बोलो क्या इच्छा ?'

'एंड्रॉयड मोबाइल'

'मोबाइल ! बस इतनी सी बात, ओके डन! मगर क्या करोगी बताना चाहोगी ?' पति चौंकते बोला !

पत्नी ने भीगी पलकों से प्रत्तुतर दिया ! 'और कुछ नहीं, चैटिंग के ज़रिये आप मुझसे भी खुल कर बातें तो करोगे!'

****

संपर्क: सुतारों की बाड़ी, गुवाड़, बीकानेर, राजस्थान
दूरभाष: 09950215557
ईमेल: sgajjani@gmail.com

वापसी का डर

मार्टिन जॉन

रतिया भाग गई कलुआ के साथ। चिंगारी उठी। शोला भकभकाया और आग बनकर सारी बस्ती में फ़ैल गई। दिन बीता। शाम बीती। रात आई।

अकलू अभी तक वैसे ही गुमसुम बैठा था। बच्चे ज़मीन पर भूखे पेट ही सो गए थे। धन्नों ने उठकर दीया जलाया। झोपड़ी में हल्की सी रोशनी पसर गई। धन्नों खाट के पावे का सहारा लेकर ज़मीन पर बैठ गई।

उसने अकलू की ओर देखा, 'कितना दु:ख पहुँचा है इसे जवान बेटी के भागने से !....कल किस मुँह से हम बस्ती में निकलेंगे !...थू थू नहीं करेंगे सब ?...हे भगवान् ये क्या हो गया।....कैसे तसल्ली दूँ इसे !' वह उठी और अकलू के पास चारपाई पर बैठ गई।

तभी हवा का एक तेज़ झोंका आया। टिमटिमाता दीया बुझ गया। अकलू ने एक लंबी साँस ली और चारपाई पर लेट गया। धन्नों कुछ देर बैठी रही और फिर अकलू के बगल में लेट गई। उसके सीने पर हाथ फेरते हुए बोली, ''क्या सोच रहे हो ?

पहली बार अकलू का मुँह खुला, ''मैं एक बात से डर रहा हूँ धन्नों !''

धन्नों उससे और सट गई। फुसफुसा कर बोली, ''किस बात से डर रहे हो ?''

धीरे से अकलू ने कहा, ''कहीं रतिया वापस न आ जाए !''

धन्नों छिटक कर अलग हो गई।

****

अपर बेनियासोल, पोस्ट-आद्रा, जिला-पुरुलिया, पश्चिम बंगाल- 723121
martin29john@gmail.com

कविताएँ

डॉ. विनीता मेहता

डॉ. विनीता मेहता का 'साँझ' काव्य-संग्रह प्रकाशित। विभिन्न राष्ट्रीय समाचार पत्र एवं पत्रिकाओं में चालीस से अधिक रचनाएँ प्रकाशित

क्योंकि मैं हूँ ना

तुम ने कितना चाहा मैं टूट जाऊँ
मैं नहीं टूटी,
तुम ने कितना चाहा मैं
झुक जाऊँ
मैं नहीं झुकी,
तुम ने मुझे हमेशा कमज़ोर कहा
मेरे आत्मविश्वास को तोड़ा
मैं नहीं पिघली
कमज़ोर तुम थे
मैं नहीं,
तुम यह नहीं समझ सके
तुमने मुझसे झूठ बोला
हर पल हर दम
मैंने सत्य माना तुम्हें विधाता जानकर
जब बात मेरे आत्म सम्मान की आई
तुम गायब थे यह जानकर
तुम भूल गए मैं नारी हूँ
सृष्टि की एक मात्र रचना
जिसे बनाकर खुदा भी बहुत रोया होगा
पूछोगे नहीं क्यों?
उसने मुझे कोमल तन दिया
कोमल मन दिया
और मीठी जिह्वा भी दी
और फिर तुम्हें बना दिया
वो समझ गया उससे भूल हो गई।
उसने मुझे सृष्टि की सबसे सुन्दर चीज़ दी
माँ बनने का उपहार
इसलिए सभी भावों को रसों को मुझे दे दिया
रह गए तुम खाली और खोखले,
हाँ मैं नारी हूँ तुम जैसे पुरुष को
मैं ही पैदा करती हूँ चाहे कितना भी दर्प कर लो
इस सत्य को तुम्हें स्वीकार करना पड़ेगा,
हाँ तुम भी भागीदारी रखते हो
पर मैं तुम्हें नौ महीने पेट में रखती हूँ
अब बताओ मैं कैसे टूट जाऊँ
कैसे पिघल जाऊँ
क्योंकि मैं मैं हूँ न॥

****

गुफ़ा

हर औरत के मन में
उसकी अपनी एक गुफ़ा होती है।
जहाँ तक जाना किसी के बस की बात नहीं
उस गुफ़ा में कहीं राज़ को समेटे रहती है वो
उस गुफ़ा से दुनिया के सामने
हँसता हुआ झरना
हमेशा बिखेरती है
और खुद अंदर ही अंदर
सुखी नदी सी विलाप करती है।
उस गुफ़ा में उसके दो मन
हमेशा साथ होते हैं
जो कभी उसे रोकते भी हैं
आगे बढ़ने भी देते हैं।
उस गुफ़ा में किसी को आने की इजाज़त नहीं होती
वहाँ उसके कई राज़ दफ़न होते है
वो गुफ़ा से बाहर निकलकर
कभी चंचल हिरणी सा नृत्य करती है
कभी जीवन के केनवास पर
प्रेम के रंग बिखरती है
कभी कलम से
अनोखा संसार रचती है
पर गुफ़ा का दरवाज़ा बंद रखती है,
वहाँ उसने बनाई है
कई टूटे रिश्तों की समाधि
और दफ़न किया है अपने पहले प्यार को,
स्वाभिमान को भी किसी कोने में
वही रखा है
बिखरा अस्तित्व वही घूम रहा है
पर वो नियति को समर्पित कर
ज़िंदगी जीती है,
फिर एक दिन चुपचाप से
गुफ़ा का दरवाज़ा बंद कर
उसी में अपनी समाधि बना लेती है
और छोड़ जाती है दुनिया के सामने
हाँ मैं एक पहेली हूँ यह प्रश्न?

****

संपर्क: 206 ध्रुव अपार्टमेंट GH9, सेक्टर 46, फरीदाबाद 121003
दूरभाष: 9810826206

लेखकों से अनुरोध

'विभोम-स्वर' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फ़ाइल अथवा वर्ड की फ़ाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीऍफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें। कृपया रचनाओं की साफ़्ट कॉपी ही ईमेल के द्वारा भेजें, डाक द्वारा हार्ड कॉपी नहीं भेजें, उसे प्रकाशित करना हमारे लिए संभव नहीं होगा। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। पुस्तक समीक्षाओं का स्वागत है, समीक्षाएँ अधिक लम्बी नहीं हों, सारगर्भित हों। समीक्षाओं के साथ पुस्तक के कवर का चित्र, लेखक का चित्र तथा प्रकाशन संबंधी आवश्यक जानकारियाँ भी अवश्य भेजें। एक अंक में आपकी किसी भी विधा की रचना (समीक्षा के अलावा) यदि प्रकाशित हो चुकी है तो अगली रचना के लिए तीन अंकों की प्रतीक्षा करें।

-संपादक
vibhom.swar@gmail.com

कविताएँ

सुशीला शिवराण

पेशे से अध्यापक सुशीला शिवराण की रचनाएँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। हिन्दी साहित्य, कविता पठन और लेखन में विशेष रुचि। तीन पुस्तकें प्रकाशन की प्रक्रिया में।

महावर

महावर
अंग से कहीं ज़्यादा
रच रहा होता है मन पर।
गौरवर्णी पैरों से लिपटी
सुर्ख़ गुलाबी बेलों से
अँखुवाते हैं प्रेम के बूटे
चटकती हैं प्रीत की कलियाँ
गालों पर लजाता है महावर
होठों की गुलाबी पँखुड़ियों पर
खिलखिला उठता है
गुलाबी महावर।

रुनझुन घुँघरूओं के साथ
प्रेम की सरगम बनकर
फ़ाल्गुनी उल्लास लिए
तन-मन से लिपट जाता है
गुलाबी महावर।

प्रीत में घुल कर
विरह में दह कर
देह की देहरी को लाँघ
मन की गलियों से होता हुआ
रंग देता है आत्माओं को
कभी न छूटने वाले प्रेम के
अनंत विस्तार से
गुलाबी महावर।
****

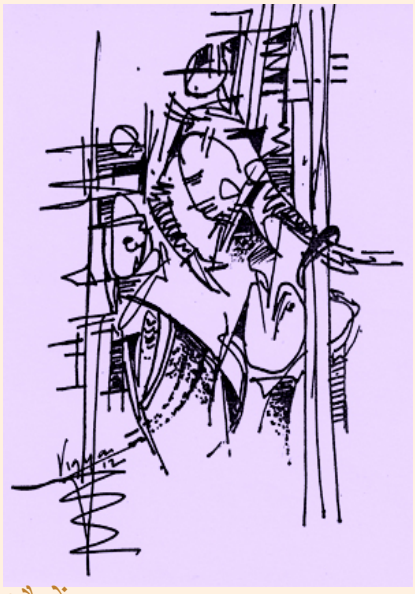

औरतें

छपती रहती हैं औरतें
कहानी, ग़ज़ल
या नज़्म की सूरत में

आगाज़.....अंजाम
तय करता है कलमकार
कब-कहाँ से शुरू
कब-कहाँ ख़त्म।
यूँ ही बार-बार
लिखी जाती हैं
मिटा दी जाती हैं औरतें
साँसें लेती ज़िंदगियाँ
हो जाती हैं किरदार
जीती हैं मरती हैं
ख़ुशफ़हमियों में
या बदग़ुमानियों में।
ख़ूब बिकते हैं आँसू
ज़ख्म लूटते हैं मुशायरे
ख़त्म होती हर औरत
कर जाती है मक़बूल
किसी कलमकार को।
सुनो !
ग़ौर से सुनना
महसूस करना तुम
हर ग़ज़ल-नज़्म-कहानी में
मिल ही जाएँगीं तुम्हें
कुछ आहें, कुछ सिसकियाँ
कुछ भटकती रूहें.....
दाद की बारिश में
कामयाबी के जश्न में
दफ़न हो जाती हैं
इश्क की मारी
कुछ पाकीज़ा औरतें.....

नई ग़ज़ल में
नई नज़्म में
ढलने लगती है
एक नई औरत
नई कहानी की इबारत बन
छप जाती है
फिर कोई औरत
****

संपर्क: 813, जलवायु टॉवर्स, सेक्टकर - 56, गुड़गाँव - 122011, दूरभाष : 0124-4295741
ईमेल: sushilashivran@gmail.com,

फार्म IV
समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण
(देखें नियम 8)
विभोम स्वर
1. प्रकाशन का स्थान : सीहोर, मध्य प्रदेश
2. प्रकाशन का अंतराल : त्रैमासिक
3. मुद्रक का नाम : ज़ुबैर शेख़
पता : शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011
4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित
पता : पी. सी. लैब, शॉप नंबर 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001
5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर
पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001
6. उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं
स्वमी का नाम : पंकज कुमार पुरोहित
पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001
मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।

हस्ताक्षर
पंकज कुमार पुरोहित
प्रकाशक

कविताएँ

राहुल देव

राहुल देव का एक कविता संग्रह, एक कहानी संग्रह तथा एक बाल उपन्यास प्रकाशित। पत्र-पत्रिकाओं एवं अंतरजाल मंचों पर कविताएँ, लेख, कहानियाँ, समीक्षाएँ आदि का प्रकाशन। साहित्यिक वार्षिकी 'संवेदन' के दो अंकों का संपादन। त्रैमासिक पत्रिका 'इंदु संचेतना' का सहसंपादन।

युवा कवि

किसी शहर में एक आदमी रहता था
उसके घर में एक दिन एक कविता ने जन्म लिया
और वह आदमी से एक युवा कवि बन गया
कुछ लोगों ने अफवाह उड़ाई
उस कविता को उसके अवैध संबंधों की उपज बतलाई

वह जहाँ जाता
लोग बाग उसके पीछे पड़ जाते
कुछ लोग उसे समझाते
कुछ लोग उसे गरियाते
उसे कुछ प्रशंसाएँ और ढेर सारी आलोचना मिलीं।

उसके घर में कविता मुकम्मल हो रही थी
हतप्रभ है युवा कवि
कि उसे उन लोगों ने उपेक्षित किया
जिनमें उसकी खूब श्रद्धा थी
जिनको वह साहित्य जगत् की तोप समझता था
जिनका वह सम्मान करता था

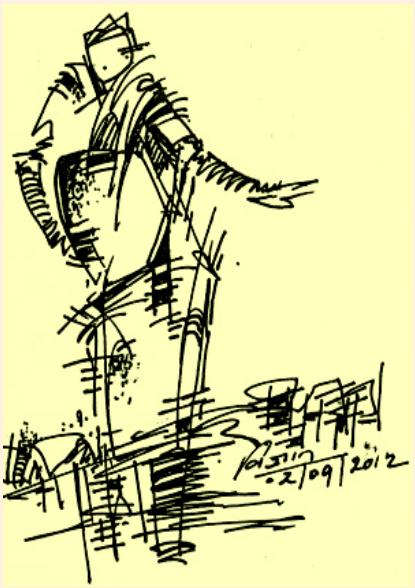

जिनके बारे में उसने सुन रखा था
कि अमुक कवि होने के साथ आदमी भी बहुत अच्छा है।

उसने जिन-जिन पत्रिकाओं में अपनी कविता भेजी
लिखा 'अगर उचित समझें तो प्रकाशित करें'
फिर क्या था, किसी ने उचित नहीं समझा
किसी को फ़ोन नहीं किया उसने
किसी का हालचाल नहीं लिया उसने।

कैसे-कैसे लोग, कैसे-कैसे रंग
बोध हुआ युवा कवि को
कि रास्ते कितने कठिन
और यात्रा कितनी लम्बी है।

एक दिन युवा कवि ने सोचा
कि बहुत दिन हुए
धीर-गंभीर रहा, कविता में खोया रहा
अब कुछ हँसी-ठिठोली हो जाए।

सबसे पहले उसने दिल्ली में रहने वाले
अपने पत्रकार भाई को फ़ोन मिलाया
और अपनी दर्दभरी कहानी सुना रोया
तत्काल उसके भाई ने चार संपादकों को फ़ोन लगाया
और उसकी कविता को हर जगह ससम्मान छपवाया
एक दिन उसकी कविता पर किसी पारखी की नज़र पड़ी
और उसे 'भारत भूषण पुरस्कार' मिला।

पुरस्कार समारोह में उस पत्रिका के संपादक जी भी आए
अपने भाषण में बोले, 'यह हीरा हमीं खोजकर लाए'
कविता पर डेढ़ घंटे चर्चा हुई, विचार हुआ, विमर्श हुआ
युवा कवि ने मुस्कुराते हुए अपना पुरस्कार ग्रहण किया
और कुछ सोचते हुए शान से घर की ओर चल पड़ा।

अगले दिन टी.वी. पर, अख़बार में, सोशल मीडिया पर
हर जगह छाया हुआ था युवा कवि
संपादक उससे कविताएँ माँग रहे थे
आलोचक उसकी कविताओं का माहात्म्य गुन रहे थे।

इन सबसे बेख़बर युवा कवि
अपने घर के किसी कोने में
अपनी अगली कविता लिखने की तैयारी कर रहा था !

****

तलाश

मैं हाँफ रहा था
सोचते हुए कि,
कितना कठिन है खुद को खोज पाना
उम्र भर जिसकी तलाश में
भटकता रहा यहाँ-वहाँ.....

एक सुबह मैंने अपनी पत्नी से पूछा,
पत्नी ने नाक चढ़ाकर कहा-
मुझे क्या मालूम तुम कहाँ हो
मुझे बस इतना मालूम है
कि तुम खुद के घर में हो
मैं तुम्हारी बीवी
और तुम मेरे पति हो...

फिर बच्चों से पूछा,
बच्चे बोले-
यह आप क्या कह रहे हो

आप तो बस हमारे डैडी हो !

अम्मा ने कहा,
तू है मेरा लाल
बाबू जी बोले,
इसका दिमाग फिर गया है
लड़का तो मेरा ही है
न जाने किस पे पड़ गया है....

घर में जवाब न मिलते देख
मैं दुखी मन से अपने ऑफिस चला गया
मैंने सोचा कि बॉस से भी पूछ लिया जाए
मेरा पूछना भर था कि वह गुर्राए, फिर आँख चढ़ाकर बोले-
अमा मियाँ क्या चढ़ाकर आए हो
भूल गए क्या कि आप सरकारी नौकर हैं !
मैं सुबह से शाम तक
ऑफिस में फ़ाइलें निपटाता रहा
सोच-सोचकर घुला जाता था
आख़िर मैं कौन हूँ...

वहाँ से निराश लौट ही रहा था
कि रास्ते में मंदिर के सामने
मेरे पैर रुके
ईश्वर ने दूर से ही कहा
यहाँ मैं रहता हूँ
तू यहाँ नहीं हो सकता

वाजिब सवालात थे
अजीब हालात थे...

बचपन से आज तक
मैंने कभी अपने आप को नहीं ढूँढ़ा
बस चलता रहा, घिसटता रहा
बहता रहा-बहता रहा
मेरे सपने सो गए थे समय के साथ
चलता था, रुकता था
रुकता था, चलता था
टिक-टिक-टिक
आवाज़ों के दरमियाँ
मैं खुद का कभी हो ही नहीं पाया,
वेदनाएँ असीमित-प्रेम अपरिमित
आज पता लगा
कितना कठिन होता है
अपने को खोज पाना...

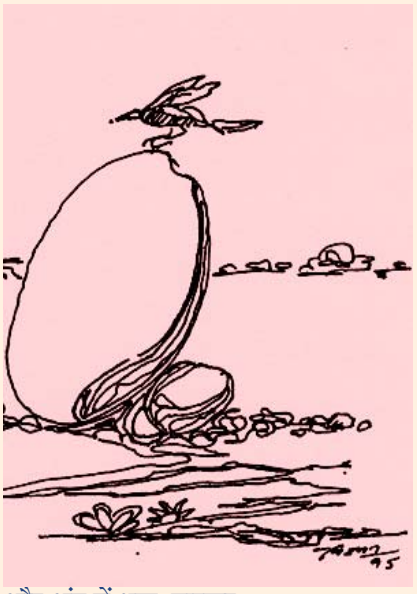

और अंत में थक-हारकर
मैं कविता के पास जा बैठा
कविता ने मुझे पुचकारा - दुलारा
और बोल पड़ी-
मैं ही तेरा अन्दर हूँ
मैं ही तेरा बाहर हूँ
मुझमें तू - तुझमें मैं हूँ
प्यारे दोस्त !
कवि होने और आदमी होने में कोई फ़र्क नहीं होता
कविता से ऐसी बातें सुनकर
मुझे बहुत बल मिला

आज खुश हूँ मैं
अपने साथ
इत्मिनान है
कि मेरे पास कविता है !

****

चिट्ठियाँ

चिट्ठियाँ अब नहीं आतीं
कोई पोस्टकार्ड या अंतर्देशीय
तो आए अरसा हुआ
फिर भी मुझे इंतज़ार रहता है डाकिए का
कि वह आए और दे दे मेरे हाथों में कोई चिट्ठी।

मेरा पाँच साल का छोटा सा भांजा
अपने मम्मी-पापा के साथ अपनी नानी के घर
दिल्ली से जब महमूदाबाद आया
तो उसने पूछा मुझसे चिट्ठी का मतलब।

मुझे हैरानी होती है कि वह अभी से
टी.वी. के सारे कार्टून चरित्रों से परिचित है
वह मोबाइल से कॉल कर लेता है
एसएमएस भेज लेता है
और अपनी पसंद का गेम भी खेल लेता है।

अभी कुछ ही दिन हुए होंगे
जब उसने मुझसे कहा,
मामा मैंने फेसबुक पर आपको अपना फ्रेंड बना लिया है
कुल मिलाकर उसका सामान्य ज्ञान
कई मामलों में मुझसे बहुत अच्छा है।

अपने आसपास और बच्चों के
इस तीव्र विकास दर को देखकर
मैं बहुत खुश हूँ,
लेकिन मन के किसी कोने-अतरे से
रह-रहकर आती है आवाज़
कोई मेरा हालचाल पूछता
मुझे चिट्ठी लिखता।

मैं अपने भांजे के प्रश्न का उत्तर देने के लिए
सँभालकर रखी गई अपनी पुरानी
चिट्ठियों के खज़ाने को खोलकर
उसके सामने रख देता हूँ,
वह कभी चिट्ठियों को देखता है
और कभी मुझे,
फिर हँसकर भाग जाता है।

मैं भी उन महकती चिट्ठियों को समेटकर
अन्दर कमरे में
उसके साथ खेलने लग जाता हूँ।

मुझे इस बात का तनिक भी आश्चर्य नहीं है
कि उस दिन के बाद से अब तक
उसने मुझसे कभी चिट्ठी का मतलब नहीं पूछा!

****

संपर्क : 9/48 साहित्य सदन, कोतवाली मार्ग, महमूदाबाद (अवध), सीतापुर, उ.प्र. 261203, दूरभाष: 09454112975
ईमेल: rahuldev.bly@gmail.com

कविताएँ

अनिल प्रभा कुमार

अमेरिका के विलियम पैट्रसन यूनिवर्सिटी, न्यू जर्सी में हिन्दी भाषा और साहित्य की प्राध्यापिका अनिल प्रभा कुमार का बहता पानी (कहानी-संग्रह) और उजाले की कसम (कविता-संग्रह) हैं। अन्तर्राष्ट्रीय समाचार संस्था 'विज़न्यूज़' में सात वर्षों तक तकनीकी- संपादक के रूप में कार्य।

दरवाज़ा

रिश्तों का यह दरवाज़ा
बहुत खुला है
इसमें कोई ताला या
साँकल भी नहीं
जब चाहो इससे
बाहर निकल सकते हो
खुली राहों में
विचर सकते हो
पर वापिस लौटने की
भूल मत करना
यह लौटने की
आज़ादी नहीं देता।
****

बोलती गुड़िया

उस गूंगी गुड़िया को
अब बोलने की आज़ादी है
ख़ूब बोलती है
जी भरकर हँसती है
बहस करती है
नारे लगाती है
मुहिम चलाती है।
उसका साथी मन्द-मन्द मुस्कुराता है।
गुड़िया नहीं जानती
कि वह अनजाने में
तग़में लगाती जाती है उसे
कितना उदार, महान्
प्रगतिशील साथी है वह
गुड़िया उसी का तो क़द बढ़ाती है।
वह यह भी नहीं जानती
उसके भीतर
जो 'स्मार्ट चिप' छिपा है
वह उसके साथी ने ही तो लिखा है।
अचानक एक दिन वह 'चिप'
गड़बड़ा गया
गुड़िया अपनी ही भाषा बोलने लगी
हर बात को अपनी ही कसौटी पर
कसने लगी।
घबरा गया साथी
नाराज़ हो गया साथी
झल्ला कर फेंक दी गुड़िया उसने।
गुड़िया हैरान-परेशान
कहाँ क्या ग़लती हो गई
बस इतना जाना
कि अब वह अकेली हो गई।
पर अब उसे
अपनी ताक़त का अहसास था
अपनी आज़ादी का अनुमान था
वह पहले ही की तरह
ख़ूब बोलती है
जी खोलकर हँसती है
बहस करती है
नारे लगाती है
मुहिम चलाती है।

रात के सुनसान अँधेरे में
थककर लेटती है गुड़िया
अकेलापन धंस जाता है
कहीं बहुत भीतर तक।
बिलख-बिलख कर रोती है गुड़िया
यह नया 'चिप' कहाँ से आया
सुबह उठकर सोचती है गुड़िया।
****

प्रेम कविता

सोचा था
आज प्यार की कविता लिखूँगी
जिसमें एक ख़ास गंध होगी
उस फूल की
जो कोई लड़का
पहली बार
पसीने से भीगी हथेलियों से
उस लड़की को देता है
जिसने उसे सपनों के
इन्द्रधनुष पकड़ाये थे।
कविता की रंगत में
उस प्रेमी की आँखों की नमी होगी
जो पहली बार प्यार करता है
फिर उस लड़की की आँखों में तैरते
अनगिनत रंग भरूँगी
जो प्यार ही में
डूबने- मरने के सपने देखती
ख़ुद ब ख़ुद प्यार बन जाती है।
सोचा था आज
उसी प्यार की कविता लिखूँगी।

प्यार की कविता
कागज़ पर उतरते -उतरते
रंग बदलने लगती है
स्याही से खून छलछला आता है
धुएँ से काली
होती जाती है लिखाई
शब्द सिसकने लगते हैं
धूँ- धूँ घर- बाहर जल रहा है
नफ़रत की आग से
मैं सब अनदेखा, अनसुना कर
आगे बढ़ना चाहती हूँ
मुझे प्रेम कविता लिखने दो
गिड़गिड़ाती हूँ
न कागज़, न क़लम
न हवा, न रोशनी
कोई साथ नहीं देता
सब नाराज़ हैं
यहाँ तक कि मेरी रूह भी
इजाज़त नहीं देती
मैं देखती रहती हूँ बस
उस स्याह, ख़ून से लथपथ
वक्त के काले सफ़े को।
और मैंने सोचा था
आज एक प्रेम कविता लिखूँगी।
****

संपर्क: 119 Osage Road, Wayne, NJ 07470. USA
ईमेल: aksk414@hotmail.com

कविताएँ

एकता मिश्रा

इन्दौर निवासी एकता मिश्रा की कविताएँ तथा लघु-कथाएँ मध्यप्रदेश के कई प्रमुख समाचार पत्रों में नियमित रूप से प्रकाशित होती हैं। उनकी छोटी-छोटी प्रेम कविताएँ विशेष रूप से सराही जाती हैं।

अलबेली

मैं अवाक थी,
चुप होकर देखती रही,
उसकी प्यारी सी हँसी।
कैसी निश्छल थी उसकी हँसी,
स्वच्छ, निर्हर !
वह 'लाड़ली' थी, आदिवासी मज़दूर ॥
उसका छोटा-सा घर जल गया था .....
धूँ-धूँ कर जल रहा था।
ईंट पर ईंट लगाकर रची हुई दीवार,
चार दीवारें मुश्किल से ठस थी ॥
कच्ची दीवारें,
ऊपर सीमेंट की चद्दर की छत
और बन गया लाड़ली का घर।
कोने में तीन ईंट रख बनाया चूल्हा,
कुछ एल्यूमिनियम के बर्तन,
जो गिर कर कोंचे पड़,
उसकी ज़िंदगी के दर्द का
बयान कर रहे थे ॥
इन्हीं बर्तनों में वह चार बच्चों,
पति की भूख का इंतजाम
रोज़ करती थी.....।
रात के तीन-साढ़े तीन बज रहें होंगे,
दिसम्बर की कड़ाके की ठंड,
उसपर बर्फीली हवाएँ बह रही थी,
लाड़ली ने चूल्हे की आँच को,
रात में अपने टपरे-नुमा घर के

बाहर फेंक दिया था
उस राख के
धीमे से सुलगते कोयले की आग को
हवा के झोंको ने और जीवंत कर दिया
और दीवार पर लगी
प्लास्टिक की तिरपाल उड़कर
उस आग से लिपट गई।
लाड़ली के पूरे टपरे ने
देखते ही देखते आग पकड़ ली।
''दीदी म्हारो घर जली गियो''
लाड़ली कह रही थी,
होंठों पर हँसी
हमेशा की तरह कायम थी।
''म्हारा बच्चा बची गया,
नई तो इं पर जली जाता''
मैं दंग थी उसका हौसला देख।,
मैं उसके हाथ देख रही थी,
उसके ये दो हाथ
सामने खड़ी बड़ी सी कोठी के
निर्माण के भागीदार थे,
वहीं ईंट पर ईंट जमा,
ऊँचें दर्जे के सीमेंट से
दो ईंटों की दरारों को
जोड़ने वाले हाथ .....
ऐसी दीवार जो
कभी ना टूटे, चटखे,
अटूट मज़बूती का निर्माण करने वाले हाथ
देखते ही देखते छत की
बिछावन करने वाले हाथ खाली थे।
चौकीदारी के लिये बनाया
टपरेनुमा लाड़ली का घर जल गया था
और ये कहर दूसरी बार हुआ था।
एक बार पहले भी
रात में ही पूरी दीवार ढह गई थी,
उस दिन भी
वह हँसी अंदाज में कह रही थी,
''म्हारा बच्चा बची गया दीदी'' .....
घर की 'दीवार ढह जाना'
घर 'आग की लपेट में आना' .....
इन शब्दों को
हम सब
'विपत्ति' के मुहावरे रूप से ही परिचित हैं।
ये मुहावरा चरितार्थ होते
मैं देख रही थी।
वो बड़े लोगों की कोठियों का
घर का निर्माण कर रही थी,
वो गरीब कंगाल थी !
उसके पास जीवन में आई
हर विपत्ति को
हँसते हुए ठेंगा दिखाने की कला थी,
पर समाज में
वह अनपढ़ गँवार कहलाती !
बहुत ही बौना महसूस हो रहा था
उसके सामने !
सांत्वना के लिये भी साहस नहीं था,
मेरी शिक्षा खोखली
और सुसंस्कृत होना
बनावटी लगने लगा।
अमीर तो लाड़ली थी।
अपने घर की चिंता के सामने भी
उसका मुस्कुराहट से दमकता
चेहरा देख लगा,
ये सिर्फ नाम की लाड़ली नहीं,
ईश्वर की भी लाड़ली है।
अनायास ही मेरा जी भर आया,
मैंने उसे छाती से लगा,
अपने हाथों की हरी चूड़ियाँ उतार
लाड़ली के हाथों में सजा दी.....
उन हरी चूड़ियों को
सही हाथों में पिरो दिया .....
निर्माण के हाथ,
ऐश्वर्य निर्माण के हाथ,
संपन्नता से भरपूर हथेलियाँ !

****

संपर्क : एफ़-6, रेडियो कॉलोनी, कलेक्टर निवास के पास, इन्दौर, मप्र 452001

कविताएँ

डॉ. शैलजा सक्सेना

टोरांटो के मानवीय संसाधन (ह्यूमन रिसोर्सस) में स्वतंत्र रूप से कार्यरत डॉ. शैलजा सक्सेना, स्वतंत्र कवयित्री, लेखिका हैं और 'क्या तुम को भी ऐसा लगा?' आपका काव्य संग्रह है और भारत की अनेक पत्रिकाओं में कहानी, कविताएँ तथा लेख प्रकाशित होते हैं।

बच्चा पिटता है !!

बच्चा पिटता है !!
अमरूद चुराता है?
पीटता है माली बच्चे को
बस! बच्चा पिटता है।

माली को कोई नहीं पीटता
जो रोज़ लेता है भर कर अमरूद,
अपने बच्चों के लिये
बस! बच्चा पिटता है ॥
माली के मालिक को कोई नहीं पीटता
जो लेता है हज़ारों,
एक फ़ाइल आगे बढ़ाने के,
मालिक के मालिक को कोई नहीं पीटता
जो लेता है लाखों, इधर का उधर करने के
बस! बच्चा पिटता है ॥

कोई नहीं पीटता गुंडे को,
जो लेता है हफ़्ता लोगों से!
कोई नहीं पीटता विधायक को,
जो लेता है गुंडों से !
कोई नहीं पीटता मंत्री को,
जो लेता है विधायक से !
कोई नहीं पीटता इतने सारे लोगों को,
बस! बच्चा पिटता है ॥

****

मूड

दिन की शतरंजी बिसात पर
हर बार रखा मैंने
अपने मूड को उठा कर
तुम्हारे मूड की चाल के अनुसार
और पूरी कोशश करी
अपने मूड को बचाने की।

पर तुम्हारा मूड बदलते ही
पिट जाते हैं
मेरी युक्तियों के हाथी और वज़ीर !
बचती फिरती है मेरे उमंगों की रानी,
धैर्य के प्यादों के पीछे छिपता है,
मेरे अस्तित्व का राजा !

तुम्हारा ध्यान हटाने की कितनी भी कोशिश करूँ,
पर हर बार तुम्हारा मूड जीतता है
और मात खा जाता है मेरा मूड ॥

****

लिखने तो दे....

वो लिखती चली जाती है कविता
हर रोज़ !
हर रोज़
उमड़ता है एक सागर
उसके भीतर,
दीवारों के पलस्तर सी यादों को
साथ ले,
बुहारता चलता है
घर, आँगन, सामने का तुलसी चौरा,
कोने की बँधी गैया,
बाहर का कुआँ...
सब बहते चलते हैं
उसकी यादों के सागर में !
यहाँ अम्मा ने बनाए थे
बेसन के गट्टे,
यहाँ टूटा था घड़ा गेंद से..

इसी नीम के नीचे झुकी थीं आँखें,
वो रहा आम,
जिस के पीछे छुप के खड़ी थी
अपनी साँसों को थामती
पतंग से उड़ते सपनों को साधती...
वो सब लिख देना चाहती है
भोर का रंग, दोपहर की तपन
साँझ की उम्मीद, रात के आँसू सब...
फिर..क्या होगा अम्मा?
लिख देगी तो हो जाएगी हल्की?
छुटकी ने टोहका लगाया
कहानी सुनाती अम्माँ को,
माँ खोई देखती रही उसकी ओर
जैसे
किसी ने हाथ थाम लिया हो उसका !!

बताओ न फिर क्या होगा?
छुटकी जानना चाहती थी
लिखने का भविष्य ?
लड़की का भविष्य ?
लड़की के लिखने का भविष्य..?

माँ
झुँझला गई,

इतनी बक-बक क्यों?
पहले लिखने तो दे,
फिर देखेंगे !

छोटी चुप....
माँ की आँखें
कहीं दूर के आसमान पर
फिर
कहानी लिखने लगीं !!

****

आज की कविता

ऐसी चली हवा कि
मेरी कविता की कल्पना बेल
सूख गई अचानक
छंदों की नगरी में मची ऐसी भगदड़
कि कोई दोहा
और चौपाई तक पीछे नहीं छूटा
और सारा का सारा काव्यशास्त्र नगर
खाली हो गया।

ऐसी चली हवा कि....
अफगानिस्तान के पथरीले ढूहों पर,
घर से बहुत दूर एक अजाने देश की अजनबी
मिट्टी पर
संवेदनहीनता आँखों के बीच
अकेले मरते सैनिक की आह ने
मेरी संवेदना के नाचते पैर थाम लिए,
और अपने प्रेमी की मदभरी आँखों में
मुझे उस बूढे अफ़गानी की
आँखें दिखाई देने लगीं
जिसने अपने दूसरे पोते को दफ़नाया था कल
बेटे तो बहुत पहले ही बिछुड़ गए थे उससे।

ऐसी चली हवा कि.....
मेरे सारे रूपक, सारी उपमाएँ
सारे अलंकार फैल गए
काले कपड़ों में लिपटी
हाय-हाय करती उस बेवा के चारों तरफ़
जो बुक्का फाड़ रोना चाहती है
और बुरका उतार भाग जाना चाहती है
चारों तरफ़ के खून खराबे से बहुत दूर।

ऐसी चली हवा कि.....
मेरे गीत अचकचा कर
भाग जाना चाहते हैं दीवारों के पीछे,
देख नहीं पाते हेटी में मरते आदमी
नाइजीरिया - युगांडा में उठती राइफलें
इथियोपिया की सूखे से दरकती धरती,
चीन के बन्द तहखानों में पसीना बहाते
बच्चे रोने लगते हैं मेरे कलम उठाते ही
और सुनामी की लहरों से उजड़े लोग
उमड़ आते हैं मेरी चेतना की लहरों में,

मेरी दार्शनिकता,
जीवन के रहस्यों पर विचार करना बन्द
भागती है अपने भारी-भरकम पोथे
उठा जब छह अरब की
आबादी अपने को दिनरात
असुरक्षित महसूस करती है।
जब प्रवासी होने के कारण
एक देश का विद्यार्थी पिटता है दूसरे देश में,
और एक देश अपने ही लोगों के हाथों से
छीन लेता है निवाला;
क्योंकि वह निवाला दूसरे देशों को सस्ती
कीमतों पर बेचा जा सकता है,
जब रोटी देने वाली ज़मीन पर
बनाए जाने लगते है संकीर्णता के पिंजरे
और लोग अपनी वफ़ादारी पलट देते हैं।

मेरी कविता के पेट से
स्खलित हो जाता है भविष्य का सपना
जब हम आतंकवादियों के बमों को,
राजनीतिज्ञों की भ्रष्ट करतूत को,
न्यायालय के अन्याय को,
नीतियों की कुरीतियों को,
मान कर अपने जीवन का हिस्सा
बेबसी से देखते हैं कि
''किया ही क्या जा सकता हे?''
तब..... तमतमा उठती है मेरी कविता
और उसकी फुँकार से
अलंकार और कल्पना के
इन्द्रधनुषी पँख
जलने लगते हैं
और कविता तैयार होने लगती है
नुकीला पत्थर बनने को
जिस पर
छन्दों और रूपक का
अलंकार और कल्पना का
प्रेम और उदासी का मखमली कपड़ा नहीं
चढ़ाया जा सकता
बल्कि जो वार करती है
सीधा सच्चाई पर
सच को सच और झूठ को झूठ कहने की
ताकत पैदा करती है कवि में
और कवि को
कवि से पहले बनाती है
एक मनुष्य !!

****

संपर्क : shailjasaksena@gmail.com

ग़ज़ल

संजु शब्दिता

मुद्दतों रूबरू हुए ही नहीं
हम इत्तेफाक़ से मिले ही नहीं
साथ वो ले गया बहारें भी
फूल बागों में फिर खिले ही नहीं
चाहने वाले हैं सभी उनके
वो सभी के हैं बस मेरे ही नहीं
दरमियाँ होता है जहाँ सारा
हम अकेले कभी मिले ही नहीं
सादगी से कहा जो सच मैंने
वो मेरे सच को मानते ही नहीं

****

ऐब औरों में गिन रहा है वो
उसको लगता है की ख़ुदा है वो
मेरी तदवीर को किनारे रख
मेरी तक़दीर लिख रहा है वो
मैंने माँगा था उससे हक़ अपना
बस इसी बात पर खफ़ा है वो
पत्थरों के शहर में ज़िन्दा है
लोग कहते हैं आइना है वो
उसकी वो ख़ामोशी बताती है
मेरे दुश्मन से जा मिला है वो

****

झूठ-चमक से हारा दिन
कैसा है अँधियारा दिन
ख़ुदकुशी कभी कर लेगा
विदर्भ-सा बेचारा दिन
जिसके जितने मीठे बोल
उसका उतना खारा दिन
रात से जिनकी कट्टी है
उन चोरों का प्यारा दिन
निरगुन-सा बजने लगता
कभी-कभी इकतारा दिन

****

ईमेल : sanjushabdita@gmail.com

कविताएँ

पारुल सिंह

पारुल सिंह की कविताएँ कई पत्र-पत्रिकाओं तथा इंटरनेट पर ब्लाग्स और वेब मेगज़ीन्स में प्रकाशित हुई हैं। बांगलादेश की राजधानी ढाका में हुए आतंकी हमले में मारी गई भारत की तारुषी जैन की माँ को संबोधित पारुल सिंह की यह लम्बी कविता।

बांग्लादेश की राजधानी के कैफ़े में इस्लामिक स्टेट (आईएस) के आतंकियों ने हमला कर 20 बंधकों की हत्या की है, उनमें भारत की लड़की तारुषी जैन भी थी। 19 साल की तारुषी जैन कैलिफोर्निया यूनिवर्सिटी की छात्रा थी।

तारूषी जैन की मम्मा

बहुत ज़ोर से धड़क रहा है।
माँ का दिल है।
जब जिगर के टुकड़े आँखों से दूर हों तो,
डर के मारे डर-डर के धड़कता है।
माँ का दिल है।
वैसे मैं दुखी नहीं हूँ।
वैसे मैं डरती नहीं हूँ।

दीवाली की छुट्टियों में
घर आएगी ही बिटिया।
पर तैयारियाँ तो
सब अभी से पूरी हो चुकी हैं।
अच्छे खासे लम्बें बालों को
रूखा कर रखा होगा
रोज़ आँवले के तेल की
मालिश करनी पड़ेगी उसके सर में।
बेस्वाद खाना खाने की
आदत कहाँ है उसकी
ब्रेकफास्ट, लंच, डिनर
उसकी फरमाईश का होगा घर में।
अब भी कॉलेज से ही
फ़ोन पर हर रोज़ की गॉसिप,
प्रोफ़ेसर्स की बातें,
क्लासमेट्स से हुए इरिटेशंस
सब बता कर
ही चुप होती है वो।

आ जाएगी तो उसकी गोद में सर रख कर
कितने गप्पे मारने हैं।
उसके क्रश, उस पर क्रश
और अपने व्हाट्सअप पर आने वाले मैसेजेस
भी बताने हैं उसे।
वो फिर बोलेगी, 'मम्मा, व्हाट्सअप में
ब्लाक का आप्शन भी होता है।'
फिर विंक कर के बोलेगी, 'वैसे नाउ यू आर
फोर्टी प्लस
यू डिज़र्व ए बॉयफ्रेंड।'
खाएगी मार मुझ से।
रात-रात भर बालकनी में
दीवाली के मौसम में
लाइटिंग में बैठ गप्पे मारेंगे हम दोनों।
खूब शॉपिंग, घर को सजाना तो करेंगे ही
पर एक टुकड़ा मिठाई का न खाने देगी मुझे।
बोलेगी - दिख नहीं रहा ?
कितनी मोटी हो रहीं हैं आप माँ।

वैसे मैं दुखी नहीं हूँ
वैसे मैं डरती नहीं हूँ
पर बहुत ज़ोर से धड़क रहा है
माँ का दिल है
जब जिगर के टुकड़े आँखों से दूर हों तो डर
के मारे डर-डर के धड़कता है
माँ का दिल है
तारूषी जैन की मम्मा
अब भी तुम्हारा दिल
डर-डर के धड़कता है?
अभी भी कोई डर बचा है?
सबसे बड़ा डर ही खत्म हो गया
अब तो तुम्हारा।
देखी थी अख़बार में फ़ोटो तुम्हारी।
तारूषी की फ़ोटो को सीने से लगाए
अपनी बच्ची को जलती धधकती
लकड़ियों के हवाले करने से
मना कर रही थीं तुम।
सच में किचन में,
कभी कड़ाही के पास तक
नहीं फटकने देते
हम अपनी लाड़लियों को।
फिर कैसे स्वाहा हो जाने देतीं तुम
अपनी रूई सी नरम नाज़ुक गुड़िया को।
जॉन्सन एंड जॉन्सन
साबुन, क्रीम, टेल्कम पाउडर
ये ही ब्रांड यूज़ करती होगी न तुम भी ?
बच्चों की सेंसिटिव स्किन के लिए
कोई समझौता नहीं भई।
मालिश, लोई कर के नहला कर
बहुत हलके हाथ से फाए में
लपेट- लपेट कर लगाती थी
जॉन्सन एंड जॉन्सन टेल्कम पाउडर
गर्दन के घरडो में ?
कि कहीं रैशेज न आ जाएँ गोल मटोल गुड्डी
की गर्दन में।
सुना है उसी गर्दन को .....
तेज छुरी से ....
मुर्गी की तरह .....

खूब शौक़ होगा कपड़ों का तारुषी को ?
जब वो शार्ट्स पहन कर इतराती होगी।

तुम जैसे अपना बचपन जी जाती होंगी।
फिर सेल्फी लेती होगी वो तुम्हारे साथ,
तुम्हारे बेढंगे पाउट पर हँसती होगी ?
माँ का कलेजा ठंडा हो जाता है
अपनी लाडली को
उसका वुमेन्हुड एन्जॉय करते देख कर।

अपने खर्चे से उसे
एक्स्ट्रा पॉकेट मनी भी भेजती होंगी तुम।
सारी माएँ एक सी
और सारी कुड़ियाँ नौटंकी।
कितने बहाने
माँ को बहलाकर पैसे माँगने के।
जबकि समझती वो भी हैं।
समझती हम भी हैं ये नौटंकीबाजी।
उसकी शादी के सपने भी
सजा लिए थे क्या ?
जोड़े का कलर भी सोच लिया था क्या ?
पैदा होते ही सजा लिए होंगे खैर सपने तो।
गहना -घट्टा भी जोड़ रही होंगी तुम।
शापिंग कहाँ- कहाँ से होगी
सी पी नल्ली से सिल्क,
सब्यसाची लहँगा,
कहाँ पहनेगी वो साड़ी
देखना वेस्टर्न ड्रेसेज लेगी।
काश बुर्का पहनना सिखाया होता तो .....

सिखा दी होती कुछ आयतें
रटा दिया होता कलमा।
सर्वधर्म समभाव नहीं आया था तुम्हें ?
थोड़ा बाइबिल, थोड़ी गुरुबाणी और हाँ
गायत्री मन्त्र वगैरह का ज्ञान देना
ज़रूरी है बच्चों को
अब आतंकवाद का भी मज़हब होता है।
पर माँ किसी मज़हब की हो
उसका सबसे बड़ा मज़हब
उसकी औलाद की जान है।
अब सब माओं को
ये अपने बच्चों को रटाना ही होगा।
अब और एक भी जान का जाना
अफोर्ड नहीं कर सकती हम माँएँ
वैसे मैं दुखी नहीं हूँ
वैसे मैं डरती नहीं हूँ
पर दिल बहुत ज़ोर से धड़क रहा है
माँ का दिल है
जब जिगर के टुकड़े आँखों से दूर हों
तो डर के मारे डर-डर के धड़कता है
माँ का दिल है
तुम तो जैन हो ना ?
देखो कैसी हो गई हूँ मैं,
ज़िंदगी में पहली बार लोगों की जात
और सरनेम जानना चाहती हूँ।
नहीं पर यूँ ही पूछ रही हूँ
जैन, वो जिओ और जीने दो वाले ?
जो क़दम रखते हैं
तो चींटी के मरने का डर होता है उन्हें।
और साँस लेते हैं
तो सूक्ष्म जीवों के मरने का डर।
क्या बिगाड़ दिया था तारुषी ने उनका ?
उनके मज़हब का ?
नहीं कुछ नहीं
प्रीकॉशन के लिए पूछ रही हूँ।
तुम्हारी तरह मुझे भी
अब कुछ खास नामों से
डर लगने लगा है।
देखो कैसा बना दिया
इन लोगों ने मुझे।
ये खास नाम
मेरे मामा, चाचा, भाई भी हैं।
तारुषी की मम्मा
तुम तो अब हर डर से ऊपर उठ गईं।
पर तुम्हारा डर
अब मेरे दिल में डर-डर के धड़कता है।
वैसे मैं दुखी नहीं हूँ
वैसे मैं डरती नहीं हूँ
पर बहुत ज़ोर से धड़क रहा है
माँ का दिल है
जब जिगर के टुकड़े आँखों से दूर हों तो
डर के मारे डर- डर के धड़कता है
माँ का दिल है
पर मैं बहुत डर गई हूँ।
तुम्हारी तारुषी तो परी-सी थी
परी होकर चली गई फेयरी लैंड।
पर मैं बहुत डर गई हूँ तारुषी की मम्मा।
क्या करूँ ?

****

संपर्क : सी-201, डॉक्टर्स पार्क, सेक्टर-5, वसुंधरा, ग़ाज़ियाबाद
उत्तरप्रदेश 201012
ईमेल : psingh0888@gmail.com

ग़ज़ल

प्रदीप कांत

इसका क्या क़िरदार मियाँ
ये ठहरा बाज़ार मियाँ
कैसे पैरों में रख दूँ
अपनी ये दस्तार मियाँ
पानी हम हैं, कर लेंगे
बर्तन का आकार मियाँ
बिन अपराध सज़ा दे दे
राजा का अधिकार मियाँ
फितरत कैसे छोड़ें अब
चुभता है ना ख़ार मियाँ
ढोना ख़ुद ही होता है
अपना-अपना भार मियाँ

***

खोजें कुछ इस मंज़र में भी
उतरें ज़रा समन्दर में भी
रुदन बड़े होंगे शब्दों में
आह छुपी हैं अक्षर में भी
कटने को कटता है जीवन
क़द से छोटी चादर में भी
ढूँढ़ेंगे तो मिल जाएगा
कमतर अपने बेहतर में भी
जैसा पौरस में बहता था
था वो लहू सिकन्दर में भी

****

जाहिल अगर ज़माना था
तुम को पाठ पढ़ाना था
आ ही जाता अब तक तो
अगर फरिश्ता आना था
खाली आज हुआ वो भी
घर में जो तहखाना था
काम कहीं यूँ होता है
मेरा नाम बताना था
कब तक पढ़ता रहता मैं
ख़त वो एक पुराना था

****

24, सत्यमित्र राजलक्ष्मी नेचर, सूर्य मंदिर के पास, केट- राऊ रोड़, इंदौर - 453 331 फ़ोन - 094074 23354
ईमेल : kantv008@rediffmail.com

माँ का आशीर्वाद

जीवन सिंह ठाकुर

वह दिन बेहद तकलीफ भरा था, तकलीफें और दर्द अपनी सीमा के पार जा रहे थे। पेशावर में सैकड़ों बच्चे और शिक्षक मार दिए गए थे। वो आर्तनाद जो माँ, पिता, बहन-भाई-दोस्त कर रहे थे वो हमारे दिलों में बज रहा था। आर्तनाद का लावा देशों की सीमाओं को लाँघ कर दिलों में आँचलों में आँखों में आ गया। उस दिन कई माँओं के चेहरों पर गहरी उदासी और आँखों में पेशावरी सन्नाटा फैला हुआ था। पेशावर कितना नज़दीक, कितना करीब था, उसकी धड़कनें, उसकी उखड़ती साँसों का स्पंदन चेहरों पर महसूस हो रहा था। एक चौकन्नापन छाया था। पेशावर से दिल्ली तक, दिल्ली से देहात तक यही उदासी, खीझ-गुस्सा पूरी तरलता में तमाम सीमाओं और मज़हबी, विदेशी, गैर होने की दीवारों को तोड़ कर एक बाढ़ की मानिंद घुस आया था।

माँ, अपने बेटों, बेटियों को बार-बार अपने आँचल में छिपाये सीने से कस लेतीं। अचानक ख़्याल आया कि क्या 1947 के पार चले गए हैं? क्या ग्यारहवीं सदी आ गई हैं? क्या बख़्तियार खिलजी फिर आ गया है? उसने भी कभी पेशावर पर हमला किया था। 1193 ई. में नालंदा आया। बाढ़ की मानिंद, पूरे सैकड़ों नहीं चालीस हज़ार विद्यार्थियों, बौद्ध भिक्षुओं, अध्यापकों का कत्लेआम कर डाला था।

नालंदा को खून के दरिया में बदल डाला गया। अट्टहास, चित्कार से नालंदा का ज्ञान आँगन भर गया था। नालंदा की विशाल लाइब्रेरी जला डाली। महीनों-महीनों लाइब्रेरी जलती रही। सदियों-सदियों का ज्ञान-शोध-भस्मीभूत हो गया। अक्षर, किताबों की देह से निकल कर अर्थों की चिताओं से गगन में तिरोहित हो गए। वो अट्टहास कर रहा था। दिशाएँ गूँजा रहा था। वो विजेता के दर्प से धरती रौंद रहा था।

पेशावर में 821 बरस बाद फिर बख़्तियार खिलजी आया था। (16 दिस. 2014 का पेशावर हत्याकांड-1193 ई. का नालंदा कांड-2014-1193=821 वर्ष) क्या बख़्तियार अभी भी ज़िंदा है? कुछ लोग कितनी लम्बी ज़िंदगी जीते हैं, सदियों-सदियों तक बेखौफ दुनिया को रौंदते हैं- कितना अजीब है कितनी भयावह स्थिति है, कैसा निजाम है? जलाशय सूख रहे है- लेकिन खून का दरिया कितना बड़ा है।

अध्यक्ष, प्रेमचन्द सृजन पीठ- एफ-2, अधिकारी आवास, विक्रम विश्व विद्यालय परिसर, उज्जैन
निवास : अलकापुरी, देवास 455001 (म.प्र.) मोबाइल : 9424029724
फ़ोन : 07272-227171

दरिया चौड़ा हो रहा है–क्या अपने आप हो रहा है, वे लोग दिखते भी है और नहीं भी दिखते है–या आँखों में ही कोई नुक्स तो नहीं आ गया है? दरवाजों पर पड़ने वाली थाप, फ़ोन की घंटी, मोबाइल की रिंग टोन डराती क्यों है। कान से लगाने के पहले दिल की धड़कने घायल परिंदे की मानिंद फड़फड़ाने क्यों लगी है? क्या फिर 1747 ई. का अहमदशाह अब्दाली तो नहीं आ गया है?

उस दिन बेहद तकलीफ हुई, खतरनाक झटका लगा 'एक माँ के शब्द' पूरी कायनात को हिला कर हज़ार सवालों के तीखे काँटों भरी धरती–आसमाँ थमा गए थे। लगा कि कायनात आख़री साँस ले रही है, कयामत होने को है–

पठानकोट आतंकी हमले में शामिल, आतंकी अपनी माँ से फ़ोन पर बात करता है, हर इंसान को अपनी माँ ज़रूर याद आती है उसे भी याद आई। माँ पूछती है।

खाना खा लिया?

खाना खा लेना।

अल्ला तुम्हें जन्नत देगा।

माँ ये जानती है कि उसका बेटा कहाँ गया है, शायद यह भी जानती हो कि उसका बेटा कितनी माँओं की गोद सूनी करने गया है, कितनी हरी, खूबसूरत जमीं को खून से रंगने गया है। क्या हम इन्सानों को इस बातचीत से यह नहीं लगता कि एक माँ अपने बेटे को किस जेहाद के लिए दुआएँ दे रही है? क्या एक माँ अपने देश में एक बेहतर ज़िंदगी का सपना खो चुकी है, उसके बेटे के लिए उसका देश 'जन्नत' नहीं रहा उसकी जन्नत किसी दूसरे देश में खून की नदी से गुज़र कर मिलेगी? वहाँ से स्वर्ग का दरवाज़ा मिलेगा?

किसी माँ की ऐसी दुआओं से क्या समझें? दुनिया से जब माँ इस तरह खाली होती जा रही हो, माँ का माँ पन से वात्सल्य से, खारिज होना 'कयामत' की आमद से कम नहीं है। माँ खाली हो रही है वह सपनों की किरचें अपनी आँखों में लिए खून के आँसू रो रही हो, वह अपने चारों तरफ उस नर्क से उस जहन्नुम से तंग आ गई है, वह ऐसी जन्नत का ख्वाब देख रही है, जहाँ उसका बेटा जाएगा। एक माँ की खुशी जन्नत के ख़याल से ही गुलाबों की पंखुड़ियों में तैरने लगी हो। क्या अब इस दुनिया को 'सजग', 'चौकन्ना' और 'सन्नद' होने की ज़रूरत नहीं है? बड़ा सवाल तैर रहा है ठेठ हमारी नाक के पास हवाओं में घुला हुआ है। अंदर जा रहा है और बाहर भी आ रहा है।

हत्यारी ताकतों, अमानवीय शक्तियों और लोक विरोधी शैतानी कारगुज़ारियों ने माँ को बरगला दिया है। मूल्यों, भावनाओं, संवेदनाओं और आदमी की मूल्यों के क्षरण का काँटा खतरे के निशान से ऊपर जा पहुँचा है।

इन्सानी रिश्तों, नातों, भावनाओं और वात्सल्य में ग्लोबल वार्मिंग ने जगह बना ली है। ठण्डे प्रदेशों में आग लगी है। ये सभी किसी एक अंत:सूत्र में बंधे है। बख्तियार से अब्दाली तक मैदानों की भट्टियाँ और कंसंट्रेशन कैंपों से साइबेरिया की जेल तक, ठिठुरते उत्तरी ध्रूव से मियाँवली की जेल तक 'सरबजीतों' की दर्दनाक पाश्विक हत्याओं तक सोचने और कुछ इन्सानियत के हित में कुछ करने की ज़रूरत नहीं है क्या?

क्या उठ खड़े होने का वक्त नहीं आया है? 'मूल्यों और रिश्ते', 'भावनाएँ और संवेदनाएँ' इस चतुर्दिक को बचाना ज़रूरी है। ये दुनिया–रिश्तों, प्यार, अपनेपन से बनी है। ये परिवेश, हवाएँ, पानी, नदी–कुओं और जलाशयों से प्राणों का पोषण पाती है।

ये रास्ते, ये घर, छाँव, ये चीढ़, देवद्वार, चिनार से बने है। ये चट्टाने बर्फ की चादर ओढ़े अपने शालीनता में घर, आँगन सजा रही थी वो अब नंगी होकर आँखें मूंदे अपमान का अट्टहास सुन रही है।

न जाने कब से इन शीतल चट्टानों पर अपना सर रख कर सोना चाहता था। अब वे चट्टाने, जंगल की आग से जाग रही है। जंगल जाग गया है, माँ कहीं खो रही है लगता है, तैमूर, बख्तियार और अब्दाली फिर आ गए हैं।

हम फिर खून के दरिया से गुज़रेंगे। कहाँ पहुँचेंगे?

****

''ढींगरा फ़ाउण्डेशन अंतर्राष्ट्रीय कथा सम्मान'' हेतु पुस्तकें आमंत्रित

''ढींगरा फ़ाउण्डेशन अंतर्राष्ट्रीय कथा सम्मान''

हेतु चयन प्रक्रिया प्रारंभ हो चुकी है। इस प्रक्रिया में वर्ष 2015 तथा 2016 में प्रकाशित हिन्दी उपन्यासों तथा हिन्दी कहानी संग्रहों पर विचार किया जाएगा। सम्मान समारोह अगले वर्ष 2017 में अमेरिका में आयोजित किया जाएगा। इस हेतु पुस्तकें आमंत्रित हैं।

पुस्तक पर लिखें

''ढींगरा फ़ाउण्डेशन अंतर्राष्ट्रीय सम्मान हेतु''

लेखक, प्रकाशक, पाठक कोई भी इस सम्मान हेतु अनुशंसाएँ पुस्तक की दो प्रतियों के साथ भेज सकते हैं।

31 दिसम्बर 2016 तक प्राप्त पुस्तकें चयन प्रक्रिया में शामिल की जाएँगीं। सम्मान हेतु पुस्तक की दो प्रतियाँ इस पते पर भेजें–

पंकज सुबीर (समन्वयक–भारत)
पी. सी. लैब
शॉप नं. 3–4–5–6
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने
सीहोर 466001, मध्य प्रदेश
दूरभाष 07562–405545
मोबाइल 09977855399
ईमेल : subeerin@gmail.com

साम्राज्यवाद के अमानवीय अत्याचारों का दस्तावेज़-लाल पसीना

समीक्षक : सुबोध शर्मा

अपने लेखन के माध्यम से समाज को विकास की राह दिखाने का प्रयास प्रत्येक लेखक की ज़िम्मेदारी है। समाज की सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियाँ ही लेखक को लिखने के लिए प्रेरित करती है। अभिमन्यु अनत कुछ ऐसे ही लेखकों में से हैं; जिन्होंने 'लाल पसीना' उपन्यास में समाज के भोगे हुए यथार्थ को अपने लेखन का विषय वस्तु बनाया है। मॉरिशस का प्रवासी हिन्दी साहित्य को मुख्यधारा में लाने और प्रतिष्ठित करने में अभिमन्यु अनत का विशेष योगदान है, इन्होंने हिन्दी में साहित्य सृजन करके न केवल मॉरिशस में अपनी पहचान बनाई बल्कि भारत के साथ साहित्यिक-सांस्कृतिक संबंधों को भी मज़बूत आधार दिया है। अभिमन्यु अनत की बहुमुखी प्रतिभा ने साहित्य और जीवन में एकरूपता लाने के साथ ही साथ अपनी अस्मिता की पहचान, अपनी मातृभाषा और संस्कृति की रक्षा करने में अपने जीवन का श्रेष्ठ योगदान दिया है। अपनी लेखनी के माध्यम से ही नवीन मॉरिशस को हिन्दी साहित्य के करीब और नई पीढ़ी को अपने पूर्वजों के समीप लाकर खड़ा कर देते हैं। उनकी कृतियों को विश्व-मंच पर प्रतिष्ठा और लोकप्रियता प्राप्त है। भारत में भी इनकी रचनाएँ काफी लोकप्रिय रही हैं, अभी तक उनके जैसा कोई भारतवंशी हिन्दी लेखक सामने नहीं आया। वे मॉरिशस ही नहीं विश्व में, कैनेडा और त्रिनिडाड के हरिशंकर आदेश के बाद, ऐसे हिन्दी लेखक हैं जिन्होंने 75 से अधिक उत्कृष्ट कृतियाँ समाज को दी हैं। उनके अभी तक 32 उपन्यास, 7 कहानी-संग्रह, 5 नाटक, 4 कविता-संग्रह, 3 जीवनी, 1 आत्मकथा, 1 अनुवाद, 1 सहलेखन, 4 प्रतिनिधि-संकलन तथा संपादन से जुड़ी कई पुस्तकें प्रकाशित हुई है।

अभिमन्यु अनत प्रवासी हिन्दी के प्रतिष्ठित कथाकार हैं। इन्हें मॉरिशस का प्रेमचंद भी कहा जाता है। 'लाल पसीना' अभिमन्यु अनत की औपन्यासिक कृति है, जिसकी रचना उन्होंने 1971 में की है। इस रचना में भारत से ले जाए गए मज़दूरों के दर्द का जीवंत दस्तावेज़ है। इस उपन्यास के माध्यम से लेखक ने एक विस्तृत कैनवास पर अनेक फ्रेमों में इन मज़दूरों के साथ हुए अत्याचारों की कहानी कहने में सफल रहे हैं। अभिमन्यु अनत की 'लाल पसीना' तत्कालिक औपनिवेशिक विश्व के दाव-पेचों के बीच पिसते हुए भारतीय

सुबोध शर्मा
मोहल्ला पंचशील नगर, बाराह, जिला पटना, बिहार 803213
मोबाइल: 8102102905
subodh.sharma2013@gmail.com

मज़दूरों (कुलियों) की व्यथाकथा है। इन कथाओं के माध्यम से उन्नीसवीं सदी के मध्य से बीसवीं सदी के प्रारंभिक दौर की भारतीय मज़दूरों की कारुणिक गाथा कही गई है। पूरे उपन्यास को दो खंडो में विभाजित किया गया है। पहले खंड में कुल 36 पाठ है और दूसरे खंड में 33। इन पाठों के माध्यम से एतिहासिक तिथियों के बगैर इतिहास के स्याह सच को शब्दांकित करने की जो पहल उन्होंने की वाकई उससे उनकी प्रतिभा दिख जाती है। अपने गहरे इतिहासबोध के कारण ही लेखक ने एक अमानवीय घटना को कथा-क्रम के माध्यम से व्यक्त किया है। हरेक कहानी या उपन्यास में एक प्लॉट होता है, जिसमें दृश्यों के माध्यम से कथ्यों को व्यक्त किया जाता है। अभिमन्यु ने पहले और दूसरे पृष्ठों के माध्यम से मानवता की हार को दिखा दिया है। मानव मानव के प्रति इतनी निष्ठुर हो सकता है? वाकई इसकी आज हम कल्पना ही कर सकते हैं। इस अमानवीय घटनाओं को व्यक्त करते हुए नोबल पुरस्कार विजेता जा मारी लेक्लेज्यों ने इस किताब की भूमिका में लिखा है ''अफ्रीकी दासों की यातनाओं के बाद भारतीय मज़दूरों के साथ गोरे ज़मींदारों की क्रूरता जारी रही, गोया कि ये भारतीय मज़दूर आदमी नहीं थे! ये लोग सिर्फ औज़ार समझे गए, बल्कि गोरे ज़मींदारों की रखवाली करने वाले कुत्ते।'' मालिकों की तरफ से नियुक्त सरदारों को नौकरों के साथ कुछ भी करने की छुट थी, सरदारों को सिर्फ यही ध्यान रखना होता था कि उनके उत्पीड़न से किसी मज़दूर की मौत न हो। सरदारों के बर्बरतापूर्ण अत्याचारों से मज़दूरों में आतंक का भय था, किसी भी मज़दूर की माँ-बहन, बहू-बेटी सुरक्षित नहीं थी। किसी भी वक्त उनकी अस्मत लूटी जा सकती थी।

मज़दूरों में से कुछ ऐसे भी मज़दूर थे जो मालिकों के वफ़ादार बने हुए थे। जितुआ इन्हीं में से एक है, वह सरदार बन बैठा था और मालिकों के नज़रों में अच्छा या वफ़ादार बने रहने के लिए वह मज़दूरों पर और भी अमानवीय हरकत करता था। इसी जितुआ ने एक बार ''अपने हाथों से दो मज़दूरों को रेल की पटरी से बाँधकर रेल को हरी झंडी दिखा दी थी।'' यह बलिदान था, ताकि नई पटरियों को बिछाने में कोई अवरोध न हो। ऐसा ही काम जितुआ के बाप भी अपने समय में कर चुका था। उसने अपने ही मज़दूरों के घरों से निमुँहें बच्चे को उठा कर बली दे दी थी। उसका आतंक इतना था कि किसी भी मज़दूर ने उसका विरोध तक नहीं किया था- ''अपने समय में जितुआ के बाप ने भी ईख के नए कारखाने खोलने के लिए गाँव के सबसे छोटे बच्चे को कारखाने की नींव के नीचे अपने हाथों से दबाया था'' आतंक की दहशत में मज़दूरों में कोई भी व्यक्ति सुरक्षित नहीं था, कब किसके बच्चे की बली दी जाएगी, यह कहना आसान नहीं था। बहुत-सी माताएँ अपनी संतानों को बली की इस कुप्रथा में खो चुकी थीं।

कुन्दन एक साहसी युवक था। आज वह भी अपने मज़दूरों के साथ बंदी बना हुआ है, पहले वह सिपाही था, पर अब बंदी है। आशय यह है कि कब कोई भारतीय सैनिक से मज़दूर और मज़दूर से बंदी बना दिए जाएँगे, कोई खबर उनको नहीं होती थी। मज़दूरों में विरोध करने की क्षमता भी नहीं था, क्योंकि सरदारों को पता था कि कब इन मज़दूरों के साथ किस तरह का सलूक किया जाना है। कुन्दन इन बातों से भलीभाँति परिचित हो चुका था। वह जानता था कि इन असंगठित मज़दूरों को आसानी से फोड़ा जा सकता है, इनके साथ थोड़ी मरौअत कर देने भर से ही इन मज़दूरों को अपने पक्ष में किया जा सकता है। कुंदन यही सोचता है कि ''कुत्तों के मुँह में हड्डी इसलिए डाल दी जाती है ताकि वह भौंकना बन्द कर दे।'' उसी प्रकार जब इन मज़दूरों के साथ थोड़ी नरमी बरतने से इनका विद्रोही स्वर शांत हो जाता था। कुन्दन और किसन जैसे अनुभवी बंदों को अच्छी तरह से पता था। कुंदन कैद से भाग जाता है और अपना नाम बदल कर देवनन् के नाम से मज़दूर बनकर काम करना शुरू कर देता है। कुन्दन की मुलाकात जब फुलवंती से होता है और अपने पति के बारे में जब वो पूछती है तो कुन्दन ''एक खुदगर्ज़ ख़याल से काँप-सा गया- फुलवंती का यह जान लेना कि मैं कैद से भाग आया हूँ, कहाँ तक मेरे रहस्य को रहस्य रहने देगी?...'' अपने ही लोग कब किसको पकड़ कर सरदारों के हवाले करा दे, इसकी कोई ग्रंटी नहीं।

1850 के दौर में देश-विदेश में कथा लेखन में अनेक कथाकार सक्रिय हैं। भारतीय साहित्य में इस दौर को भारतेंदु युग के नाम से अभिहित किया जाता है। इस युग में बहुमुखी प्रतिभा संपन्न साहित्यकारों की कतई कमी नहीं है, लेकिन उनकी रचनाओं में दास बनाकर भारत से बाहर ले जाए गए भारतीय मज़दूरों की पीड़ा नहीं मिलती है। आधुनिक भारतीय रचनाओं में भी इसका अभाव खटकता है। वास्तव में वैश्विक स्तर पर मानव मात्र की बात करने वाले बहुत कम कथाकार हुए हैं। उनमें अभिमन्यु अनत का नाम लिया जा सकता है। यह कहा जाता है कि ''कथा को सभ्यता और संस्कृति के 'फैक्ट' और 'फिक्शन' को साथ लेकर चलना होता है।'' इस सूत्र को लाल पसीना में देखा जा सकता है। अपने इतिहास के ज़ुल्मोसितम की सामाजिक सच्चाईयों को लेखक ने यथार्थवादी शिल्प में रचा है। कथाकार अभिमन्यु की यह औपन्यासिक कृति देशवासी-प्रवासी बेबस मज़दूरों की समस्याओं को व्यक्त करती है। लेखक की कल्पना में मज़दूरों की बेबसी बहुत अन्दर तक जुड़ी हैं। मॉरिशस की रक्तिम ज़मीन की सच्चाइयों को अपनी रचना के माध्यम से व्यक्त करती इनकी औपन्यासिक कृति, भारतीय प्रवासी मज़दूरों की दयनीय दशा को जोड़ कर भारतवंशियों की कमी पूरा करते हुए, भारतीय मज़दूरों को हुई यातना को व्यक्त करती हैं। दूर से सुन्दर दिखने वाली हर सुन्दर चीज़ वास्तव में सुन्दर ही नहीं होती है। उसमें खूबियों के साथ-साथ खामियाँ भी होती हैं। अपनी कथा के माध्यम से उसी स्वरूप की वास्तविकता को व्यक्त करती है।

इस उपन्यास के माध्यम से भारतीय मज़दूरों की उजाड़ होती दुनिया की कथा को बताने की चुनौती को लेखक ने स्वीकार की है और प्रकारांतर से धरती और मनुष्य के संबंधों से चिंतित होकर अपनी व्याकुलता को कथा के माध्यम से औपन्यासिक रूप

दिया है। इस रचना की पृष्टभूमि के रूप में जो मज़दूरों के यातनापूर्ण जीवन को चुना गया है- ''...आँगन में बैठे हुए कुत्ते पर अकारण ही कोई कंकड़ चला दे। कुत्ते का काँय -काँय करके दुम को टाँगों के बीच छिपा लेना जैसे रोज़ की साधारण बातें थीं। उसी तरह मज़दूरों का कराहना था।'' वह आज के समय से बिलकुल भिन्न है। आज मॉरिशस के लोगों का जीवन सरल,आसान और सुखी-सम्पन्न है। मॉरीशस की उस बंजर भूमि को अपने खून-पसीने से उपजाऊ बनाने वाले बिहारी मज़दूरों के जीवन के भयावह सत्य को भिन्न-भिन्न कोनों के माध्यम से लेखक ने देखने का काम किया है। बिहार के गाँव से विभिन्न जातियों के मज़दूरों को एग्रीमेंट पर सेना में भर्ती कर, अच्छे जीवन का प्रलोभन देकर गोरे चमड़ी वाले धूर्त अंग्रेज़ शहर ले जाते थे। भोले-भाले ग्रामीण किसान सरल जीवन छोड़कर बड़े इरादों के साथ इनके प्रलोभन में आ जाते थे। इन मज़दूरों का जीवन किस प्रकार चौपट होता है, परिवार टूटता है, स्नेह के निर्झर सूखते जाते हैं, रिश्ते खो जाते हैं, अनपहचाने हो जाते हैं, अभिजात्य की गरिमा मटियामेट हो जाती है, मध्य वर्ग की मान्यताएँ तार-तार हो जाती हैं- का सफल चित्रण अभिमन्यु अनत ने 'लाल पसीना' के पहले खंड में दिखाया है।

'लाल पसीना ' में अभिमन्यु अनत ने 1850 से 1900 के बीच की स्याह अवधि में घटित भारतीय मज़दूरों के साथ हुए बर्बर त्रासदीपूर्ण घटनाओं को चित्रित किया है। इस दौर के इतिहास से यह पता चलता है कि फ्रांसीसी कंपनी और ईस्ट इण्डिया कंपनी अपने-अपने अधिपत्य जमाने के लिए एक-दूसरे के घोर विरोधी थे, ईस्ट इण्डिया कंपनी के साम्राजिक विस्तार के कारण फ्रांसीसियों का सम्राज छीनता जा रहा था। '1835 में अंग्रेज़ों ने दास प्रथा को समाप्त कर शर्तबंदी प्रथा चलाई थी।''। जिसके तहत केवल पाँच वर्ष के लिए अनुबंध पर भारत से प्रति माह पाँच सौ मज़दूरों को लाने की अनुमति दी गई थी। पाँच वर्ष तक अपनी सेवाओं के एवज में भरपूर पारिश्रमिक लेने के बाद यह मज़दूर भारत लौटने या फिर अपनी मन मर्ज़ी के मुताबिक द्वीप में ज़मीन लेकर कहीं भी बसने को स्वतंत्र थे, लेकिन कोठी-मालिक ने अनुबंधों को तोड़ते हुए दास-प्रथा को जारी रखा। परिणामत: ''1843 से 1907 तक साढ़े चार लाख भारतीयों मज़दूरों को पीढ़ी दर पीढ़ी गिरमिटिया बनाए रखा।'' इन मज़दूरों से चाबुकों के बल पर ''एक लाख एकड़ भूमि पर गन्ने की खेती होने लगी और चीनी मिलें बढ़ कर ढाई सौ से अधिक हो गई।'' (मॉरिशस :देश और उनके निवासी, जीतेन्द्र कुमार मितल पृ 67)

यह उपन्यास जितनी कथा है उतनी ही व्यथा है। उपन्यासकार सांकेतिक रूप में बहुत सारी बात को अनकहा छोड़ देता है। बँधुआ मज़दूरी का बगैर नाम दिए हुए बँधुआ मज़दूरों के त्रासदीपूर्ण जीवन को चित्रित करने में लेखक ने अपनी क्षमता लगा दी है। यह उपन्यास केवल बँधुआ मजदूरों की यातनाओं का दस्तावेज भर नहीं है, बदलते हुए इतिहास को लेखक ने पकड़ने की कोशिश की है, लेकिन ''लाल पसीना उस इतिहास का दावा नहीं करता। यह इसलिए भी इतिहास नहीं क्योंकि शासक, राजनेता, राज्यपाल और इस तरह की अन्य हस्तियाँ इसमें पात्र नहीं हैं...इसके पात्र वे हैं जो इतिहास के चक्की में पीसकर रह जाते हैं, पर उसका पिसा जाना इतिहास रहा है, यह इस उपन्यास का दावा है।'' लाल के पसीने का फलक बहुत बड़ा है, इसमें विरोधों का सामंजस्य दीखता है। किसी भी व्यक्ति का जीवन समतल मैदान नहीं होता। उसके जीवन में अनेक प्रकार की विघ्न बाधाएँ आती ही रहती हैं। लाल पसीना मज़दूरों की विवशताजन्य जीवन की वेदना को चित्रित करता है, जहाँ मज़दूरों को इसलिए ले जाया गया था कि वे पथरीली भूमि के पत्थरों को पलटकर सोना पाएँगे, लेकिन बदले में उन मज़दूरों को इस देश में उतरते हीं मिला 'जानवरों के पट्टे' ताकि उन मज़दूरों को पहचाना जा सके। चौबीसों घंटे के अथक परिश्रम करने के बदले आधा पेट भोजन और आधा तन कपड़े। भोजन भी ऐसा कि- ''चावल दाल दोनों में खद-खद पिलवा भरल बा। जाने चील कुत्ता भी न खाई खोजी ओके कैसे पकावल जाय?'' इन मज़दूरों के लिए सड़ा-गला आनाज दिया जाता था; जिसमें कीड़े लगे होते थे। ऐसे आनाज को कोई खा नहीं सकता है, परन्तु लाचार और बेवश मज़दूर कर भी क्या सकते हैं। अपने पेट की ज्वाला को शांत करने के लिए कीड़े-मकोड़े युक्त अनाज को ही स्वीकारना उनकी नियति बन चुकी थी। विरोध करने की हिम्मत किसी में नहीं थी। विरोध में किसी की आवाज़ें उठतीं, उस आवाज़ को सदा के लिए बन्द कर दिया जाता था। घर की महिलाएँ अपने आसपास के पुरुषों से विरोध के स्वर में कहती भी है- ''के वा तू लोग में जे सकी मालिक के सामने चावल-दाल रखकर पूछे कि यह अनाज आदमी कैसे खाई ?'' पर इनका प्रति उत्तर किसी के पास नहीं होता। लगातार मिलनेवाले मकई के भात को खाने से बीमार मज़दूरों के पेट का दर्द और भी तेज़ हो जाता था, आपनी विवशता को भी मज़दूर नहीं व्यक्त कर सकते थे। हिम्मत कर कोई मज़दूर कहता भी है तो कोपभाजन का शिकार हो जाता है। हिम्मत कर कुंदन कहता है ''...मकई के भात खा-खाकर रात-भर सो नहीं पाता। पेट के दर्द से चिल्लाता रहता है। कम से कम इस व्यक्ति के लिए तो किसी हल्की चीज़ का प्रबंध किया जा सकता है।''13 यहाँ विरोध के बदले मिलता है कोड़ों की बौछारें और उन घावों पर नमक छिड़क कर और अधिक वेदना पहुँचाई जाती है ताकि किसी भी मजदूर को प्रतिकार करने की हिम्मत न हो। रहने के नाम पर ऐसी लोहे की चारदीवारी दी जाती कि मज़दूर किसी तरह अपने शरीर को अटा सकते, ऊपर से उन मज़दूरों को भयभीत करने के लिए कोड़ों से पीट-पीट कर घाव बनाया जाता और उन घावों पर नमक, मिर्च या फिर गन्ने का रस लगाकर पेड़ पर लटका दिया जाता, ताकि चीटियाँ उन मज़दूरों को नोचती रहें। कभी-कभी कैक्टस के पौधों से मज़दूरों को बाँध दिया जाता था। लड़कियों- स्त्रियों से बलात्कार जैसी घटनाएँ तो आम बात थी। घोर अमानवीय यंत्रणा सहते-सहते लोगों की जिजिविषा समाप्त हो गई थी। लोग बिना

दीवारों के कैदी बन चुके थे- ''बिना दीवारों के इस चारदीवारी में सभी मज़दूर कैदी थे। सभी के हाथ-पाँव बंधे थे। सभी के होंठ सिले हुए थे। जीभ अकड़ी हुई थी।''

कोठी- मलिकों के खिलाफ सात बस्तियों के साथ किसन की पहली सामूहिक हड़ताल, माँग-पत्र एवं माँगों की स्वीकृति के बाद 'लाल पसीना' उपन्यास का दूसरा खंड लगभग दो-तीन दशक बाद शुरू होता है। लेखक अपनी ओर से कहता है कि ''जिस दिन आहों से कंकड़ हीरे में बदलने लगेंगे, उस दिन गरीबों कि आहें जब्त कर ली जाएँगी। जिस दिन पसीने और आँसू की बूंद मोती में बदलेंगे, उस दिन मज़दूरों के रोम-कूपों को चुन दिया जाएगा, उनके आसुँओं पर पाबंदी लग जाएगी।'' यह युक्ति शतप्रतिशत औपनिवेशिक मानसिकता के चरित्र को व्यक्त करने में सफल है। उपन्यास के पहले भाग का किसन जो युवा था अब वृद्ध हो चुका है और उसका पुत्र मदन मंदिर के प्रांगण में मज़दूरों को भड़काने के जुर्म में सात साल का कैद भोग कर बाहर आया है। यर्थात पहली और दूसरी पीढ़ी यातना पूर्ण जीवन व्यतीत कर चुके हैं, अब भी मज़दूरों के जीवन में गुणात्मक परिवर्तन देखने को नहीं मिलता है, लेकिन अब यह नहीं कहाँ जा सकता है कि इन मज़दूरों का जीवन में वहीं यातनापूर्ण जीवन है। थोड़ा ही सही लेकिन जीवन में कष्ट कम हुए हैं, अब उनकी वस्तियों में मंदिर, पंचायत घर एवं किसी-किसी बस्ती में पाठशाला जैसी सुविधाओं के साथ ही थोड़ी-बहुत ज़मीन उनके पास है, जिस पर अपनी ममर्ज़ी से पैदावार उगा सकते है। अब इन मज़दूरों को इतनी स्वतंत्रता तो मिली है कि दिनभर कोठी में काम करने के बाद वह अपने खेत में काम कर सकते हैं। फसल उगा कर इसे बेच सकते हैं और इनसे प्राप्त आय को अपनी सुविधा अनुसार खर्च कर सकते हैं। अब मज़दूरों को गिरफ्तार करने के विरोध में मज़दूर इकट्ठे होने लगे हैं- ''एक लाख मज़दूरों में से साथ हज़ार मज़दूरों को गिरफ्तार कर लिया गया है। ...तीस कोठियों से लोग वहाँ इकट्ठे हुए थे।... ज़ुल्म के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने के लिए। ...अपने हक की माँग करने के लिए भी।'' अब भी किसानों की फसलों को ज़मींदारों द्वारा लुटा जाता है। दूसरे खंड को पढ़ने से एक प्रश्न बार-बार मन में कौंधता है कि आख़िर मज़दूरों को राशन के बदले मुद्रा का भुगतान और बाज़ार जैसी आर्थिक सुविधाएँ प्राप्त हुई तो हुई कैसे? क्या सिर्फ आंदोलन भर से अंग्रेज़ों ने उन मज़दूरों को यह सुविधा मुहैया करवा दी है या फिर इसके लिए कोई कूटनीतिक पहल भी हुई है। मानवीय उत्पीड़न का नज़ारा दिखाने वाला यह उपन्यास एकाएक अपना स्वर बदल देता है, समाज के खूंखार दानवों को यातना देने में थोड़ा भी हिचक नहीं होती थी, वह केवल मज़दूरों के हड़ताल भर से मानव कैसे बन गए? सोचने पर विवश कर देता है।

अब मज़दूरों के बच्चों को इकट्ठा करके रामगति सिखाया जाता है। सिपाहियों के बल पर जब मोरले साहब बस्ती के लोगों से ज़मीन के कागज़ों को अपने नाम करता है उस समय सुखुवा बच्चों से मुस्कुराते हुए कहता है-''यह देश तुम सभी का है ... तुम सभी यहाँ जन्में हो...यहीं तुम्हें मरना है। कागज़ के टुकड़े पर यह चाहे किसी का क्यों न हो, लेकिन इस पर तुम्हारी श्रमबूंदों की मुहर होगी।... यह तुम्हारा वह सपना है जिसे नींद के बाद भी सँजोकर रखना है...।'' बच्चों को यह बात समझ में आए या ना आए पर सुखुवा ने अपनी बात गोरे आतताइयों को तो सुना ही दी है।

मदन और सीता की प्रेम कथा कमज़ोर है, उसी प्रकार किसन और गीता के भी प्रेम संबंध के कारण उपन्यास में विश्रृंखलता आ गई है। उपन्यास में मज़दूरों को जो यातना मालिकों के तरफ से दी जाती थी, वह एकाएक समाप्त सी दिखने लगती है। बदलती परिस्थितियों का और उनमें उत्पन्न होनेवाले विचारों को लेखक ने पकड़ने का कोशिश की है।

लाल पसीना में प्रलोभन देकर लाए गए किसान-मज़दूरों का उत्पीड़न दिखाया गया है। लाल पसीना में कोई व्यक्ति नायक नहीं है। इस उपन्यास में पात्रों की संख्या तीन दर्जन से अधिक मिलती है, लेकिन इसका नायक है तत्कालीन सम्राजवादी व्यवस्था। इस व्यवस्था के बर्बर अत्याचारों से त्रस्त किसान-मज़दूर की फटेहाली को लेखक ने दिखाने का प्रयास किया है। कुछ आलोचक 'लाल पसीना' को 'समष्टि प्रधान कथा' मानते हैं। यह सत्य है। लाल पसीना में जिस तरह की कथा उठाई गई है वह औपनिवेशिक दौर की सच्चाई है। अपने उपनिवेश को फैलाने के लिए लोगों ने मनुष्यों के साथ जानवरों की तरह व्यवहार किया था। केवल भारतीय मज़दूरों के साथ ही इस तरह का अमानवीय सलूक नहीं हुआ है, बल्कि दुनियाँ भर के मज़दूरों के साथ ऐसा ही जानवरों का खेल खेला जा रहा था। अत: इस घटना को समष्टि प्रधान घटना और इस घटना पर आधारित उपन्यास को समष्टि प्रधान कथा या उपन्यास कहा जा सकता है।

'कथा साहित्य में भाषा पात्रों और उनके परिवेश के अनुरूप होनी चाहिए।' लेखक इस तथ्य से भलीभाँति परिचित हैं। उनकी भाषा पात्रों,कथ्य और परिवेश के अनुरूप लगातार बदलती है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि का यथा स्थान प्रयोग उनकी भाषा को सशक्त बनाता है। इस उपन्यास में उन्होंने बिहारी बोलियों का खूब प्रयोग किया है। बिंब और प्रतीक उनकी भाषा को प्रभावशाली और काव्यमयी बनाते हैं। अभिमन्यु अनत ने अपने पात्रों के माध्यम से मुहावरों, कहावतों और लोकोक्तियों का यथा स्थान (बोलबालकर) प्रयोग कर भाषा को समृद्ध किया है। वाचक चिह्नों ने भी पात्रों की मन:स्थिति को उकेरने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। लाल पसीना में प्रयुक्त भाषा-शैली पर ध्यान देने से पता चलता है कि लेखक कहीं आत्मकथात्मक, कहीं वर्णात्मक, कहीं चेतनप्रवाह, कहीं संवादात्मक तो कहीं व्यंग्यात्मक शैली को अपनाते हैं। इससे लेखक की भाषाई क्षमता का प्रमाण मिल जाता है। 'लाल पसीना' मॉरिशस का 'बैस्ट-सैलर' उपन्यास है। लाल पसीना का पहला भाग जितना सशक्त और सफल है दूसरा भाग उनकी तुलना में कमज़ोर पड़ जाता है।

****

अर्चना पैन्यूली

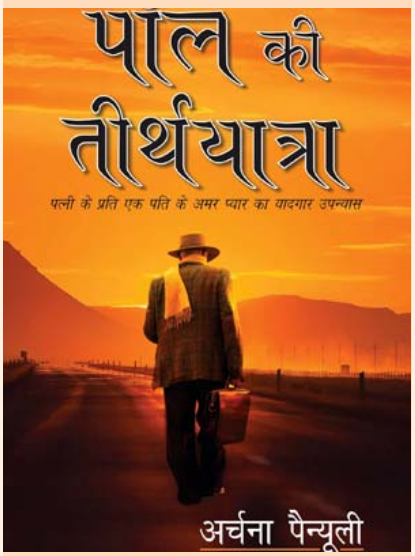

पुस्तक का नाम: पॉल की तीर्थयात्रा
(उपन्यास)
लेखक : अर्चना पैन्यूली
प्रकाशक : राजपाल एन्ड सन्ज़
1590, मदरसा रोड, कश्मीरी गेट
दिल्ली-110006
मूल्य : 265/- रुपये
प्रथम संस्करण-2016,पृष्ठ - 192

डॉ. उमा मेहता

पॉल की तीर्थयात्रा
पत्नी के प्रति पति की अंतिम श्रद्धांजलि

समीक्षक : डॉ. उमा मेहता

'पॉल की तीर्थयात्रा' उपन्यास की लेखिका अर्चना पैन्यूली 'राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त पुरस्कार' 2012 से सम्मानित हैं। 'पॉल की तीर्थयात्रा' में लेखिका ने भारतीय मूल की नीना और उसके डेनिश पति पॉल के माध्यम से पति और पत्नी के बीच के मनमुटाव, लड़ाई-झगड़े, सुख-दुख, समस्याएँ इन सभी का यथार्थ के धरातल पर शब्दचित्र अंकित किया हैं। यह उपन्यास एक पति का अपनी पत्नी के प्रति सच्चे आत्मीय प्रेम का दस्तावेज़ हैं। लेखिका पॉल और नीना के माध्यम से बताना चाहती हैं कि पति और पत्नी चाहे जीवन भर कितने ही लड़ाई-झगड़े करें पर इससे दोनों का एक दूसरे के प्रति प्रेम और श्रद्धाभाव खत्म नहीं होता। पति अपनी पत्नी नीना की पुण्यतिथि पर 108 किमी. की पैदल यात्रा करता हैं, यही यात्रा उसके लिए सबसे बड़ी तीर्थयात्रा हैं और पत्नी के प्रति पति की अंतिम श्रद्धांजलि भी हैं।

'पॉल की तीर्थयात्रा' उपन्यास का कथानक 'फ़्लैश बैक' (पीछे से आगे आना) पद्धति के अनुसार चलता हैं। नीना की मृत्यु को एक साल हो गया हैं। पॉल तेरह मई के दिन नीना की बरसी पर होल्टे से स्लेयेल्सेवाय के हिंदू मंदिर तक 108 किमी. पैदल यात्रा कर अपनी पत्नी को प्यार के अंतिम श्रद्धा सुमन अर्पित करना चाहता हैं। अपनी इस तीर्थयात्रा के दौरान पॉल नीना के साथ बिताया हुआ प्रत्येक पल, जीवन के विभिन्न पड़ाव याद कर अपनी भूलें भी स्वीकार करता चलता हैं। यात्रा के दौरान नीना के ख़यालों में खोया हुआ पॉल उस दिन को याद करता हैं जब वह पहली बार नीना से एडिनबर्ग में बोंगो क्लब के कार्यक्रम में मिला था। नीना पॉल के नृत्य से बहुत ही प्रभावित हुई थी और पॉल भी नृत्य करते समय एक मात्र नीना को ही देख रहा था। फिर दोनों एक दूसरे से मिलने लगे और अंतत: विवाह के बंधन में बंध गए। नीना और पॉल दोनों का यह पुनर्विवाह हैं, और दोनों को दो-दो बेटियाँ भी हैं। करीना और जोहाना नीना की बेटियाँ हैं और लूसी व ग्रेसी पॉल की। लूसी व ग्रेसी अपनी माँ सौन्द्रा के साथ रहते हैं, पॉल को कभी-कभी मिलने आ जाया करती हैं। जबकि करीना और जोहाना नीना के साथ रहती हैं।

शादी के बाद पॉल अपना धर, परिवार सब छोड़कर नीना के पास कोपनहेगन रहने चला आता हैं। पॉल ने नीना की बेटियों को अपना लिया था पर करीना और जोहाना पॉल को नहीं अपना सकी। वे दोनों बहुत ही बतमीज़ और मुँहफट हो गई हैं। पॉल व्यवसाय से शिक्षक

हैं, अत: उसे पता चल जाता हैं कि लड़कियाँ बिगड़ती चली जा रही हैं। वह जब उन्हें सही दिशा में मोड़ने के लिए डाँटता हैं, तो लड़कियाँ गलत रूप में अपनी माँ के पास जाकर प्रस्तुत करतीं। जिससे नीना और पॉल के बीच में तनाव बढ़ने लगा। शादी के सात सालों में पॉल नीना की अपेक्षाओं पर खरा नहीं उतरता तब नीना आवेश में आकर पॉल से तलाक लेने की घोषणा करती हैं। लेकिन तलाक के बाद भी न तो नीना पॉल को भूल पाती हैं और न ही पॉल नीना को भूल पाता हैं। पॉल से अलग होने के बाद नीना पीटर को अपना लेती हैं। लेकिन पॉल नीना को तब भी भूला नहीं पाता। नीना से अलग होने के बाद वह अपनी गलती स्वीकारता चलता हैं कि अगर मैं नीना की हर बात मानता तो शायद यह अकेलापन न झेलना पड़ता। ज़िंदगी के अगले पड़ाव में जब नीना को ट्यूमर हो जाता हैं, तब नीना सबसे पहले पॉल को ही याद करती हैं। तलाक होने के बावजूद पॉल नीना को कैंसर ग्रस्त अवस्था में साथ देता हैं और हमेशा उससे मिला करता हैं। ट्यूमर होने के बाद जब पॉल नीना को पहली बार मिलता हैं तो वह कहता हैं कि '' वह पहचानी नहीं जा रही थी... सिर के बाल उड़ गए थे। गंजी लग रही थी, और अपने सिर पर उसने एक सफ़ेद कपड़ा बाँधा हुआ था। मगर वह फिर भी मुझे सुन्दर लग रही थी।'' पॉल को इस अवस्था में भी नीना सुंदर लग रही थी, क्योंकि वह उससे बहुत प्यार करता था। पॉल का अपनी पत्नी के प्रति प्यार केवल शारीरिक नहीं था,बल्कि वह आत्मीय एवं नि:स्वार्थ था। आख़िरकार पति-पत्नी का रिश्ता ही एक ऐसा रिश्ता हैं, जिसमें वह दोनों हर मोड़ पर एक दूसरे के साथ रहते हैं। चाहे वह रास्ता ऊबड़ खाबड़ या कंटीला ही क्यों न हों। रेडियोथेरेपी एवं कीमोथेरेपी जब नीना के लिए अनुपयोगी हो गईं तो उसे 'हॉस्पिस' में रख दिया गया। ''मृत्यु के करीब पहुँचे हुए व्यक्तियों की सेवा-शुश्रूसा करने वाला विशेष अस्पताल।'' नीना जब मृत्यु की अंतिम घड़ियाँ गिन रही थी तब भी उसका प्रेमी पति पॉल ही उसके पास था। इस तरह पॉल ने नीना के साथ किए हुए हर वादे को जीवन की अंतिम क्षणों तक निभाया। नीना भी अपने पति के इस प्यार को अंतिम पलों तक महसूस करती रही। लेकिन वह बोल नहीं सकती थी बस आँखें खोलकर पॉल की उपस्थित दर्ज कर लिया करती। पॉल जैसे ही नीना की यादों से बाहर निकलता हैं तब वह स्लेयेल्सेवाय के हिंदू मंदिर तक 108 किमी. दूरी तय कर चुका था। उसने अपनी पत्नी को अंतिम श्रद्धांजलि पैदल चलकर दी। मंदिर में नीना के फोटो को उसने अपने श्रद्धा सुमन अर्पित किए, आँखें बंद कर वह एक परम शान्ति एवं दिव्य ज्योति का एहसास करने लगा। पॉल के लिए जीवन की सबसे बड़ी तीर्थयात्रा एवं परम सुख यही था।

अर्चना पैन्यूली ने उपन्यास का कथानक आत्मकथात्मक शैली में प्रस्तुत किया हैं। उपन्यास का प्रमुख पात्र पॉल समग्र कथानक 'मैं' (प्रथम पुरुष) सर्वनाम का प्रयोग करते हुए कहता चलता हैं। पॉल अपनी यादों को ताज़ा करते हुए यात्रा के दौरान नीना के साथ गुज़ारे सात साल का हर सुखद पल याद करता हैं और कथानक चरम सीमा तक पहुँचता हैं। लेखिका वर्णनात्मक शैली के माध्यम से पाठकों के सामने शब्दचित्र खड़ा करने में सफल हुई हैं। भाषा सहजिक और मार्मिक हैं। विदेशी भूमि पर पनपे इस उपन्यास में सांस्कृतिक टकराव भी नज़र आता हैं।

पॉल की तीर्थयात्रा उपन्यास छोटे-छोटे 25 अध्यायों में विभाजित हैं और प्रत्येक अध्याय का विषय के अनुरूप नामकरण भी किया गया हैं। उपन्यास के आरंभ में पाठक थोड़ा इधर-उधर भटकने लगता हैं, लेकिन जैसे ही एक के बाद दूसरा प्रसंग आकर कथा शृंखला जुड़ने लगती हैं, तो सहृदयी पाठक जिज्ञासावश अंत तक उपन्यास को छोड़ नहीं पाता।

आधुनिक संदर्भ में यह उपन्यास बिलकुल सार्थक हैं। वर्तमान समय में विवाह के बाद जब पति और पत्नी के सामने जीवन की कठोर वास्तविकता और संघर्ष आने लगते हैं, तो सीधे ही एक दूसरे से अलग होने की बात सोच कर तलाक ले लेते हैं। दोनों साथ मिलकर समझदारी से जीवन के प्रश्नों को हल करने के बजाय एक दूसरे से भागने लगते हैं। लेकिन इन समस्याओं से कब तक भागेंगे ? एक के साथ एक समस्या तो दूसरे के साथ अलग तरह का संघर्ष। नीना ने पहले ओलिवर से प्यार किया और शादी से पहले गर्भवती भी हुई, बाद में उससे शादी की। जब उसकी दूसरी बेटी गर्भ में थी तब उसने ओलिवर से तलाक ले लिया। बाद में पॉल से पुनर्विवाह किया और जब उससे भी उसकी नहीं निभ पाई तो उसने पॉल को तलाक देकर पीटर को अपना लिया। पीटर ने भी अंत में आत्महत्या कर ली। इन परिस्थितियों में नीना के संघर्ष कम होने के बजाय बढ़ते ही चले गए। पॉल ने भी पहले सौन्द्रा से शादी की बाद में नीना से। ओलिवर ने भी नीना से अलग होकर दूसरी शादी कर ली थी और सौन्द्रा ने पॉल से अलग होकर दूसरी कर ली। लेखिका ने एक स्थान पर नीना के माता-पिता डॉ.रामचंद्रन एवं शीला देवी के मुँह से कहलवाया हैं कि हम तो एक दूसरे के साथ चाहे कितने भी लड़ाई-झगड़े क्यों न करें फिर भी तलाक के बारे में सोचते नहीं थे। इस उपन्यास के माध्यम से लेखिका संदेश देना चाहती हैं कि पति-पत्नी के जीवन में संघर्ष, लड़ाई, झगड़े, मनमुटाव सब होता हैं, लेकिन फिर उसकी अंतिम परिणति तलाक नहीं होता। नीना और पॉल एक दूसरे अलग होकर भी एक दूसरे को भूला नहीं पाते। पॉल नीना का जीवन के हर मोड़ पर साथ निभाता चलता हैं और अपनी प्रेयसी पत्नी की मृत्यु हो जाने के बाद भी वह उसे चाहता रहता हैं। सचमुच पति-पत्नी के रिश्तों की डोर इतनी मज़बूत होती हैं कि वह मरने के बाद और भी मज़बूत हो जाती हैं...। पॉल की तीर्थयात्रा उपन्यास आधुनिक संदर्भ में पठनीय, प्रेरणादायी एवं रसप्रद हैं।

****

डॉ. उमा मेहता
आसिस्टन्ट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
एम.पी.शाह आर्ट्स एन्ड सायन्स कॉलेज,
सुरेन्द्रनगर - 363001,
(गुजरात) भारत।

संजीव वर्मा 'सलिल'

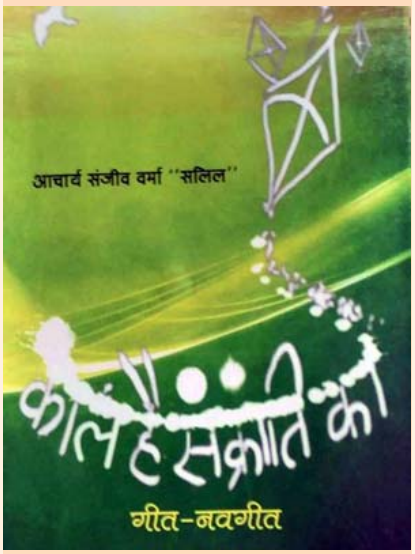

गीत-नवगीत संग्रह : काल है संक्रांति का
कवि : आचार्य संजीव वर्मा 'सलिल'
संस्करण : पेपरबैक
मूल्य : जनसंस्करण - दो सौ रुपये
प्रकाशन : समन्वय प्रकाशन अभियान, 204, विजय अपार्टमेंट, सुभद्रा वार्ड, नेपियर टाउन, जबलपुर-482001

सौरभ पाण्डेय

काल है संक्रांति का
गीत का हो जाना अधिक प्रासंगिक है

समीक्षक : सौरभ पाण्डेय

गीतों की दशा मात्र भावनात्मक और रागात्मक नहीं हुआ करती। न ही अंतर्लयता की रोमांचक अनुभूतियों के आक्षरित हो कर, उद्भाव के साथ सार्थकतः मुखर हो जाने का अर्थ गीत है। गीत, वस्तुतः, समाज की चेतना को सदिश कर सकारात्मक चेष्टा के लिए उत्कट आह्वान का साधन भी होते हैं। इनका यही स्वरूप इनकी सामुहिकता, श्रम-संस्कृति तथा वर्ग-निर्पेक्ष बोध का आधार तय करता है। इसी आधार पर गीत कई श्रेणियों तथा कई अनुभागों के देखे-सुने जाते रहे हैं। लेकिन गीतों का मुख्य हेतु भावबोध के तार्किक बिंदुओं को प्रभावी मनस, चाहे वह सुषुप्त हो अथवा चैतन्य, तक पहुँचाने का है। भारतीय परिवेश में गीतों ने एक अत्यंत लम्बी और रोमांचक परंपरा को जिया है। गीतों की सत्ता छांदसिक अनुभाव के साथ-साथ व्यावहारिक पक्ष के समानान्तर भी चलती है और हर बिंदु पर समाज को पूरी संवेदना के साथ प्रभावित करती है। गीतों में भाव, लय, बोध, सांगीतिक कलाएँ, स्वर, शब्द, उद्बोधन का लालित्य सबकुछ अपनी-अपनी उपयोगिताओं के अनुसार एकसार हुआ मुखर हो उठता है। इसी कारण गीत किसी विशेष वर्ग या काल-खण्ड के व्यवहार की भावदशा के शाब्दिक होने का परिणाम न हो कर मानवीय जीवन-यात्रा की सार्वकालिकता के समस्त पहलुओं के सक्षम सार्थक और सहज शब्दांकन का अनुरूप हुआ करते हैं, जिनके संप्रेषण से प्रभावी हो या मात्र उपस्थित मनस, अवश्य ही संवेदित हो जाता है। गीत नैसर्गिक अभिव्यक्ति का गेय रूप हैं। गीतों का संबंध हृदय से हुआ करता है। यही गीतों की शाश्वतता का मुख्य कारण हैं। सृष्टि के समस्त अवयव एक विशेष लय से संस्कारित और क्रियाशील होते हैं। प्रारंभ से ही लोकमानस गीतों में अपने विभिन्न भावों की अभिव्यक्ति पाता रहा है। मानवीय मन के उल्लास या संत्रास तथा परिवर्तनजन्य स्थितियों-परिस्थितियों को गीत समान रूप से अभिव्यंजित करता रहा है। यही कुछ इनके कालजय-स्वरूप का मूल कारण है। इन बिन्दुओं के सापेक्ष छन्द और गीत-व्यवहार में समान सारस्वत क्षमता के साथ सतत् रचनाकर्मी आचार्य संजीव वर्मा 'सलिल' का सद्यः-प्रकाशित गीत-संग्रह 'काल है संक्रान्ति का' है।

संक्रान्ति एक विशेष दशा है। जब सकारात्मकता की अपेक्षा के साथ-साथ विगत होते काल के प्रति मनस निर्लिप्त हुआ लगातार निर्विकार बने रहने को सचेष्ट रहता है। लेकिन यह चैतन्य होते मानस का सामुहिक प्रयास ही है, जो नियत करे कि इस काल का विस्तार कितना होगा, या इसकी गति क्या होगी। इस काल में सूर्य या सूरज नायक की भूमिका में हुआ करता है। लेकिन यह भी उतना ही सही है, कि मानवीय सोच की सामुहिक दशा कितनी सचेष्ट है। अन्यथा नायकत्व की भूमिका किनके लिए प्रभावी होगी ? सहमति के राग कौन गायेगा ? इन पंक्तियों को देखें - काल है संक्रान्ति का / दक्षिणायन की हवाएँ / कँपाती हैं हाड़ / जड़ गँवा, जड़ युवा पीढ़ी / काटती है झाड़ / प्रथा की चूनर न भाती / फेंकती है फाड़ / ... / उत्तरायण की फ़िज़ाएँ / बनें शुभ की बाड़ / दिन-ब-दिन बढ़ता रहे सुख / सत्य की हो आड़ / ... / ढाल हो चिर शांति का / तुम मत झुको सूरज !

आज विकास यदि लोक-अभिमुख नहीं प्रतीत होता, तो इसके कई कारण हैं। गीतकार की चिंता वाजिब भी है। उसका स्वर प्रतिकार कर उठता है - लोकतंत्र का / पंछी बेबस /

... / आम आदमी खुद में उलझा / दे-लेता उत्कोच / न्यायपालिका अंधी-लूली / पैरों में है मोच / ठेकेदार - / दलालों को जस !

या फिर, कनिष्क अभियंताओं की कुंठा को मिला स्वर व्यंग्य बुझे शब्दों के साथ अत्यंत प्रभावी बन पड़ा है, जहाँ डिग्रीधारी अभियंताओं को इंगित करता हुआ कवि सस्वर हो उठता है - अगले जनम / उपजंत्री न कीजो / ... / तेरी मेहनत उसका परचम / उसको खुशियाँ, तुझको मातम / सर्वे कर प्राक्कलन बनाता / वह साइन कर नाम कमाता / तू साइट पर बहा पसीना / वह कहलाता रहा नगीना / काम करा तू देयक लाता / वह पारित कर दाम कमाता !.. कहना न होगा, ये पंक्तियाँ भुक्तभोगी वर्ग की मनोदशा का सटीक वर्णन करती हैं। यहीं गीत प्रासंगिक हो उठता है। वहीं, आजके तंत्र पर कवि को सुनना और भी प्रासंगिक हो जाता है - उम्मीदों की फसल / उगाना बाकी है / ... / केंद्रीकरण न करें, विकेन्द्रित हो सत्ता / सके फूल-फल धरती पर लत्ता-पत्ता / नदी-गाय-भू-भाषा-माँ आशा काकी है / आँख मिला कर / तजना ताका-ताकी है। आशावादिता का एक और प्रखर रूप इन पंक्तियों से उभरता है - आज नया इतिहास लिखे / ... / स्नेह-स्वेद-श्रम हों आराध्य अब / कोशिश होगी, महज माध्य अब / श्रम पूँजी का भक्ष्य न हो अब / शोषक हित खग्रास लिखें हम !

नवगीत चिंतन के स्तर पर सर्वाधिक यथार्थपरक, अपनी ज़मीन (भारतीयता) तथा जन की भाव-भावना से जुड़े गीत-रचना होते हैं, जहाँ सामुहिकता को विशेष स्वर मिलता है। भारतीय समाज के जन के मन, जन की परंपरा, आस्था और संघर्ष नवगीत में बढ़िया से अभिव्यक्त होते हैं। यह जन किसी आयातित मत से प्रभावित अतुकांत 'नैराश्य' से संचालित नहीं होता। चाहे वैचारिकता के नाम पर भावदशा की अभिव्यक्ति को जितना क्लिष्ट किए जाने की कवायद हो। भले ही इस कवायद से किसी जन समूह का हित सधे या न सधे। हम जन को समझें, नकि कोशिश इसे बलात साधने की हो। जन का सधना एक अनवरत दीर्घकालिक प्रक्रिया है, जो कई कारकों पर निर्भर करती है। गीत इसी प्रक्रिया की निर्मिती हैं। और नवगीत इसी निर्मिती की व्यापकता के पक्षधर हैं। इसी क्रम में यह तथ्य रेखांकित कर लेना आवश्यक होगा कि भारतीय भूभाग के जन की प्रकृति मूलत: उत्सवधर्मी है, परिस्थितियाँ चाहे जैसी भी हों। इसी कारण, 'छुएँ सूरज' गीत अपने विन्यास और इंगितों से अलग ही दिखता है। इस गीत का कथ्य जहाँ सशक्त अभिव्यंजना का सुन्दर उदाहरण है, इसकी दशा बताती है, कि यदि गीतकार ने इस संग्रह की दिशा तय कर ली होती, तो ऐसे कई गीत इस संग्रह की गति का कारण हुए होते - चन्द्र-मंगल नाप कर हम / चाहते है छुएँ सूरज / ... / अब नहीं है वह समय जब / मधुर फल तुममें दिखा था / फाँद अंबर पकड़ तुमको / लपक कर मुँह में रखा था / छा गया दस दिश तिमिर तब / चक्र जीवन का रुका था / देख आता वज्र, बालक / विहँस कर नीचे झुका था / हनु हुआ घायल मगर / वरदान तुमने दिये सूरज !

संक्रान्तिकाल में बार-बार सूरज का बिंब गीतपक्ष में अदम्य आश्वस्ति का परिचायक है। क्यों कि सूरज का होना काल की उद्विग्नता और भयावहता के विरुद्ध फलीभूत होने वाली आशा है। किन्तु, यह भी सही है, कि आज का समाज कई स्तरों पर भ्रम का शिकार है। ऐसे में साहित्य की रचनात्मक गति यदि उँकड़ूँ चलती है तो यह समझ में भी आता है। ऐसे में, अधिकांश रचनाओं में विसंगतियों को तो स्वर मिलता है, लेकिन पंक्तियाँ समाधान के लिए कोई आश्वस्ति नहीं जगा पातीं। यही कारण है, कि अभिधात्मकता अपने पूरे प्रवाह में दिखती है। हालाँकि, आचार्य सलिल इस संग्रह की प्रस्तुतियों में कई नई अवधारणाओं के सापेक्ष चर्चा करना चाहते हैं। लेकिन ऐसी कोई चेष्टा, कहना न होगा, व्यापक विवेचना के लिहाज़ से कई-कई बार चूकती हुई-सी दिखती है। उदाहरणार्थ, अहर्निश चुप / लहर-सा बहता रहे / ... / ऊर्जा है हर लहर में कर ग्रहण / लग न लेकिन तू, लहर में बन ग्रहण / विहंगम रख दृष्टि, लघुता छोड़ दे / स्वार्थ साधन की न नाहक होड़ ले / कहानी कुदरत की सुन / अपनी कहे / स्वप्न बन कर नयन में / पलता रहे ! इन पंक्तियों के माध्यम से दिए गए सुझाव के अनुसर प्रवाह की ऊर्जा की ग्राह्यता स्पष्ट है, और स्वीकार्य भी है। परन्तु, लहरों में 'ग्रहण बन' कर आरोपित हो जाना विवेक के त्वरण के क्षरण का ही तो कारण हो जायेगा ? ऐसे में, इस हेतु गीतकार का आह्वान कैसी परिस्थितियों के व्यापने की संभावना ढूँढ़ रहा है, यह स्पष्ट नहीं होता। इसी तरह, इन पंक्तियों का 'नेता' जिस भी लिहाज में वर्णित हुआ हो, ऐसी कोई अभिव्यक्ति स्थूल ही है - छप्पर औरों पर धर देता / आश्वासन के अण्डे देता / वादे-भाषण धुआँधार कर / करे सभी सौदे उधार कर / येन-केन वोट हर लेता.. ! ऐसी रचनाओं से यथासंभव बचना था। इसी क्रम में, .. भाषण देतीं सरकारें पर दे न सकी हैं राशन .. जैसी अभिव्यक्ति श्रेष्ठता के लिहाज़ से बहुत प्रभावी नहीं हो पाई हैं। कहने का तात्पर्य यह है, कि जिस गीतकार के पास अभिव्यक्ति हेतु शब्दों का ज़ख़ीरा हो, उसकी रचनाओं से अपेक्षा यदि बढ़ जाती है तो यह अनुमन्य है। गीतकार के स्वर में उबाल है, विसंगतियों के ऊपर प्रहार करने की क्षमता भी है। परन्तु, अभिव्यक्तियों का मूल स्वर व्यंग्यात्मक रहे या कि उनमें अभिधात्मकता की सपाटबयानी प्रभावी हो, यही तय नहीं हो पाता। इस कारण ऐसी कई रचनाएँ संग्रह में स्थान पा जाती हैं, जिनका होना गीतकार की क्षमता के सापेक्ष चकित भी करता है, तो तनिक निराश भी करता है। बानग़ी देखें - सुंदरिये मुंदरिये, होय / सब मिल कविता करिए, होय / कौन किसी का प्यारा होय / स्वार्थ सभी का प्यारा होय / जनता का रखवाला होय / नेता तभी दुलारा होय ..। गीत कई बन्द का है। यह प्रस्तुति गीतकार के अनुसार लोहड़ी पर्व पर राय अब्दुल्ला खान उर्फ़ दुल्ला भट्टी को याद कर गाए जाने वाले लोकगीत की तर्ज़ पर निबद्ध है। लेकिन स्थूल रूप से गीत कितना आग्रही है, यह अवश्य सोचने की बात है। या फिर, गोल क्यों ? / चक्का समय का गोल क्यों ? / कहाँ होती / हमेशा ही / ढोल में कुछ में पोल क्यों ? / कसो जितनी / मिले उतनी /

प्रशासन में झोल क्यों ? / रहे कड़के / कहे कड़वे / मुफ़लिसों ने बोल क्यों ? .. ऐसी प्रस्तुतियों से संग्रह को अवश्य ही बचाना चाहिए था।

उर्दू-साहित्य के विद्वान और ग़ज़ल विधा के समालोचक इलाहाबाद के जनाब एमए क़दीर का यह कथन यहाँ प्रासंगिक हो उठता है - 'किसी रचनाकार को अपनी रचनाओं के विन्यास में शब्दों के प्रति ही सचेत नहीं रहना चाहिए, बल्कि अपनी रचनाओं के चयन में तार्किक और निरंकुश होना चाहिए।' यह एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण कथन है।

आचार्य सलिल छन्दशास्त्र के ज्ञाता होने के कारण गीतों में छान्दसिकता के आग्रही हैं। संप्रेषण को छन्द लयबद्धता तो देते ही हैं, अभिव्यक्ति के सारस्वत पक्ष को भी संतुष्ट करते हैं। मात्रिकता ही नहीं, शुद्ध छन्दों का प्रयोग कई गीतों में भाव-चमत्कार का कारण दिखा है। करुणाकर छन्द पर निबद्ध इन पंक्तियों को देखना समीचीन होगा - उगना नित / हँस सूरज / धरती पर रखना पग / तजना मत, अपना मग / चलना नित / उठ सूरज ! गीतों में गेयता शब्दों के विन्यास में सुगढ़ मात्रिकता के कारण संभव हो पाती है। गेयता केवल भाव-आवृतियों अथवा सांगितिक स्वराघात से संभव नहीं होती। शब्दों की सुगढ़ मात्रिकता के कारण ही गीत गेय, सरस तथा कर्णप्रिय हो पाते हैं। जहाँ तक शैल्पिकता की बात है, संग्रह के गीत लय, प्रवाह युक्त छंदानुशासन के आग्रही हैं। प्रस्तुतियों में प्रयुक्त छन्दों को यथासंभव लिख भी दिया गया है। चूँकि, यह संग्रह छान्दसिक रचनाओं का संग्रह न हो कर गीत-नवगीत संग्रह हैं अत: ऐसा कोई अंकन कौतुक-प्रयास का ही भान देता है। छंद मात्रिकता के कारण प्रवहमान पंक्तियो के धारक हुआ करते हैं। परन्तु, शब्दों के विन्यास और उनकी वर्तनी या अक्षरी के उच्चारण-सम्मत आग्रह उतने ही महत्त्वपूर्ण होते हैं। इनके प्रति किसी अन्यमनस्कता का तार्किक कारण समझ नहीं आता।

वस्तुत:, हर तरह के कथ्यों को पूरी दमदारी के साथ प्रभावी ढंग से, पूरे लय-प्रवाह में व्यक्त करने के लिए ही तो नवगीत अस्तित्व में आया है। हाँ, कथ्य के साथ पूरा न्याय करते हुए छंद विधान में प्रयोगशीलता के भरपूर अवसर लिए जा सकते हैं। वैसे ऐसी प्रक्रिया का आधार सांगीतिक ही हो, न कि मात्र और मात्र शाब्दिक। तो ही प्रयोग अटपटा नहीं लगता। नवगीतों के लिए तर्कसंगत छंदानुशासन बनाया जा सकता है, किन्तु फिर पूरी रचना प्रक्रिया के दौरान उसी अनुशासन में रहना होगा। कथ्य तो महत्त्वपूर्ण है ही, किन्तु लय, प्रवाह ही उसे नवगीत बनाएँगे, यह समझना आवश्यक है। संग्रह का ही एक तार्किक और सशक्त नवगीत देखना प्रासंगिक होगा - लेटा हूँ / मखमल गादी पर / लेकिन / नींद नहीं आती है / ... / हुआ परेशाँ नींद गँवायी / जहँ बैठूँ, तहँ थी मुस्कायी / मलिन भिखारिन, युवा, किशोरी / कवयित्री, नेत्री, तरुणाई / संसद में चलभाष देख कर / आत्मा तृप्त न हो पाती है - / मुझ नेता को भुला सियासत / सेज़ सुलाना सिखलाती है ! 'लेटा हूँ' शीर्षक के इस नवगीत के सभी बन्द तिर्यक भाव से सधे होने के कारण पाठक को अत्यंत उद्वेलित कर देते हैं। यह वाकई चिंता का विषय है कि नैतिक और वैचारिक रूप से समाज कैसों या किनके हाथों लगातार अपना भविष्य धरता चला जा रहा है ! इसी तर्ज़ पर 'समाजवादी' शीर्षक की रचना पर ध्यानाकृष्ट करना चाहूँगा - बग्घी बैठा / बन सामंती समाजवादी / ... / खुद् बीवी, साले, बेटी को / सत्ता दे, चाहे हेटी हो / घपलों-घोटालों की जय-जय / कथनी-करनी में अंतर कर / न्यायालय से / सज़ा पा रहा समाजवादी !

कुल मिलाकर यह संग्रह अच्छे से बहुत अच्छे तो कई अत्यंत सामान्य प्रस्तुतियों का ऐसा संग्रह हो कर सामने आया है, कि इस संक्रान्ति-काल के पाठकों की अपेक्षाएँ उस हिसाब से संतुष्ट नहीं हो पाती, जिसकी संभावना गीतकार में है।

****

संपर्क : एम-2/ए-17, ए.डी.ए. कॉलोनी, नैनी, इलाहाबाद-211008
संपर्क संख्या - 09919889911
ई-मेल : saurabh312@gmail.com

पुस्तक वार्ता

रजनी गुप्त

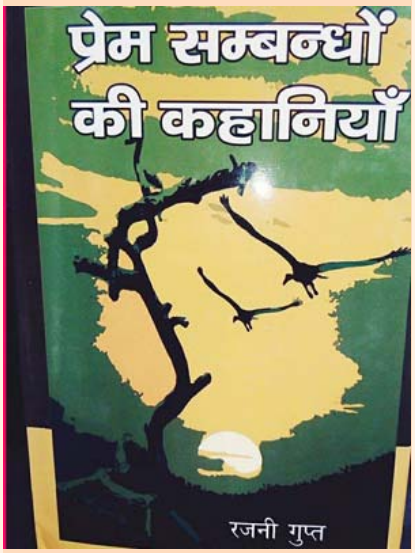

प्रेम सम्बन्धों की कहानियाँ
लेखिका: रजनी गुप्त
प्रकाशक:नमन प्रकाशन
मूल्य: 275 रुपये

वंदना गुप्ता

प्रेम सम्बन्धों की कहानियाँ
प्रेम का एक अलग रूप

समीक्षक : वंदना गुप्ता

नमन प्रकाशन से प्रकाशित रजनी गुप्त द्वारा लिखित 'प्रेम सम्बन्धों की कहानियाँ' कहानी संग्रह में कुल 14 कहानियाँ हैं। प्रेम के जीवन में कितने रूप होते हैं और वो किस-किस रूप में सामने आता है फिर हम उसे कैसे ग्रहण करते हैं या उसका कैसे उपयोग या दुरूपयोग करते हैं, इसी सबका सम्मिश्रण है यह संग्रह।

प्रेम जो जीवन का मूल आधार है, वहाँ प्रेम का कोई दिव्य रूप नहीं दिखाया लेखिका ने बल्कि यथार्थ की ठोस ज़मीन पर पाँव रखा है खासतौर से आज के सन्दर्भ में। आज की पीढ़ी कितनी प्रैक्टिकल है, उसके लिए संबंधों का कितना महत्त्व है और वो किसी भी रिलेशन को किस नज़रिए से देखती है और फिर कोरी भावुकता में न पड़कर सोच समझ कर निर्णय लेती है, यही है कहानियों का मूल आधार। जहाँ कोई भावुकता को ढ़ोता है तो अपना ही जीवन नरक बना लेता है जिसकी बानगी है तलाश। माँ और बेटी दोनों के जीवन के अंतर को दर्शाती कहानी। एक त्याग और सिर्फ त्याग की प्रतिमूर्ति तो दूसरी बेहद प्रैक्टिकल। माँ के जीवन से सीख खुद के जीवन को बना लिया। अपने अस्तित्व को पहचाना मानों लेखिका के कहने का यही मुख्य उद्देश्य है कि एक तरफ पढ़ी-लिखी डॉक्टर माँ है लेकिन उसने पढ़ लिखकर भी सब गँवा दिया दूसरी तरफ बेटी है जिसने जीवन को भी साथ-साथ पढ़ा और उसे भी सही दिशा दी। यही तो उद्देश्य है शिक्षा का। जहाँ आप समझ सकें आप क्या हैं।

वहीं 'अभी भी कभी' में रिश्तों का गड़बड़ाया गणित है तो उसे सोच समझकर दिशा देने की सोच रखने वाली निशि है। यहाँ भी प्रेम का एक अलग रूप उभर कर आया है; जहाँ दूसरी माँ बनना वो ही जवान बेटे की मगर अपने कर्त्तव्य को भी समझ निभाना ... है तो ये भी प्रेम का ही एक स्वरूप। ज़्यादातर कहानियाँ जो प्रेम पर हैं यूँ लगता है जैसे कुछ किस्से हैं, जो अक्सर हमारी आँखों के सामने बिखरे होते हैं। जो किसी अंजाम तक नहीं पहुँचते, वो किस्से ही तो होंगे जैसे रियर व्यू, कैंपस अफेयर। बस ऐसा ही स्वरूप कहानियों के माध्यम से लेखिका ने रखा है, जहाँ कभी कुछ सहेलियाँ मिल जाती हैं एक लम्बे अंतराल के बाद तो अपने सुख दु:ख बाँटने लगती हैं तो कहीं कोई अपना प्रेम मैट्रिमोनियल साईट पर ढूँढ़ती है; लेकिन हाथ खाली ही रहते हैं, क्योंकि वहाँ झूठ का पुलिंदा होता है। ऐसे में यदि कोई सच्चा होगा भी तो उस पर विश्वास करना आसान नहीं होता और उसका खामियाजा जब बाद में भुगतना पड़ता है तो गलती समझ आती है।

वहीं 'क्लेम' कहानी में लेखिका ने पैसों पर प्रेम को तरजीह देकर प्रेम के शाश्वत रूप को बचा लिया। 'कायांतरण' में इन्सान के अन्दर के डर और अवसाद को दूर कर उसे खुद को पहचानने यानी खुद से प्रेम करने को वर्णित किया है। यह जीवन है। इसके इतने आयाम हैं कि उम्र गुज़र जाती है लेकिन उन्हें समझ नहीं पाते। फिर प्रेम तो एक चिरंतन शाश्वत बहती धारा है कैसे उसे परिभाषित किया जा सकता है! आजकल के प्रेम में तो स्त्री भी अब प्रैक्टिकल हो गई है। वो भी किसी एक के लिए अपने जीवन को होम नहीं करती बल्कि यथार्थ का सहारा ले अपने जीवन को सँवारती है और अपने निर्णय खुद लेती है।

पूरे संग्रह में ऐसे प्रेम का ही दिग्दर्शन है। यदि आप ढूँढ़ने जाएँ प्रेम का वो ही पुरातन रूप तो वो नहीं मिलेगा; बल्कि आज की पीढ़ी का नज़रिया ही संग्रह में दिग्दर्शित हुआ है या कहा जाए उनके लिए प्रेम के बस वहीं तक अर्थ हैं जहाँ तक साथ निभ जाए; जो प्रेम कम यथार्थ का कठोर धरातल ज़्यादा है, जहाँ कोई चिकनी रपटीली ज़मीन नहीं। एक सपाट राह। फिसलन यदि कोई होती है तो मन की होती है और जिसने मन पर दिमाग को हावी रखा वो इन राहों को पार कर गया। लेखिका ने मानों यही सब कहने की कोशिश की है। कहानी कोई हो लेकिन उसका जो निष्कर्ष निकलता है वो यही निकलता है।

इन कहानियों को थोड़ा ध्यान से पढ़ने की ज़रूरत है नहीं तो पाठक उलझकर रह जाता है; क्योंकि सिरे कहीं टूटते हैं तो कहीं जुड़ते हैं। मानों लेखिका खुद उन पात्रों को जीते-जीते गड्डमड्ड हो गई हो। बाकी प्रेम का न आदि है न अंत तो कैसे संभव है उसे पूरी तरह परिभाषित करना; लेकिन आजकल प्रेम के बदले अर्थों ने एक नया ही रूप ले लिया है, जिस कारण अब संबंध टूटने पर उतना दु:ख नहीं होता या कहा जाए वक्त ने बदल दिया है सोचने समझने का नज़रिया जिस कारण प्रेम हाशिये पर चला गया है और संबंध महज लेन-देन की वस्तु भर .....बस इतना सा फलसफा है इन प्रेम कहानियों का।

शायद आज ज़िंदगी सहज रूप से गुज़ारने के लिए ज़रूरी है ऐसी सोच।

****

संपर्क :
डी -19, राणा प्रताप रोड
आदर्श नगर
दिल्ली - 110033
मोबाइल : 9868077896

कमला गोयनका फ़ाउण्डेशन एवं व्यंग्य यात्रा का आयोजन

कमला गोयनका फ़ाउण्डेशन एवं व्यंग्य यात्रा पुरस्कार समारोह तथा काव्य संध्या के आयोजन में डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, डॉ. कमल किशोर गोयनका और डॉ. कुसुम खेमानी को सम्मानित किया गया। अध्यक्षता डॉ. निर्मला जैन ने की। इस अवसर पर प्रेम जनमेजय द्वारा संपादित व्यंग्य यात्रा के शरद जोशी विशेषांक के पुस्तकाकार रूप – ''हिन्दी व्यंग्य का नावक : शरद जोशी'' का लोकार्पण सम्मनित मंच ने किया। करुणाशंकर द्वारा संपादित हास्यम व्यंग्यम का भी मंच पर लोकार्पण किया गया। पुरस्कार समारोह में वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. कमल किशोर गोयनका जी को ''गोइन्का हिन्दी साहित्य सारस्वत सम्मान'' से, ''महादेवी वर्मा हिन्दी साहित्य पुरस्कार'' से प्रख्यात हिन्दी साहित्यकार डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी को डॉ. कुसुम खेमानी को ''रत्नीदेवी गोइन्का वाग्ददेवी पुरस्कार'' से श्रीफल, स्मृति चिह्न, पुष्पगुच्छ, सम्मान पत्र प्रदान कर पुरस्कृत एवं सम्मानित किया गया।

प्रो. निर्मला जैन जी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कमला गोइन्का फाउण्डेशन द्वारा हिन्दी साहित्य के प्रति किए जा रहे कार्यों की सराहना की। उन्होंने कहा कि फ़ाउण्डेशन द्वारा हिन्दी एवं राजस्थानी के अलावा दक्षिण भारतीय भाषाओं में हिन्दी का प्रचार-प्रसार एवं साहित्यकारों में हिन्दी के प्रति अधिक जागरूकता के लिए जो काम कर रहा है जैसे कन्नड़ हिन्दी अनुवाद, तमिल हिन्दी अनुवाद, तेलुगु हिन्दी अनुवाद एवं मलयालम हिन्दी अनुवाद के लिए जिस तरह से एक दशक से पुरस्कृत एवं सम्मानित करते आ रहा है, वह सराहनीय है।

इस अवसर पर कमला गोइन्का फ़ाउण्डेशन के प्रबंध न्यासी श्री श्यामसुन्दर गोइन्का ने स्वागत भाषण के संग संस्था का परिचय दिया। श्री गोइन्का जी ने बताया कि फ़ाउण्डेशन एक नए पुरस्कार की घोषणा करने जा रहा है जो बंग्ला से हिन्दी एवं असमिया से हिन्दी अनुवाद के लिए दिया जाएगा।

पुरस्कृत साहित्यकारों ने आभार व्यक्त करते हुए फ़ाउण्डेशन का भूरि-भूरि प्रशंसा की।

समारोह के सहसंयोजक डॉ. प्रेम जनमेजय जी ने पुरस्कार समारोह का व्यंग्यपूर्ण कुशल संचालन किया तथा श्रीमती ललिता गोइन्का ने उपस्थित विभूतियों व दर्शकों का धन्यवाद ज्ञापन किया।

पुरस्कार समारोह के बाद काव्य-संध्या का भी आयोजन किया गया जिसमें सुप्रसिद्ध हास्य-कवियों-व्यंग्यकारों में संपत सरल, ललित लालित्य, सुमित मिश्रा, दीपक सरीन, शशिकांत शशि, प्रियंका राय तथा श्याम हमराही ने अपनी कविताओं से साहित्य-रसिकों के मंत्र-मुग्ध किया। काव्य-संध्या का संचालन सुमित मिश्रा ने किया।

गिरीश पंकज को मिला 'वसुंधरा सम्मान'

भिलाई (छत्तीसगढ़), प्रख्यात व्यंग्यकार-पत्रकार और 'सद्भावना दर्पण' के संपादक गिरीश पंकज को 14 अगस्त को भिलाई में 'वसुंधरा सम्मान' प्रदान किया गया। सम्मान में श्री पंकज को शाल-श्री फल, अभिनंदन पात्र के साथ ग्यारह हज़ार रुपये भेंट किए गए. छत्तीसगढ़ के उच्च शिक्षा मंत्री प्रेमप्रकाश पाण्डे कार्यक्रम के मुख्य अतिथि थे। कार्यक्रम की अध्यक्षता नेता प्रतिपक्ष टीएस सिंह देव ने की। सभी अतिथियों के हाथों गिरीश पंकज का सम्मान हुआ। मंच पर 'छत्तीसगढ़ मित्र' के संपादक पूर्व आईएएस सुशील त्रिवेदी और विधायक अरुण वोरा भी मौजूद थे।

संयोजक विनोद मिश्र ने स्वागत भाषण दिया। वक्ताओं ने गिरीश पंकज के निरंतर लेखन की भूरि-भूरि प्रशंसा की और कहा कि पंकज की विभिन्न विधाओं में 52 पुस्तकों का प्रकाशन उल्लेखनीय घटना है। कवि शरद कोकास ने अभिनंदन का वाचन किया।

श्री पंकज को भेंट किए गए प्रशस्त पत्र में कहा गया कि समकालीन पत्रकारिता की अनेक चुनौतियों के बीच रहते हुए उन्होंने पत्रकारिता के मूल्यों का साथ दिया और कभी समझौता नहीं किया।

इस अवसर पर बड़ी संख्या में साहित्यकार, पत्रकार उपस्थित थे। कार्यक्रम अत्यंत गरिमामय साहित्यिक वातावरण में संपन्न हुआ।

पंकज सुबीर और योगिता यादव को 'राजेंद्र यादव हंस कथा सम्मान'

राजेंद्र यादव की जयंती पर 'राजेंद्र यादव कथा सम्मान 2016' का अयोजन इंडिया इंटरनेशल सेंटर एनेक्सी सभागार में किया गया। इस बार का यह प्रतिष्ठित सम्मान-पुरस्कार योगिता यादव और पंकज सुबीर को संयुक्त रूप से प्रदान किया गया। दोनों रचनाकारों को ग्यारह-ग्यारह हज़ार रुपये की सम्मान राशि और शाल तथा स्मृति चिह्न प्रदान किया गया। यह सम्मान हर वर्ष हंस में प्रकाशित किसी कहानी पर दिया जाता है। इस वर्ष पंकज सुबीर को यह सम्मान उनकी कहानी 'चौपड़े की चुड़ैलें तथा योगिता यादव को उनकी कहानी 'राजधानी के भीतर बाहर' के लिए मिला। कार्यक्रम की शुरूआत में कथाकार मन्नू भंडारी ने यह सम्मान प्रदान किया, जो अस्वस्थता के बाद भी कार्यक्रम में उपस्थित थीं। योगिता यादव की कहानी पर बोलते हुए युवा आलोचक संजीव कुमार ने कहा कि कहानी अस्मितावाद की सीमाओं से बाहर चली जाती है और लड़की के जीवन संघर्ष में उतर जाती है, जिसके कई पहलू हैं। पंकज सुबीर की कहानी पर बोलते हुए वरिष्ठ आलोचक रोहिणी अग्रवाल ने कहा कि कहानी हमारे समय की बहुत बड़ी विभिषिका और बहुत बड़े सत्य को दर्शाती है। पंकज सुबीर ने अपने वक्तव्य में कि यह सम्मान उनके लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसमें राजेंद्र यादव और हंस का नाम जुड़ा है। योगिता यादव ने कहा कि आपका बंटी की लेखिका के हाथों सम्मान मिलना जीवन की अविस्मरणीय स्मृति है। कहानियों के निर्णायक तथा कार्यक्रम के अध्यक्ष श्री विश्वनाथ त्रिपाठी ने कहा रचनाओं के दो मतलब होते हैं, एक वह जो रचनाकार लिखता है और दूसरा वह जो हम समझते हैं। कार्यक्रम का संचालन हंस के संपादक संजय सहाय ने किया तथा आभार हंस की प्रबंध निदेशक रचना यादव ने व्यक्त किया। कार्यक्रम में विविध क्षेत्रों के अनेक महत्त्वपूर्ण रचनाकार, संस्कृतिकर्मी, हंस प्रेमी तथा साहित्य रसिक पाठक-श्रोता उपस्थित थे।

लोकार्पण

लालित्य ललित के काव्य संग्रह 'उम्मीदों भरा मौसम' का लोकार्पण गत दिनों पूर्व केंद्रीय मंत्री सत्य नारायण जटिया, उत्तराखण्ड के पूर्व मुख्य मंत्री डॉ. रमेश पोखरियाल निशंक, दिल्ली के पूर्व मंत्री रमाकांत गोस्वामी के हाथों हुआ। यह संग्रह दिल्ली के प्रकाशक ए पी एन पब्लिशर्स ने प्रकाशित किया है। लालित्य ललित का काव्यपाठ हुआ और लक्ष्मीशंकर वाजपेयी, ममता किरण, डॉ. रमेश तिवारी, डॉ. विवेक गौतम, रणविजय राव, अर्चना शाह अग्रवाल, मनीष वर्मा ने अपनी उपस्थिति दर्ज की।

सम्मान

प्रसिद्ध अभिनेता राजेंद्र गुप्ता ने संतोष श्रीवास्तव को हिंदी कहानी प्रतियोगिता में प्रथम स्थान पाने पर सम्मानित किया। इस अवसर पर राजेंद्र गुप्ता ने स्टोरी मिरर परिवार को बधाई देते हुए कहा कि स्टोरी मिरर एक बहुत अच्छा काम कर रहा है कि वह गिफ्ट ऑफ नॉलेज के जरिए कहानी और कविता को घर-घर में पहुँचा रहा है। कार्यक्रम में महानगर के लेखक, पत्रकार तथा महाविद्यालय के छात्र भारी संख्या में मौजूद थे।

अभिनेता अमित महोदय 'आर्यावर्ती' के उपन्यास 'अ ग्रीन वॉरियर' का विमोचन

बॉलीवुड इंडस्ट्री में अपनी पहचान कायम कर चुके अभिनेता और लेखक अमित महोदय 'आर्यावर्ती' के पहले उपन्यास ''अ ग्रीन वॉरियर'' का विमोचन 30अगस्त 2016, शनिवार को इंदौर में किया गया, यशराज बैनर की फ़िल्म ''शुद्ध देसी रोमांस'' में सह कलाकार की भूमिका निभा चुके अमित महोदय 'आर्यावर्ती' पृथ्वीराज चौहान, साईंबाबा, देश की बेटी नंदिनी और जाने क्या होगा रामा रे जैसे कई टीवी सीरियल में भी अपने अभिनय की छाप छोड़ चुके हैं। ''अ ग्रीन वॉरियर'' उपन्यास एक साहित्यिक, फिक्शन, लवस्टोरी है। यह काबला नामक लड़के की साधारण सी प्रेम यात्रा है जो असाधारण सौंदर्य से सजी भरी हुई है। यह अभिप्रेरणा से सजी एक सकारात्मक कहानी है जो प्राकृतिक सौंदर्य और प्रकृति की भाषा का तालमेल है। इस उपन्यास को शिवना प्रकाशन ने प्रकाशित किया है। और यह लोटस फ़ीट फिल्म्स इंडिया / यू. के. इस उपन्यास के प्रायोजक हैं।

लेखक अमित महोदय 'आर्यावर्ती' ने बताया कि इस में एक साधारण लड़के के अतिसाधारण होने से उसकी असाधारण हो जाने की कहानी है, यह उसके स्नेह और उसकी अन्तस् भावनाओं की बानगी है जो ज़िंदगी में उम्मीद की एक परिभाषा है। हमसे बात करता प्रकृति का संगीत और दृश्य होती सृष्टि के साथ सृजनात्मक व्यक्तित्व के ताने बाने से बुनी कहानी है ''अ ग्रीन वॉरियर''। आगे क्या होना है इसका रहस्य ही तो ज़िंदगी का रोमांच बनाए रखता है।

11 इंटरनेशनल अवार्ड प्राप्त फिल्म ''सनफ्लावर'' के निर्देशक पंडित गौरव गौतम ने बताया कि लोटस फीट फिल्म्स के बैनर तले ''अ ग्रीन वॉरियर'' की कहानी पर वे फिल्म बनाने की तैयारी कर रहे हैं। पंडित गौरव गौतम जी के मुताबिक यह कहानी युवाओं के लिए मोटिवेशनल फिल्म साबित होगी। वहीं गौरव गौतम और अमित महोदय की आगामी फिल्म ''वन्दे 15th..एक नन्ही उडारी'' की भी शूटिंग जारी है जिसका टीज़र भी लॉन्च हो चुका है। लोटस फ़ीट फिल्म्स के बैनर तले बनने वाली इस फिल्म का निर्देशन पंडित गौरव गौतम कर रहे हैं। जबकि फिल्म के लेखक व गीतकार अमित महोदय 'आर्यावर्ती' हैं। फिल्म के निर्माता डोमिनिक डेस्सा हैं।

''अ ग्रीन वॉरियर'' के विमोचन के मौके पर सम्मानीय श्री संजय जी दुबे (संभागायुक्त इंदौर सम्भाग), डॉ. श्री नरेंद्र कुमार जी धाकड़ (कुलपति देअविवि. इंदौर) पद्मश्री जनक पलटा जी मगिलिगन (वरिष्ठ समाजसेविका),श्री पंकज सुबीर जी (सुपरिचित साहित्यकार), डोमिनिक डेस्सा जी (को फाउंडर लोटस फ़ीट फिल्म्स लन्दन यू.के.) प्रो.डॉ. श्री पी.के. चौबे जी (एम डी होम्योपैथ), डॉ.श्रीमति महुआ चौबे जी और फिल्म निर्देशक गौरव गौतम जी मुख्य रूप से विमोचन में रहे।

'समय, शब्द और मैं' का विमोचन

इन्दौर के जाल सभागृह में आयोजित एक गरिमामय कार्यक्रम में वरिष्ठ कवि श्री कृष्णकांत निलोसे के शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित कविता संग्रह 'समय शब्द और मैं' का विमोचन किया गया। कार्यक्रम की अध्यक्षता वरिष्ठ कवि तथा आलोचक डॉ. विजय बहादुर सिंह ने की, जबकि मुख्य अतिथि के रूप में वरिष्ठ कवि तथा भारतीय ज्ञानपीठ के निदेशक, नया ज्ञानोदय के संपादक श्री लीलाधर मंडलोई उपस्थित थे। कहानीकार पंकज सुबीर विशेष वक्ता के रूप में उपस्थित थे।

कार्यक्रम में श्री निलोसे के जीवन पर केंद्रित एक विशेष फिल्म भी दिखाई गई और उनकी कुछ कविताओं की संगीतमय प्रस्तुति दी गई। इस अवसर पर बोलते हुए श्री लीलाधर मंडलोई ने कहा कि नीलोसे जी का आज इस उम्र में भी सक्रिय होना तथा सृजन करना हमारे लिए एक आश्वस्ति है। पंकज सुबीर ने कहा कि युवा रचनाकारों को नीलोसे दादा से बहुत कुछ सीखने की आवश्यकता है। डॉ. विजय बहादुर सिंह ने अपन अध्यक्षीय उद्बोधन में नीलोसे जी की कविताओं की व्याख्या करते हुए कहा कि ये कविताएँ छायावाद और भक्ति काव्य के बीच की कविताएँ हैं।

इस अवसर पर श्री नीलोसे का सम्मान भी किया गया। कार्यक्रम का संचालन वरिष्ठ चित्रकार, कहानीकार प्रभु जोशी ने किया। इस अवसर पर बड़ी संख्या में साहित्यकार, पत्रकार उपस्थित थे।

समीर यादव की पुस्तक 'व्हाट्स-एपिया रोमांस' का हुआ विमोचन

भोपाल के स्वराज भवन के सभागार में शिवना प्रकाशन द्वारा आयोजित साहित्यिक कार्यक्रम में भोपाल के यातायात एएसपी समीर यादव द्वारा लिखित पुस्तक व्हाट्स-एपिया रोमांस का विमोचन किया गया। कार्यक्रम की अध्यक्षता वरिष्ठ कवि तथा आलोचक डॉ विजय बहादुर सिंह ने की। इस अवसर पर वक्ता के रूप में सुप्रसिद्ध शायरा नुसरत मेहदी, युवा कवि अशोक कुमार पाण्डेय तथा कहानीकार पंकज सुबीर उपस्थित थे।

कार्यक्रम के प्रारंभ में चर्चित पुस्तक व्हाट्स-एपिया रोमांस का अतिथियों द्वारा विमोचन किया गया। पुस्तक पर बोलते हुए उर्दू अकादमी की सचिव नुसरत मेहदी ने कहा कि इन दिनों हिन्दी-उर्दू साहित्य में खूब नए प्रयोग हो रहे हैं। इन प्रयोगों का उद्देश्य युवाओं को साहित्य की तरफ मोड़ना है। इस पुस्तक की लोकप्रियता यह बता रही है कि यह प्रयोग सफल भी हो रहे हैं। चर्चित युवा कवि अशोक कुमार पाण्डेय ने कहा कि समीर यादव ने व्हाट्स-एपिया रोमांस के द्वारा जो प्रेम कथाएँ बुनी हैं वह अपने बिंबों तथा शिल्प के कारण अनूठी बन गई हैं। व्हाट्स एप जैसे विषय पर इतनी संवेदनशील कहानियाँ लिख देना लेखक की एक बड़ी सफलता है। कहानीकार पंकज सुबीर ने कहा कि समय के साथ परिवर्तन आते हैं और उन परिवर्तनों का प्रभाव सब जगह दिखाई देता है। साहित्य उससे अछूता नहीं रह सकता। यह नए समय की कहानियाँ हैं। ये कहानियाँ युवाओं को अपनी तरफ खींच रही हैं। समीर यादव ने अपने लेखकीय उद्बोधन में कहा कि उन्हें नहीं पता था कि उनके लेखन का यह पहला ही प्रयास इस प्रकार से स्वीकार किया जाएगा पाठकों द्वारा। वरिष्ठ आलोचक तथा कवि डॉ. विजय बहादुर सिंह ने अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में कहा कि जब भी नए लेखक आते हैं, उनकी पहली किताब सामने आती है तो मुझे सबसे ज़्यादा ख़ुशी इस बात की होती है कि मेरा ख़ानदान बढ़ गया है। पुलिस सेवा में रहते हुए तथा उस सेवा की व्यस्तताओं और तनाव के बाद भी यदि कोई अधिकारी प्रेम कहानियाँ लिख रहा है तो यह स्वागत योग्य बात है।

उल्लेखनीय है कि इस पुस्तक के विमोचन के पूर्व ही पुस्तक का प्रथम संस्करण पूरी तरह बिक गया तथा कार्यक्रम में दूसरे संस्करण का विमोचन किया गया। कार्यक्रम के दूसरे चरण में अतिथि कवियों नुसरत मेहदी तथा अशोक कुमार पाण्डेय द्वारा काव्य पाठ किया गया। कार्यक्रम का संचालन राजेश मिश्रा द्वारा किया गया। आयोजन की सहयोगी संस्था मंतव्य की ओर से अतिथियों को स्मृति चिह्न पल्लवी त्रिवेदी एवं मुकेश तिवारी ने प्रदान किए। इस अवसर पर बड़ी संख्या में साहित्यकार, पत्रकार तथा पुलिस अधिकारी उपस्थित थे। अंत में सभी अतिथियों का आभार शिवना प्रकाशन के प्रकाशक शहरयार ने व्यक्त किया।

'समय समेटे साक्ष्य' का विमोचन

भोपाल के पुलिस प्रशिक्षण केंद्र के सभागार में आयोजित एक गरिमामय कार्यक्रम में वरिष्ठ कवि चौधरी मदनमोहन समर के कविता संग्रह 'समय समेटे साक्ष्य' का विमोचन किया गया। कार्यक्रम में मुख्य अतिथि के रूप में मध्यप्रदेश के पुलिस महानिदेशक श्री ऋषिकेश दुबे उपस्थित थे। कार्यक्रम की अध्यक्षता वरिष्ठ आलोचक डॉ. रमेशचंद्र शाह ने की। विशेष वक्ता के रूप में वरिष्ठ साहित्यकार श्री प्रतावराव कदम, कवि श्री पवन जैन तथा कहानीकार पंकज सुबीर उपस्थित थे। इस अवसर पर शॉल, श्रीफल तथा स्मृति चिह्न भेंट कर चौधरी मदनमोहन समर को शिवना प्रकाशन की ओर से सम्मानित भी किया गया।

इस अवसर पर बोलते हुए श्री ऋषिकेष दुबे ने कहा कि पुलिस महकमे में काम करने वाले अधिकारी कविता की ओर मुड़ रहे हैं तो यह एक अच्छा संकेत है। श्री प्रतावराव कदम ने कहा कि समर की कविताएँ एक अलग प्रकार से देश की बात करती हैं। पंकज सुबीर ने मदनमोहन समर की कविताओं को उत्साह की कविताएँ बताया। श्री रमेश चंद्र शाह ने कहा कि कविता को आम आदमी से बात करना चाहिए। कविता की संप्रेषणीयता का जो संकट है वह इसी से दूर होगा। इस अवसर पर बड़ी संख्या में साहित्यकार, पत्रकार तथा पुलिस अधिकारी उपस्थित थे। अंत में अतिथियों का आभार शिवना प्रकाशन के प्रकाशक शहरयार ने व्यक्त किया।

'ककनागवउआ' ही 'ककनागवउआ'

भोपाल के कवि-कथाकार संतोष चौबे की कहानी 'लेखक बनाने वाले' में यह शब्द आता है 'ककनाउआ'। यह पंचमुखी रचनकारों के संदर्भ में वहाँ आता है। ऐसे रचनाकार जो 'क' से कवि भी हैं, 'क' से कथाकार भी हैं, 'ना' से नाटककार भी हैं, 'उ' से उपन्यासकार भी हैं और 'आ' से आलोचक भी हैं। संतोष चौबे की कहानी में अलग संदर्भ है लेकिन मुझे लगता है कि इन दिनों सारे रचनाकार 'ककनागवउआ' होते जा रहे हैं('ग' से ग़ज़लकार और 'व' से व्यंग्यकार भी)। इस होते जाने के पीछे कारण है लगातार और अनवरत् छपने का सुख। कहीं आपकी कहानी छप रही है, कहीं कविताएँ, कहीं समीक्षा तो कहीं लघुकथा। यह बात अलग है कि कोई भी रचना कहीं नहीं पहुँच रही है। बस छपे का सुख जो मिलना चाहिए, वह भर मिल रहा है। तो क्या छपना ही हमारा अंतिम लक्ष्य हो गया है? हमारी सारी रचनाधर्मिता केवल छपने के लिये ही है ? यह एक ख़तरनाक स्थिति है। किसी पत्रिका के एक अंक में आपकी कहानी छप गई है, तो आपको लगता है कि आने वाले दो-तीन अंकों में अब वहाँ कहानी तो छपेगी नहीं आपकी, आप तुरंत लौटती डाक से तीन कविताएँ और एक लघुकथा भेज देते हैं। अरे हाँ! अभी व्यंग्य और ग़ज़ल को तो हम भूल ही गए थे। इस समय हर रचनाकार एक साथ कहानीकार, उपन्यासकार, व्यंग्यकार, कवि, समीक्षक, ग़ज़लकार, नाटककार (और शायद आलोचक भी) है। वह किसी और के लिये कोई स्पेस ख़ाली छोड़ना ही नहीं चाहता है। जहाँ छपे बस वो ही छपे। वर्तमान में हिन्दी की एक महत्त्वपूर्ण कहानीकार हैं किरण सिंह, जो वर्ष भर में एक ही कहानी लिखती हैं। लेकिन, जब वह कहानी प्रकाशित होती है तो हलचल मच जाती है। जैसा उनकी पिछली कहानी 'द्रोपदी पीक' ने भी किया। साल भर में केवल एक, या कभी वह भी नहीं लिखने वाली किरण सिंह इस समय की सबसे महत्त्वपूर्ण कहानीकारों में हैं। क्या हम किरण सिंह से कोई सबक ले सकते हैं? बहुत ज़्यादा छपना एक प्रकार का ओवर एक्सपोज़र होता है और यदि ओवर एक्सपोज़र सशक्त न हो, तो वह नुकसान ही करता है। एक और नुकसान यह भी होता है कि पाठक आपके बारे में कोई धारणा ही नहीं बना पाता। उसे पता ही नहीं चलता कि आप क्या हैं ? क्योंकि आप तो 'ककनागवउआ' हैं। आप 'मास्टर ऑफ नन' बनने में विश्वास नहीं रखते हुए 'जैक ऑफ ऑल' होते जा रहे हैं। आप अपने अंदर के सबसे सांद्र पक्ष को ही नहीं पहचान पा रहे हैं, और तनु अवस्था में कई विधाओं को एक दूसरे में गड्ड-मड्ड करते जा रहे हैं। डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी इस समय के बड़े व्यंग्यकार हैं, आपने किसी दूसरी विधा में उनकी कोई रचना पढ़ी है? शायद नहीं। ऐसा नहीं है कि उन्होंने किसी दूसरी विधा में लिखा ही नहीं होगा, लिखा होगा, लेकिन उन्हें पता है कि व्यंग्य ही उनका सांद्र पक्ष है। बाकी किसी विधा में उन्होंने कुछ लिखा भी होगा, तो वह डायरी में क़ैद कहीं दबा पड़ा होगा। जो कुछ भी हम लिखते हैं, वह सब कुछ प्रकाशित होने के लिये नहीं होता। लेकिन इस समय तो ऐसा लगता है मानों सबको छपने की जल्दी सी हो रही है। इधर लिखा और उधर वह छप जाए। जो लिखा, जैसा लिखा, वैसा का वैसा ही छप जाए, संपादन जैसा कुछ भी उसके साथ न हो। हम यह भी नहीं समझ पा रहे हैं कि हमारी कमज़ोर रचनाएँ सामने आ-आकर हमारा कितना बड़ा नुकसान कर रही हैं। इस पन्ने पर लिखते समय 'मैं' 'मैं' नहीं रहता, हो सकता है आपको बुरा लगा हो, लेकिन, एक बार काँच के सामने खड़े होइए, अपने आपको गौर से देखिए और सोचिए कहीं आप भी 'ककनागवउआ' तो नहीं होते जा रहे हैं ? यदि 'हाँ' तो सँभल जाइए.....

सादर आपका ही,

पंकज सुबीर

पंकज सुबीर
पी. सी. लैब, शॉप नंबर 3-4-5-6,
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के
सामने, सीहोर, मप्र, 466001
ईमेल : subeerin@gmail.com

एक सप्ताह में ही प्रथम संस्करण सोल्ड आउट हो जाने का कीर्तिमान रचने वाली शिवना प्रकाशन की पुस्तक

व्हाट्स-एपिया रोमांस (लेखक : समीर यादव)

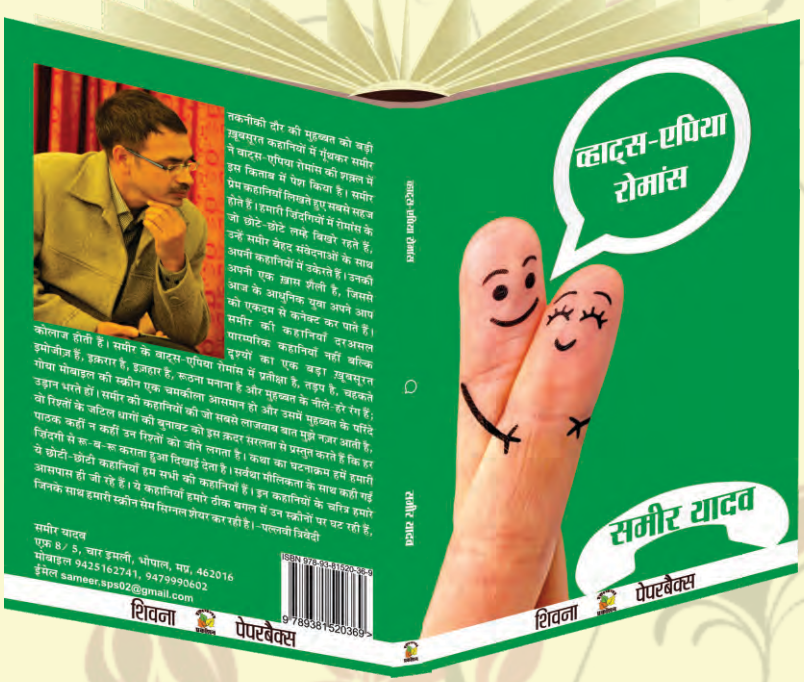

राज एक्सप्रेस

शब्दउत्सव

सुविचार
जो सदा प्रसन्न रहता है उसके अन्दर आलस्य नहीं हो सकता। आलस्य सबसे बड़ा दुर्गुण है।

rajexpresschp@gmail.com

छतरपुर, रविवार 11 सितंबर, 2016

एक किताब ने घोल दिया फिज़ा में रोमांस

मध्यप्रदेश के पुलिस अधिकारी समीर यादव ने लिखी व्हाट्स-एपिया रोमांस

छतरपुर। दुनिया से रोमांस कभी खत्म नहीं होता। यह दो चाहने वालों के बीच हमेशा रहता है। वक्त के साथ भले ही इसे अपने माध्यम बदलने पड़ें। बदलते वक्त के साथ रोमांस के भी माध्यम बदले हैं। इन दिनों युवा पीढ़ी में सोशल मीडिया का एक प्रचलित एप्लीकेशन व्हाट्सएप्प जबरदस्त चर्चा में है। यह सिर्फ एक एप्लीकेशन नहीं बल्कि इश्क के परिंदों का आशियाना बन गया है। व्हाट्सएप से कैसे रोमांस परवान चढ़ता है इसी खूबसूरत विषय पर लिखी गई किताब व्हाट्स-एपिया रोमांस इन दिनों देश भर में चर्चा का विषय बनी हुई है। खास बात यह है कि यह किताब सरकार के भाग-दौड़ वाले व्यस्त महकमे पुलिस में काम करने वाले राज्य पुलिस सेवा के अधिकारी समीर यादव के द्वारा लिखीगई है जो इन दिनों भोपाल में पदस्थ हैं। प्रस्तुत है इस किताब पर साहित्यक समीक्षा।

ISBN: 978-93-81520-36-9

व्हाट्स-एपिया रोमांस (समीर यादव)

प्रथम संस्करण : अगस्त 2016

द्वितीय संस्करण : सितम्बर 2016

मूल्य : 100.00 रुपये, पृष्ठ : 72

पुस्तक को ऑनलाइन ख़रीदने हेतु लिंक्स :

https://paytm.com/shop/p/whatsappia-romance-9789381520369_114799

http://www.amazon.in/dp/9381520364

https://www.flipkart.com/whats-appia-romance/p/itmehwj5rgzkdyjz?pid=9789381520369

ऐसी कृति जिसमें, व्हाट्स एप के ज़रिये कहीं न कही बल्कि हर कहीं ही मुहब्बत के इज़हार, इकरार और पुरानी यादों से जुड़े हुए तार, जो मन को झंकृत करते हैं। पल दो पल के लिए ही सही, मीठी सी याद बन गुदगुदाते हैं। इन्हीं फूल से भी नाज़ुक रिश्तों के ताना बाना को, बख़ूबी से, ख़ूबसूरती से बुना गया है। ये कहानियाँ, पात्र, घटनाक्रम हमें अपनी स्मृतियों में लेकर जाते हैं....पढ़कर लगता है जैसे हमारे ही तो ज़ज़्बातों की दास्ताँ है ये.... **-सपना शिवाले**

जैसा नाम है पुस्तक का व्हाट्स-एपिया रोमांस उसका असर होना शुरू हो जाता है । तसल्ली इत्मीनान से हर बात हर वाक्य हर शब्द को रूमानियत से महसूस करने का अहसास होने लगता है। हर किरदार को थोड़ी देर जी लेने का मन करता है। ये भी एक पुस्तक की खासियत है कि पाठक को अपने में बाँध के रखे। कई वाकिये अपने से लगते हैं, कई किरदार आपने हमने जिए है ।पर प्रेम या रोमांस का ये रूप भी उकेरा जा सकता है, सोच से परे है । **-मीना शर्मा**

अब एक सच्चाई, अक्सर मुहब्बत जल्दी जवान हो जाती है और साहित्यकार बाद में, व्हाट्सएप की इसतलाहों तक पहुँचने में अभी साहित्यकार को पच्चीस साल लगेंगे, मगर ये करिश्मा कर दिखाया है समीर यादव की क़लम ने, कि व्हाट्सएप की सारी इसतलाहों को, उसके इशारों किनायों को उसके टेक्निकल इशूज़ के साथ इस मौजूदा नस्ल के दिल के गुबार को कागज़ पर खूब सूरती से संजोया है उसके लिए मैं उन्हें साथ मुबारक देता हूँ। **-अना कासमी**

यह नए कलेवर की नई तकनीक में सदाबहार कन्टेन्ट रोमांस को लेकर अपने तरह का अनूठा और बेहतरीन साहित्यिक प्रयोग है, खासकर ऐसे समय में जब आज के युवा वर्ग के पास कहानी पढ़ने का न तो पेशेंस है, न समय और न ही इंट्रेस्ट। ऐसे संक्रमण काल में समीर यादव बहुचर्चित और तेज़ी से वापरने वाले सोशल मिडिया व्हाट्स अप्प की तकनीकी समझ के कैनवास पर निजी -सार्वजनिक स्रोत से बटोरे हुए रोमांस को केंद्रीय विषय बनाकर टेक्स्ट फार्मेट में कहानी लिखकर कूल डूडस से लेकर रोमांस के सभी चाहने वालों के बीच अपनी पैठ बनाने में सफल हुए हैं। **-उमेश तिवारी**

'व्हाट्स-एपिया रोमांस' अनूठा प्रयोग है। इसमें तकनीक का तड़का है। कहानियाँ कलेवर में छोटी हैं... याद रखिये सिर्फ कलेवर में, प्रभाव में नहीं। अतिशय तात्कालिकता और अति-सूचना की वजह से उपजते अविश्वास के इस दौर में इस प्रयोग की पाठकीय स्वीकृति में निश्चित है कि समय लगेगा और ये भी देखना दिलचस्प होगा कि अगले कदम में तकनीक ऊपर आएगी या शास्वत सार्वकालिक प्रेम, क्योंकि सूचना प्रौद्योगिकी का विस्फोट अभी रुका नहीं है और प्रेम भी अभी चुका नहीं है... और चूका तो कभी भी नहीं !! **-अमित श्रीवास्तव**

व्हाट्सऐप जैसे माध्यम पर लिखी जा रही प्रेम की नई कहानियों के माध्यम से बदलते समय को बख़ूबी दर्ज किया है समीर ने इस किताब में। **-अशोक कुमार पांडेय**

एक अलग तरह की किताब। जिसमें व्हाट्स-एप पर सवार इश्क है। इंतज़ार है। चाह का रेतीला संसार है। धड़कनों को बयाँ करने वाले शब्द हैं। मुग्ध करने का सामर्थ्य इस युवा कलमकार में है। समीर यादव का लेखन का अलहदा अंदाज है। **-कैलाश वानखेड़े**

हरे आवरण में लिपटी मद्धिम सफ़ेद पन्नों पर प्यार भरे अक्षर समेटे किताब जब हाथ में आई तो पता न था कि इस किताब में रोमांस का ऐसा माहौल होगा। पर जब पन्ने पलटते गए और दिल मचलता रहा तब समझ आया की रोमांस का नया जादू समेटा हुआ है इस ग्रीन बैंक ने... ग्रीन बैंक इसीलिए भी कहूँगा कि इसमें प्यार की,रोमान्स की सारी जमा पूँजी है। **-पंकज मलिक**

इन कहानियों को पढ़ते हुए, मुझे ऐसा विश्वास है कि, आधुनिक परिवेश में, समय के साथ-साथ आगे बढ़ती हुई हिन्दी कहानी इसी रूप में, सामने आएगी। यह भी कि, समीर नई कहानी के इस युग के पहले कहानीकार हैं जो समय की रिद्म को पकड़ पा रहे हैं। **-संजीव तिवारी**

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने सीहोर, मध्य प्रदेश 466001

फोन : 07562-405545, 07562-695918

मोबाइल : +91-9584425995,

ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com

http://shivnaprakashan.blogspot.in

https://www.facebook.com/shivna.prakashan

शिवना प्रकाशन की पुस्तकें सभी प्रमुख ऑनलाइन शॉपिंग स्टोर्स पर

Shivna Prakashan Books Available At All Leading Online Shopping Stores

http://www.amazon.in

http://www.flipkart.com

https://www.paytm.com

http://www.ebay.in

Vibhom Swar ● Quarterly ● October-December2016 ● RNI : MPHIN32709 ● ISSN : 2455-9814

छपी पुस्तक धारा 121/1 (घ) के अंतर्गत

If Undelivered Please Return to :
P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001
Phone 07562-405545, 07562-695918, Mobile 09584425995, 07828313926, 09806162184

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक ज़ुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स,ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।